सामान्य अध्ययन (मुख्य परीक्षा)
भारतीय समाज (Indian Society)

विषय-सूची

MODULE - I

1. भारतीय समाज : पारिभाषिक शब्दावली
2. भारतीय समाज की आधारभूत विशेषताएँ
- परंपरागत भारतीय समाज के आधार
  - धर्म
  - पुरुषार्थ
  - कर्म और पुनर्जन्म का सिद्धांत
  - ऋण तथा यज्ञ का सिद्धांत
  - हिन्दू संस्कार
  - आश्रम व्यवस्था
  - वर्ण व्यवस्था
  - जाति-व्यवस्था
  - धार्मिक संस्कार के रूप में विवाह एवं संयुक्त परिवार
- भारतीय समाज में परिवर्तन और निरंतरता
- हिन्दू सामाजिक संगठन पर बौद्ध धर्म का प्रभाव
- हिन्दू सामाजिक संगठन पर इस्लाम धर्म का प्रभाव
- भारतीय समाज में परिवर्तन की प्रमुख प्रक्रियाएँ
  - संस्कृतिकरण
  - पश्चिमीकरण
  - आधुनिकीकरण
- आधुनिक भारतीय समाज के लक्षण
- भारतीय समाज की आधारभूत विशेषताएँ : समकालीन मुद्दे
  - भारत में परंपरा, आधुनिकता एवं आधुनिकीकरण
  - आधुनिकता एवं आधुनिकीकरण
  - भारत में आधुनिकीकरण की शुरूआत
  - भारत में आधुनिकीकरा की प्रक्रिया का स्वरूप
  - भारतीय समाज में आधुनिकीकरण की समस्याएँ
- जनसंचार के साधनों का भारतीय समाज पर प्रभाव
  - भारतीय संस्कृति पर प्रभाव
  - भारतीय समाज की संरचना पर प्रभाव
  - जनसंचार साधन-जनित परिवर्तन की चुनौतियाँ

3. भारत में जाति व्यवस्था
- जाति व्यवस्था : अर्थ एवं लक्षण
- जाति-व्यवस्था के गुण एवं दोष
- जाति व्यवस्था में परिवर्तन एवं इसके कारक
  - जाति की संरचना में परिवर्तन
  - जातिगत निषेधों में परिवर्तन
  - जातिगत मनोवृत्तियों में परिवर्तन
  - जाति व्यवस्था में परिवर्तन के कारक
- जाति व्यवस्था की निरन्तरता एवं इसके कारक
  - सामाजिक क्षेत्र में निरंतरता
  - आर्थिक क्षेत्र में निरन्तरता
  - राजनीतिक क्षेत्र में निरन्तरता
  - जाति व्यवस्था की निरन्तरता के कारक
- प्रभुजाति की अवधारणा
- जजमानी प्रणाली
- भारत में अस्पृश्यता
- भारत में जातिवाद
  - भारत में जातिवाद के स्वरूप
  - भारत में जातिवाद के कारण
  - जातिवाद के परिणाम
  - जातिवाद को दूर करने के उपाय
- भारत में जाति एवं राजनीति
  - राजनीति में जाति की भूमिका
  - जाति में राजनीति की भूमिका
- भारत में समानता एवं जाति आधारित आरक्षण
  - जाति आधारित आरक्षण के पक्ष में तर्क
  - जाति आधारित आरक्षण के विरोध में तर्क
- जाति आधारित जनगणना
- भारत में जाति संघर्ष

4. भारत में विवाह
- भारत में विवाह के प्रकार
- हिन्दू विवाह : एक धार्मिक संस्कार
- हिन्दू विवाह सम्बन्धी नियम व निषेध
  - अनुलोम विवाह
  - प्रतिलोम विवाह
- हिन्दू विवाह में आधुनिक परिवर्तन
- भारत में अन्तर्जातीय विवाह
  - अन्तर्जातीय विवाह को प्रोत्साहित करने वाले कारक
  - अन्तर्जातीय विवाह से लाभ
- भारत में विवाह-विच्छेद की समस्या
- भारत में समलैंगिकता

KGS IAS KHAN GLOBAL STUDIES Most Trusted Learning Platform KHAN SIR Dr. S.S. Pandey

5. भारत में परिवार - संयुक्त परिवार

- संयुक्त परिवार : अर्थ एवं लक्षण
- संयुक्त परिवार में होने वाले आधुनिक परिवर्तन एवं इसके कारक
    - संरचना में परिवर्तन
    - अन्त:पारिवारिक सम्बन्धों में परिवर्तन
    - प्रकार्यों में परिवर्तन
    - अन्य नवीन परिवर्तन
    - संयुक्त परिवार में परिवर्तन के कारक
- सामाजिक विधानों का हिन्दू विवाह एवं परिवार पर प्रभाव

6. भारत में धर्म

- भारत में धार्मिक समुदाय
- अंत:धार्मिक क्रियाएँ और उनकी अभिव्यक्ति
- समकालीन मुद्दे : धार्मिक पुन:प्रर्वतनवाद
- समकालीन मुद्दे : भारत में धार्मिक रूढ़िवाद
- समकालीन मुद्दे : भारत में धर्म-परिवर्तन

7. वैश्वीकरण : एक परिचय

- स्वतंत्रता के पूर्व भारतीय अर्थव्यवस्था का स्वरूप
- स्वतंत्रता के पश्चात् भारत के आर्थिक विकास की दशा
- आर्थिक सुधार के पूर्व भारतीय अर्थव्यवस्था का स्वरूप
- भारत में आर्थिक सुधार की पृष्ठभूमि
- आर्थिक सुधार और इसका स्वरूप
- आर्थिक सुधार का आर्थिक प्रभाव

8. वैश्वीकरण का भारतीय समाज पर प्रभाव

- ग्रामीण समाज पर वैश्वीकरण के प्रभाव
- जनजातीय समुदाय पर वैश्वीकरण के प्रभाव
- भारतीय संस्कृति पर वैश्वीकरण के प्रभाव
- भारतीय धर्म पर वैश्वीकरण के प्रभाव
- भारतीय विवाह एवं परिवार व्यवस्था पर वैश्वीकरण के प्रभाव
- भारतीय महिलाओं पर वैश्वीकरण के प्रभाव
- भारतीय शिक्षा व्यवस्था पर वैश्वीकरण के प्रभाव
- भारतीय लोकतंत्र पर वैश्वीकरण के प्रभाव
- भारतीय राष्ट्र राज्य पर वैश्वीकरण के प्रभाव
- भारत के श्रमिक वर्ग पर वैश्वीकरण के प्रभाव
- भारत के कृषि श्रमिकों पर वैश्वीकरण के प्रभाव
- भारत के औद्योगिक श्रमिकों पर वैश्वीकरण के प्रभाव
- भारत के महिला श्रमिकों पर वैश्वीकरण के प्रभाव
- भारत में बालश्रम पर वैश्वीकरण के प्रभाव
- भारत के किसान वर्ग पर वैश्वीकरण के प्रभाव
- भारतीय मध्यम वर्ग पर वैश्वीकरण के प्रभाव
- भारतीय वृद्धों पर वैश्वीकरण के प्रभाव

9. भारत में विविधता

- भारतीय समाज में विविधता
    - धार्मिक विविधता
    - भाषायी विविधता
    - सांस्कृतिक विविधता
    - जनजातीय विविधता
    - जातीय विविधता
- भारतीय समाज में विविधताओं में मौलिक एकता
- भारतीय समाज में विविधताजनित चुनौतियाँ

10. जनसंख्या संबंधी मुद्दें

- पारिभाषिक शब्दावली
- भारत में जनांकिकी संक्रमण
- भारत की जनसंख्या-आकार, संगठन एवं वितरण
- भारत में जनसंख्या वृद्धि/विस्फोट
    - जनसंख्या वृद्धि के सामाजिक कारक
    - जनसंख्या वृद्धि के सामाजिक परिणाम
- भारत में जन्म दर
    - उच्च जन्म दर के सामाजिक निर्धारक
    - उच्च जन्म दर के सामाजिक परिणाम
- भारत में मृत्यु दर
    - उच्च मृत्यु दर के सामाजिक कारक
- भारत में प्रवास
    - भारत में उच्च प्रवास की प्रवृत्ति के सामाजिक कारक
    - उच्च प्रवास के परिणाम
- भारत में विवाह की आयु
    - कम आयु में विवाह के कारण
    - कम आयु में विवाह के परिणाम
- जनसंख्या नीति और परिवार नियोजन
    - राष्ट्रीय जनसंख्या नीति, 2000
    - परिवार नियोजन
    - अमर्त्य सेन का केरल मॉडल
    - चीनी मॉडल
- भारत में शिशु मृत्यु दर
    - उच्च शिशु मृत्युदर के परिणाम
    - उच्च शिशु मृत्युदर के सामाजिक कारक
- भारत में लिंगानुपात
    - घटते लिंगानुपात के सामाजिक परिणाम
    - घटते लिंगानुपात के सामाजिक कारक
- भारत में शिशु लिंगानुपात
- भारत में आयु संरचना

KGS IAS KHAN SIR Dr. S.S. Pandey

MODULE – II

11. भारत में नगरीकरण

- पारिभाषिक शब्दावली
- भारत में नगर की परिभाषा एवं वर्गीकरण
- नगरीय समाज एवं नगरीकरण का अर्थ
- भारत में नगरीकरण
  - औद्योगीकरण तथा नगरीय केन्द्रों का विकास
  - भारत में नगरीकरण का सामाजिक प्रभाव
  - नगरीकरण एवं सामाजिक गतिशीलता
  - नगरीय पड़ोस का उद्भव
- नगरीकरण पर संयुक्त राष्ट्र जनसंख्या कोष की रिपोर्ट
- भारत में नगरीकरण की समस्याएँ
  - सामाजिक सांस्कृतिक समस्याएँ
  - अतिनगरीकरणजनित समस्याएँ
  - नगरीय समस्याओं के कारण
  - नगरीय समस्याओं के समाधान के प्रयास

12. भारत में मलिन बस्तियाँ

- भारत में गंदी बस्ती की समस्या का स्वरूप
- गन्दी बस्तियों के विकास के कारक
- गन्दी बस्तियों के दुष्परिणाम
- गन्दी बस्तियों के उन्मूलन हेतु किये गये प्रयास
- गन्दी बस्तियों के उन्मूलन हेतु सुझाव
- राष्ट्रीय स्लम विकास कार्यक्रम
- मलिन बस्ती मुक्त भारत मिशन
- प्रधानमंत्री आवास योजना

13. नगरीय विकास : एक विस्तृत विवेचन

- शहरी विकास : एक परिचय
- शहरी विकास : प्रमुख योजनाएँ
  - राष्ट्रीय मलिन बस्ती सुधार कार्यक्रम
  - कम लागत व्यक्तिगत शौचालय योजना
- बाल्मीकि अम्बेडकर आवास योजना
  - स्वरोजगार प्रशिक्षण कार्यक्रम
  - नगरीय मजदूरी रोजगार कार्यक्रम (यू.डब्लू.ई.पी.)
  - नगरीय क्षेत्र में महिला एवं बाल विकास
  - राष्ट्रीय शहरी स्वास्थ्य मिशन
  - स्वर्ण जयन्ती शहरी रोजगार योजना
  - राष्ट्रीय शहरी आजीविका मिशन
  - शहरी आवास विकास
  - शहरी परिवहन विकास
  - राष्ट्रीय शहरी परिवहन नीति
  - राष्ट्रीय शहरी स्वच्छता नीति
  - प्रधानमंत्री आवास योजना-ग्रामीण
  - प्रधानमंत्री आवास योजना-शहरी
  - स्मार्ट सिटी मिशन
  - AMRUT मिशन

14. विकास संबंधी मुद्दे

- विकास एवं विषमता
- विकास और वैयक्तिक विषमता
  - वैयक्तिक विषमता के कारण
  - वैयक्तिक विषमता कम करने हेतु सुझाव
- विकास और क्षेत्रीय विषमता
  - क्षेत्रीय विषमता के कारण
  - क्षेत्रीय विषमता को कम करने हेतु सुझाव
- विकास और शहरी-ग्रामीण विषमता
  - शहरी-ग्रामीण विषमता का कारण
  - शहरी-ग्रामीण विषमता को कम करने हेतु सुझाव
- विकास एवं पर्यावरण
  - पर्यावरणीय समस्याओं का स्वरूप
  - पर्यावरणीय जागरुकता का विकास पर प्रभाव
  - भारत में विकास एवं पर्यावरण में संतुलन हेतु सुझाव
- विकास एवं विस्थापन
  - विकासजनित विस्थापन का स्वरूप
    - ➥ बांध से विस्थापन
    - ➥ शहरी नवीकरण और विकास से उत्पन्न विस्थापन
    - ➥ प्राकृतिक संसाधनों के निष्कर्षण से विस्थापन
  - विस्थापन से उत्पन्न समस्याएँ
  - विकासजनित विस्थापन तथा जनजातीय समूह
  - विस्थापन की समस्या के समाधान हेतु किए गए प्रयास
  - जनजातीय विस्थापन से उत्पन्न समस्याओं को दूर करने हेतु सुझाव
- किसान आत्महत्या
  - किसान आत्महत्या का स्वरूप
  - किसान आत्महत्या के कारण
  - किसान आत्महत्या को दूर करने के लिए किए गए प्रयास
  - किसान आत्महत्या की समस्या को दूर करने हेतु किए गए प्रयासों का मूल्यांकन एवं सुझाव

15. भारत में क्षेत्रवाद

- भारत में क्षेत्रवाद का स्वरूप
- क्षेत्रवाद का महत्त्व

KGS IAS KHAN GLOBAL STUDIES Most Trusted Learning Platform KHAN SIR Dr. S.S. Pandey

- भारत में क्षेत्रवाद के दुष्परिणाम
- भारत में क्षेत्रवाद के कारण
- क्षेत्रवाद की समस्या की रोकथाम हेतु सुझाव

16. भारत में धर्मनिरपेक्षता

- धर्मनिरपेक्षता का उद्‌भव एवं विकास
- भारत में धर्मनिरपेक्षता
- एक धर्मनिरपेक्ष राज्य के रूप में भारत
- भारत में धर्मनिरपेक्षीकरण का सामाजिक प्रभाव
- धर्मनिरपेक्षीकरण की समकालीन चुनौतियाँ

17. भारत में सांप्रदायिकता

- सांप्रदायिकता की अवधारणा
- भारत में सांप्रदायिकता
  - भारत में सांप्रदायिकता के कारण
  - भारत में सांप्रदायिकता के दुष्परिणाम
  - भारत में सांप्रदायिकता निवारण हेतु किए गए प्रयास

18. भारत में महिलाएँ

- भारत में महिलाओं की स्थिति
- भारत में महिलाओं के सीमान्तीकरण के कारण
- महिलाओं की स्थिति में सुधार हेतु किए गए प्रयास
  - संवैधानिक एवं वैधानिक प्रयास
  - नीतिगत एवं योजनागत प्रयास
  - मूल्यांकन एवं सुझाव
- शहरी एवं ग्रामीण समाज में महिलाओं में भूमिका संघर्ष की समस्या
  - भूमिका संघर्ष का महिलाओं पर प्रभाव
  - महिलाओं में भूमिका संघर्ष रोकने के उपाय

19. दहेज प्रथा: महिलाओं की प्रमुख समस्या

- महिलाओं की एक प्रमुख समस्या के रूप में दहेज प्रथा
  - दहेज प्रथा के कारण
  - दहेज प्रथा के दुष्परिणाम
  - दहेज प्रथा के उन्मूलन हेतु किए गए उपाय
  - मूल्यांकन एवं सुझाव

20. भारत में महिलाओं के प्रति हिंसा

- महिलाओं के प्रति हिंसा : परिचय
- बलात्कार, यौन शोषण और दुर्व्यवहार
- जे.एस. वर्मा समिति की रिपोर्ट एवं सिफारिशें
- कार्यस्थल पर महिलाओं का यौन उत्पीड़न
  - यौन सुरक्षा का औचित्य
  - कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न के सन्दर्भ में सर्वोच्च न्यायालय के निर्देश
  - यौन उत्पीड़न (रोकथाम, प्रतिषेध एवं प्रतितोष) अधिनियम, 2013
- पारिवारिक उत्पीड़न और दहेज हत्या
- घरेलू हिंसा संरक्षण अधिनियम, 2005
- वेश्यावृत्ति तथा अनैतिक व्यापार
- अश्लील साहित्य
  - महिला अशिष्ट रुपण (प्रतिषेध) अधिनियम
- कन्या भ्रूण हत्या
  - पीसी एण्ड पीएनडीटी एक्ट-1994
- भारत में तेजाब हमला
- संयुक्त राष्ट्र शरणार्थी एजेंसी (UNHCR) द्वारा शरणार्थी महिलाओं के लिए पहल
- लैंगिक समानता को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय संगठन 'यूएन वीमेन'
- संयुक्त राष्ट्र द्वारा महिला हिंसा विरोध घोषणा-पत्र

21. भारत में वेश्यावृत्ति

- भारत में वेश्यावृत्ति की समस्या
  - भारत में वेश्यावृत्ति का स्वरूप
  - वेश्यावृत्ति का भारतीय समाज पर प्रभाव
  - वेश्यावृत्ति का कारण
  - वेश्यावृत्ति को रोकने के लिए किए गए उपाय
  - मूल्यांकन एवं सुझाव
- महिलाओं का अनैतिक व्यापार अधिनियम-1956
- भारत में वेश्यावृत्ति : एक सर्वेक्षण

22. वैश्वीकरण एवं महिला स्थिति में परिवर्तन

- वैश्वीकरण का महिलाओं पर सकारात्मक प्रभाव
- वैश्वीकरण का महिलाओं पर नकारात्मक प्रभाव

23. भारत में महिला संगठन एवं महिला आंदोलन

- भारत में महिला आंदोलन : स्वरूप
  - प्रथम काल (1930 -1932 तक)
  - द्वितीय काल (1947-1970)
  - तृतीय काल (1970-1985 तक)
  - चतुर्थ काल (1985 से आगे)
- भारत में महिला आंदोलन के कारण

24. भारत में कमजोर वर्ग: महिलाएँ

- भारत में अतिसंवेदनशील वर्ग के रूप में महिलाएँ
- विभिन्न क्षेत्रों में महिलाओं का सीमान्तीकरण
  - आर्थिक क्षेत्र में सीमान्तीकरण
  - राजनीतिक क्षेत्र में सीमान्तीकरण
  - सामाजिक क्षेत्र में सीमान्तीकरण

KGS IAS KHAN GLOBAL STUDIES Most Trusted Learning Platform KHAN SIR Dr. S.S. Pandey

- महिलाओं के सीमान्तीकरण से जुड़ी समस्याएँ
- महिलाओं की स्थिति में सुधार हेतु संवैधानिक, कानूनी, संस्थागत, योजनागत एवं अन्य प्रयास
  - संवैधानिक प्रयास
  - कानूनी प्रयास
  - विभिन्न आयोग एवं समितियाँ
  - महिलाओं की स्थिति में सुधार हेतु नीतियाँ, योजनाओं एवं कल्याणकारी कार्यक्रमों के द्वारा किए गए प्रयास

25. भारत में शिक्षा एवं महिला सशक्तिकरण

- शिक्षा एवं महिला सशक्तिकरण
  - स्वतंत्रता पूर्व महिला शिक्षा हेतु किये गये प्रयास
  - स्वतंत्र भारत में महिला शिक्षा हेतु किए गए प्रयास
  - मूल्यांकन एवं सुझाव
- महिलाओं के शैक्षिक उत्थान हेतु कार्यक्रम/योजनाएँ

26. भारत में आरक्षण एवं महिला सशक्तिकरण

- आरक्षण एवं महिला सशक्तिकरण
- भारत में आरक्षण एवं महिला सशक्तिकरण : समसामयिक मुद्दे एवं आंकड़े
  - महिला आरक्षण विधेयक
  - संसद में आरक्षण से महिलाओं पर प्रभाव

27. भारत में पंचायतीराज एवं महिला सशक्तिकरण

- पंचायतीराज एवं महिला सशक्तिकरण
- भारत में पंचायतीराज एवं महिला सशक्तिकरण: समसामयिक मुद्दे एवं आंकड़े

28. समान नागरिक संहिता एवं महिला सशक्तिकरण

- समान नागरिक संहिता एवं महिला सशक्तिकरण
  - समान नागरिक संहिता की आवश्यकता
  - निजी कानूनों का महिलाओं पर नकारात्मक प्रभाव
  - समान नागरिक संहिता न बन पाने के कारण
  - समान नागरिक संहिता को सुनिश्चित करने के लिए सुझाव
- लिंग संबंधी मुद्दों पर स्वामीनाथन समिति की संस्तुतियाँ

✪✪✪✪✪

KGS IAS KHAN GLOBAL STUDIES Most Trusted Learning Platform KHAN SIR
Dr. S.S. Pandey

KGS IAS
KHAN GLOBAL STUDIES
Most Trusted Learning Platform
KHAN SIR
Dr. S.S. Pandey

1 भारतीय समाज : पारिभाषिक शब्दावली (Indian Society : Terminology)

मनुष्य (Mortal)

एक विवेकशील एवं सृजनशील प्राणी जिसमें दो पैरों पर खड़ा होने और हाथों की विशिष्ट बनावट के कारण संस्कृति एवं सभ्यता के निर्माण की क्षमता होती है।

समाज (Society)

सामान्यत: समाज को व्यक्तियों का एक ऐसा समूह माना जाता है, जिनकी एक साझा संस्कृति होती है, इस समूह के व्यक्ति एक निश्चित क्षेत्र में रहते हैं और एक अलग संगठित इकाई के रूप में अपने आपको कुछ बंधनों में बँधा हुआ अनुभव करते हैं। कुछ समाजशास्त्री समाज को व्यक्तियों का समूह या कोई संकलन नहीं मानते हैं, वे इसे सामाजिक संबंधों की एक ऐसी अमूर्त व्यवस्था मानते हैं जिसमें हम रहते और जीते हैं।

सामाजिक मूल्य (Social Value)

मूल्य वे सांस्कृतिक अथवा व्यक्तिगत धारणाएँ व आदर्श हैं जिनके द्वारा वस्तुओं और घटनाओं की एक-दूसरे के साथ तुलना की जाती है। ये वे कसौटियाँ और व्यवहार के पैमाने हैं जिनके आधार पर अच्छे-बुरे, वांछित-अवांछित, सही-गलत, करणीय और अकरणीय का निर्णय दिया जाता है, जैसे-न्याय, स्वतंत्रता, देश भक्ति, अहिंसा, ईमानदारी सच्चाई आदि।

सामाजिक मानदंड (Social Standard)

समाज के समाजोनुमोदित तरीकों अथवा नियमाचारों को सामाजिक मानदंड कहते हैं। किसी विशिष्ट सामाजिक स्थिति में व्यक्ति द्वारा किस प्रकार का व्यवहार उपयुक्त होगा यह सामाजिक मानदंडों द्वारा निर्धारित होता है।

संस्कृति (Culture)

संस्कृति उन सभी व्यवहार प्रतिमानों के लिए प्रयुक्त किया जाने वाला एक सामूहिक शब्द है जो सामाजिक रूप से अर्जित तथा सामाजिक रूप से हस्तांतरित किए जाते हैं। संस्कृति संचरण औपचारिक अथवा अनौपचारिक सीखने अथवा प्रशिक्षण दोनों प्रक्रियाओं द्वारा होता है अर्थात् संस्कृति हमारे रहन-सहन तथा सोचने समझने की शैली में हमारे प्रतिदिन की बातचीत में, कला, साहित्य, धर्म, मनोरंजन तथा आमोद-प्रमोद में हमारे स्वभाव की अभिव्यक्ति है।

सभ्यता (Civilization)

संस्कृति का वह पक्ष जो भौतिक वस्तुओं अथवा शिल्प तथ्यों या ऐसी वस्तुओं से बना होता है, जिन्हें अभौतिक संस्कृति कोई अर्थ अथवा महत्त्व प्रदान करती है, सभ्यता कहलाती है। मानव ने अपनी सुख-सुविधा और प्रकृति से अपनी आत्मरक्षा करने के लिए जिन वस्तुओं का सृजन किया है, वे सभी सभ्यता के भाग हैं, जैसे-मकान, अस्त्र-शस्त्र वस्त्र, आभूषण, कल-कारखाने आदि।

परंपरा (Tradition)

परंपरा, परिपाटियों का एक पुंज है, जो कुछ व्यवहार संबंधी मानदंडों और मूल्यों जो इस आधार पर अपनाए जाने या संपन्न किए जाने पर बल देते हैं कि इनका वास्तविक या काल्पनिक भूत के साथ तारतम्य है। बहुधा इन परंपराओं के साथ व्यापक रूप से स्वीकृत कर्मकाण्ड या प्रतीकात्मक व्यवहार के अन्य स्वरूप जुड़े होते हैं। परंपरा में हस्तान्तरण या संचरण की प्रक्रिया निहित होती है, जिसके द्वारा एक समाज अपनी संस्कृति को अक्षुण्ण बनाए रखता है।

आधुनिकता (Modernity)

बुद्धिवाद और उपयोगितावाद के दर्शन पर आधारित सोचने समझने और व्यवहार करने के ऐसे तौर-तरीकों को सामान्यत: आधुनिकता कहा जाता है जिसमें प्रगति की आकांक्षा, विकास की आशा और परिवर्तन के अनुरूप अपने आपको ढालने का भाव निहित होता है। आधुनिकता की कई विशेषताएँ बताई गई हैं, जैसे- परानुभूति, वैज्ञानिक विश्वदृष्टि, अमूर्तिकरण, भविष्योन्मुखता, सार्वभौमिक दृष्टिकोण, धर्मनिरपेक्षता, वैयक्तिकता, मुक्ति, उन्नत एवं परिष्कृत प्रौद्योगिकी आदि आधुनिकता के प्रमुख लक्षण हैं। आधुनिकता बुद्धिवादी बनने, अंधविश्वासों से बाहर निकलने, नैतिकता में उदारता बरतने की एक प्रक्रिया है।

पारंपरिक समाज (Traditional Society)

पारंपरिक समाज अपेक्षाकृत धीमी गति से परिवर्तित होने वाला एक ऐसा समाज होता है जिसमें सामाजिक प्रस्थिति का निर्धारण अधिकांशत: जन्म, नातेदारी, आयु, जाति-प्रजाति के आधार पर होता

है। ऐसे समाज में मूल्यों की एक अधिक समरूप संरचना देखने को मिलती है जिसमें विशेषीकरण कम से कम होता है, सामान्यत: सामाजिक ढाँचा सत्तावादी होता है और अधिकांशत: ऐसे समाज भूमिगत कुलीनतंत्र वाली व्यवस्था लिए होते हैं। पारंपरिक समाज के व्यक्ति पारलौकिक विचार एवं भाग्यवादी मूल्य-व्यवस्था, रूढ़िगत धार्मिक आस्था और विश्वास, जिसमें तार्किकता का अभाव होता है, से निर्देशित होते हैं।

आधुनिकीकरण (Modernisation)

आधुनिकीकरण राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक परिवर्तन तथा आर्थिक विकास की एक ऐसी मिली-जुली पारस्परिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा ऐतिहासिक तथा समकालीन अविकसित समाज अपने आपको विकसित करने में संलग्न रहते हैं। जहाँ कहीं, जब कभी और जिस किसी संदर्भ में इसकी उत्पत्ति हुई, इसकी मूल आत्मा तार्किकता, वैज्ञानिक भावना तथा परिष्कृत तकनीक से जुड़ी रही है। परिवर्तन की एक विशिष्ट प्रक्रिया के रूप में आधुनिकीकरण एक विशिष्ट वांछित प्रकार की तकनीक तथा उससे संबंधित सामाजिक संरचना, मूल्य-व्यवस्था, प्रेरणाओं तथा आदर्श-नियमाचारों का एक पुंज है, जो पारंपरिकता से भिन्न होता है।

पश्चिमीकरण (Westernization)

पाश्चात्य संस्कृति के संघात के द्वारा उत्पन्न परिवर्तन की सामाजिक प्रक्रिया (संपूर्ण जीवन शैली एवं विचार व्यवस्था) को पश्चिमीकरण की संज्ञा दी गई है। भारत में हो रहे सामाजिक परिवर्तन के संदर्भ में एम.एन. श्रीनिवास ने पश्चिमीकरण शब्द का प्रयोग ब्रिटिश राज्य के 150 वर्षों के शासन के परिणामस्वरूप भारतीय समाज व संस्कृति में उत्पन्न हुए परिवर्तनों के लिए किया है। पश्चिमीकरण और आधुनिकीकरण शब्दों को कई बार पर्यायवाची के रूप में एक दूसरे के स्थान पर प्रयोग कर लिया जाता है। किंतु तार्किक दृष्टि से यह ठीक नहीं है। आधुनिकीकरण की अवधारणा पश्चिमीकरण से अधिक व्यापक है। इसमें सभी गैर पश्चिमी देशों या पश्चिमी देशों के द्वारा लाए गए परिवर्तनों को सम्मिलित किया जाता है।

औद्योगिक समाज (Industrial Society)

अति सरल अर्थ में, औद्योगिक समाज से तात्पर्य एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था से है, जिसमें उत्पादन की विधि के रूप में शक्ति संचालित मशीनों का प्रयोग किया जाता है और जिसमें उद्योगवाद की सभी विशेषताएँ पाई जाती हैं। इस प्रकार के समाज की प्रमुख विशेषताएँ यंत्रीकरण श्रम-विभाजन, विशेषीकरण तथा इनके साथ जुड़े हुए कुछ अन्य परिवर्तन हैं जिनमें प्रमुखत: संचार के साधनों तथा परिवहन के उन्नत रूपों का प्रयोग, बढ़ता हुआ शहरीकरण, वृहत बाजार प्रणाली, प्रव्रजन, उपभोग की आदतों में परिवर्द्धन आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। उद्योगवाद ने इस प्रकार के सामाजिक जीवन को विकसित किया है जिसमें अनजानपन, निर्वैयक्तिकता, प्राथमिक संबंधों तथा प्राथमिक नियंत्रण प्रणाली का ह्रास, द्वितीयक समूहों की दिन-प्रतिदिन बढ़ती हुई भूमिका आधुनिक औद्योगिक समाज का पर्याय बनते जा रहे हैं।

उत्तर औद्योगिक समाज/उत्तर उद्योगवाद (Past Industrial Society)

उत्तर औद्योगिक समाज या उत्तर उद्योगवाद एक ऐसा विचार है जिसका प्रतिपादन उन व्यक्तियों द्वारा किया गया है जो यह मानते हैं कि सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया हमें औद्योगिक समाज के परे एक ऐसे समाज की ओर ले जा रही है जो भौतिक वस्तुओं के उत्पादन की अपेक्षा सूचनाओं के उत्पादन पर आधारित है। आज जो परिवर्तन हो रहा है वह एक नए समाज की ओर संक्रमण का संकेत देता है। यह नया समाज अब उद्योगवाद पर आधारित नहीं है। इस नई व्यवस्था के लिए कई शब्दों यथा सूचना समाज, सेवा समाज या ज्ञान समाज का प्रयोग किया गया है। कुछेक विद्वानों का मत है कि हम औद्योगिक विकास के पुराने रूपों से परे बढ़ रहे हैं, अत: इसके लिए 'उत्तरकालीन' (पोस्ट) सर्वाधिक उपयुक्त शब्द है। इसी आधार पर उत्तर औद्योगिक समाज, उत्तर आधुनिक समाज और उत्तर अभावग्रस्त (scarcity) समाज जैसे संबोधनों का प्रयोग हुआ है।

कृषिक/कृषिहर समाज (Forming Society)

ऐसा समाज जिसके व्यक्तियों के जीविकोपार्जन का प्रमुख धंधा कृषि या कृषि पर केन्द्रित अन्य धंधे होते हैं, उसे कृषिहर समाज कहा जाता है। कृषिहर समाज निश्चित तौर पर आखेटक-संग्राहक समाज और बागवानीय समाज से भिन्न होते हैं। जहाँ आखेटक-संग्राहक समाज में किसी प्रकार का उत्पादन नहीं किया जाता, वहाँ बागवानीय समाजों में भोज्य सामग्री का उत्पादन बड़े-बड़े खेतों की अपेक्षा छोटे-छोटे बाग-बगीचों में किया जाता है।

धर्मनिरपेक्ष समाज (Secular Society)

ऐसा समाज जिसमें उपयोगितावादी तथा तर्क संगत मूल्यों पर अधिक बल दिया जाता है तथा जो परिवर्तन तथा नवाचारों को प्रश्रय देता है, लौकिक अथवा धर्मनिरपेक्ष समाज कहलाता है। इस प्रकार के समाज में धर्म के आधार पर कोई भेद-भाव नहीं किया जाता है। अधि-दैविक मूल्यों तथा परंपरावाद एवं रूढ़िवाद को हेय दृष्टि से देखा जाता है तथा तर्क एवं वैज्ञानिक दृष्टि को महत्त्व प्रदान किया जाता है।

सामाजिक स्तरीकरण (Social Stratification)

किसी सामाजिक व्यवस्था में प्रतिष्ठा, प्रभाव, शक्ति, सम्पत्ति तथा सुविधाओं आदि की भिन्नता के आधार पर प्रस्थितिओं एवं भूमिकाओं की एक अपेक्षाकृत स्थाई श्रेणीबद्धता को सामाजिक स्तरीकरण कहते हैं। यह एक विशिष्ट प्रकार के सामाजिक विभेदीकरण की एक व्यवस्था है, जिसमें सामाजिक पदों की ऊँच-नीच पर आधारित श्रेणीबद्धता होती है। इन सामाजिक पदों के धारक सामजिक महत्त्व की दृष्टि से एक-दूसरे से उच्चता, समानता अथवा निम्नता का व्यवहार करते हैं। इसका प्रमुख तत्व 'श्रेणीबद्ध संस्तरण' है। यह संस्तरण असमानता या विषमता को जन्म देता है। जाति-व्यवस्था, वर्ग-व्यवस्था तथा सम्पत्ति व्यवस्था, दास प्रथा सामाजिक स्तरीकरण के प्रमुख रूप हैं।

जाति (Caste)

जाति समान पारम्परिक (आनुवंशिक) पेशे वाला एक ऐसा अन्तर्विवाही समूह है जिसकी सदस्यता जन्म से निश्चित होती है तथा जिसके सदस्य सामाजिक व्यवहार, खान-पान सामाजिक धार्मिक संस्कार आदि के मामलों में कुछ निश्चित प्रतिबंधों का पालन करते हैं। जाति भारतीय हिन्दुओं के संपूर्ण जीवन को नियमित एवं प्रभावित करती है। इसका उद्‌गम चातुर्वर्ण्य विभाजन (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र) अर्थात् वर्ण-व्यवस्था ही रहा है। स्वतंत्रता के बाद (सन् 1947) भारतीय सरकार ने संवैधानिक प्रावधानों और कानूनों द्वारा इस संस्था को समाप्त करने का प्रयास किया है, किन्तु प्रजातंत्रात्मक राजनीति ने इस संस्था को नष्ट करने के स्थान पर अधिक मजबूत बना दिया।

वर्ग (Category)

एक वर्ग व्यक्तियों का एक ऐसा समूह है, जिनकी किसी समाज में समान आर्थिक स्थिति होती है। मार्क्सवादी धारणा के अनुसार वर्ग ऐसे लोगों का एक समूह है, जिनकी उत्पादन की प्रणाली के आधार पर समान प्रस्थिति होती है और जो राजनीतिक शक्ति-संरचना के साथ साझे रूप में जुड़े होते हैं। वर्ग-व्यवस्था आधुनिक औद्योगिक समाजों (खुले समाज) की एक विशेषता है, जिसका आधार अर्जित प्रस्थिति है। यह व्यक्तिगत उपलब्धि पर निर्भर करती है। इस व्यवस्था में शीर्ष गतिशीलता संभव है।

सामाजिक गतिशीलता (Social mobility)

किसी समाज की सामाजिक स्तरीकरण की व्यवस्था में सामान्यत: व्यक्तियों और कभी-कभी किसी संपूर्ण समूह की भिन्न पद प्रस्थितियों के बीच होने वाले संक्रमण/परिवर्तन को सामाजिक गतिशीलता कहते हैं। अत्यंत साधारण अर्थों में आय के बढ़ने या घटने के कारण किसी व्यक्ति का एक वर्ग से दूसरे वर्ग में प्रवेश की स्थिति सामाजिक गतिशीलता को इंगित करती है। सामाजिक गतिशीलता सामाजिक जगत् में पद प्रस्थिति या प्रस्थिति संस्तरण में होने वाले परिवर्तनों का संकेत देती है। यह जरूरी नहीं है कि इस प्रकार के परिवर्तनों से संपूर्ण संस्तरण व्यवस्था में ही कोई संरचनात्मक परिवर्तन होता है।

नातेदारी (Relation)

सामाजिक रूप से मान्यता प्राप्त ऐसे संबंधों को नातेदारी या स्वजनता कहा जाता है, जो रक्त, विवाह अथवा दत्तकता पर आधारित होते हैं। नातेदारी व्यवस्थाएँ माता-पिता और संतानों के बीच, सहोदरों (भाई-बहनों) के बीच तथा वैवाहिक दम्पतियों के बीच जैविकीय संबंधों के प्रतिरूप के अनुसार व्यक्तियों और समूहों के बीच संबंध स्थापित करते हैं।

सभी समाजों में परिवार और नातेदारी समूहों को परिभाषित करने तथा इन संबंधों को किस प्रकार संगठित किया जाएगा, इसके बारे में सामान्य मानदंड होते हैं। कौन व्यक्ति साथ-साथ रह सकते हैं, समूह का मुखिया कौन है, कौन किसके साथ विवाह कर सकता है, जीवन साथी का चुनाव कैसे होता है, परिवार और नातेदारी समूह में कौन से संबंधी अधिक महत्त्वपूर्ण हैं और बालकों का पालन पोषण कैसे और किसके द्वारा किया जाएगा आदि सभी विषयों के बारे में मानदंड होते हैं। इन मानदंडों के बारे में अलग-अलग समाजों में काफी भिन्नता है, फिर भी कुछ ऐसे सामान्य मानदंड होते हैं जो परिवार के सदस्यों की प्रस्थितियों और भूमिकाओं का निर्धारण करते हैं।

परिवार (Family)

परिवार व्यक्तियों का एक ऐसा समूह है, जो विवाह, रक्त अथवा दत्तक बंधनों से बंधा होता है। इसके द्वारा एक गृहस्थी की रचना होती है। इसके सदस्य पति-पत्नी माता-पिता भाई-बहन की सामाजिक भूमिकाओं में एक दूसरे से अंतर्क्रिया तथा अंतर्सम्प्रेषण करते हुए एक सामान्य संस्कृति की रचना करते हैं। विस्तृत अर्थों में परिवार एक ऐसा समूह है जिसमें दत्तक व्यक्तियों सहित कुछ वैवाहिक एवं रक्त संबंधी सम्मिलित होते हैं तथा जिसे एक सामाजिक इकाई के रूप में मान्यता प्राप्त होती है।

विवाह (Marriage)

पारंपरिक रूप से, विवाह दो या दो से अधिक विषमलिंगियों के बीच समाजोनुमोदित, औपचारिक तथा अपेक्षाकृत स्थाई लैंगिक संबंधों की एक व्यवस्था एवं नियमाचारों का एक पुंज है, जो पारिवारिक

जीवन के लिए आवश्यक पारस्परिक दायित्वों एवं अधिकारों द्वारा इन्हें एक सूत्र में बांधता है। जैवकीय दृष्टि से विवाह की संस्था का उद्भव मानव की प्रजनन तथा बालकों के लालन-पालन की मूलभूत आवश्यकताओं को लेकर हुआ प्रतीत होता है। वास्तव में संभोग (सेक्स) तथा पितृत्व दोनों का संयोग मानवीय विवाह का मूलाधार रहा है।

आर्थिक व्यवस्था (Economic System)

भौतिक वस्तुओं एवं सेवाओं के उत्पादन एवं वितरण की व्यवस्था को आर्थिक व्यवस्था कहा जाता है। आर्थिक व्यवस्था के उद्विकासक्रम को निम्न रूप में देखा जा सकता है:-

1. खाद्य संकलन एवं शिकारी अर्थव्यवस्था
2. पशुपालन अर्थव्यवस्था
3. कृषि अर्थव्यवस्था
4. औद्योगिक अर्थव्यवस्था

शक्ति (Power)

मानव पर प्रभुत्व करने, भयभीत करने तथा नियंत्रित करने, आज्ञा पालन करवाने, उनकी स्वतंत्रताओं में हस्तक्षेप करने तथा उनके व्यहार को एक विशिष्ट दिशा में मोड़ने के लिए बाध्य करने की योग्यता अथवा सत्ता को शक्ति कहते हैं। शक्ति स्तरीकरण (स्ट्रैटिफिकेशन) की एक मूलभूत अवधारणा है, जिसके वर्ग, प्रस्थिति और दल तीन पृथक (कभी कभी संबंधित) आयाम हैं। शक्ति एक व्यक्ति की अपनी इच्छाओं की पूर्ति की क्षमता है, चाहे दूसरे व्यक्ति इसका विरोध करते हों।

सत्ता (Existence/Power)

दूसरे व्यक्यिों के व्यवहारों को व्यवस्थित (नियंत्रित) करने तथा उनके संबंध में निर्णय लेने के प्रस्थापित अधिकार को या शक्ति के वैधतायुक्त प्रयोग को सत्ता कहते हैं। यह शक्ति के प्रयोग के प्रमुख रूपों में से एक है, जिसमें अनेक व्यक्तिगत मानवीय कर्ताओं की क्रियाओं को आदेशात्मक तरीके से निर्देशित किया जाता है ताकि किसी विशिष्ट लक्ष्य अथवा सामान्य लक्ष्यों की प्राप्ति हो सके। मैक्स वेबर ने सत्ता की विवेचना शक्ति के रूप में की है और उन्होंने सत्ता के तीन रूपों की चर्चा की है- पारस्परिक सत्ता, तार्किक कानूनी सत्ता और करिश्माई सत्ता।

राज्य (State)

समाज का वह पक्ष अभिकरण अथवा संस्था, राज्य के नाम से जानी जाती है जिसे किसी निर्दिष्ट भू-क्षेत्र पर शारीरिक शक्ति के प्रयोग का वैधानिक एकाधिकार प्राप्त होता है। राज्य सरकार तथा देश में अंतर है। देश व्यक्तियों का एक स्वायत्तता प्राप्त राजनीतिक संगठन होता है। सरकार व्यक्तियों का एक ऐसा समूह है जिसे राज्य के प्रयोजनों को पूरा करने का दायित्व सौंपा गया होता है तथा इन दायित्वों को निभाने के लिए उसे सभी अधिकार प्राप्त होते हैं। इसके विपरीत राज्य के अंतर्गत शक्ति प्रयोग संबंधी सभी संस्थाएँ, परिपाटियाँ, परंपराएँ तथा राजनीतिक साधन जैसे संविधान एवं चार्टर आदि सम्मिलित किए जाते हैं।

सरकार (Government)

कानून नामक संस्थात्मक क्रिया को संपादित करने वाली समिति को सरकार की संज्ञा दी जाती है। इस समिति की रचना पूरे समाज या इसके किन्हीं प्रतिनिधियों द्वारा होती है जिसका कार्य कानून बनाना, कानून लागू करना तथा न्याय की व्यवस्था करना होता है।

राजतंत्र (Monarchy)

राजनैतिक व्यवस्था का वह रूप जहाँ राज्य की शक्ति किसी व्यक्ति विशेष के पास केन्द्रित होती है। यह शक्ति उसको विरासत में प्राप्त होती है तथा वह अपनी अगली पीढ़ी को हस्तान्तरित कर देता है और राजा द्वारा इस शक्ति के उपभोग करने के अधिकार को धर्म के आधार पर वैध ठहराया जाता है।

लोकतंत्र (Democracy)

प्रजातंत्र या लोकतंत्र एक दर्शन, आदर्शों का एक पुंज या एक सामाजिक- राजनीतिक प्रणाली है जो कि समुदाय के प्रत्येक व्यक्ति को मानव प्राणी के नाते अपने व्यक्तित्व के आधार पर समुदाय की गतिविधियों में भाग लेने तथा समानुपातिक रूप से उन पर नियंत्रण स्थापित करने पर बल देती है। एक शासन प्रणाली के रूप में लोकतंत्र में सत्ता का केंद्रीकरण जनता के हाथों में होता है। शाब्दिक दृष्टि से भी प्रजातंत्र का अर्थ जनता की सत्ता है। जनता अपने चुने हुए प्रतिनिधियों द्वारा समाज पर शासन-प्रशासन करती है। लोकतंत्र एक ऐसे शासन का प्रतिनिधित्व करता है जिसमें अब्राहम लिंकन के अनुसार सरकार जनता की जनता के द्वारा, जनता के लिए होती है।

धर्म (Religion)

टायलर के अनुसार, धर्म देवी-देवताओं तथा अन्य अधि मानवीय प्राणियों जैसे पूर्वज अथवा आत्माओं के प्रति विश्वास तथा उनसे संबंधित कर्मकाण्ड की एक व्यवस्था है। दुर्खीम के अनुसार धर्म पवित्र वस्तुओं से संबंधित विश्वास तथा कर्मकाण्डों की एक संगठित व्यवस्था है, जो उन व्यक्तियों को एक एकल सामाजिक नैतिक

समुदाय में बाँधता है जो इसका अनुसरण करते हैं। सामान्य रूप में, धर्म मानवीय जीवन के अज्ञात एवं अज्ञेय पक्षों जैसे जीवन, मृत्यु और उसके अस्तित्व के रहस्यों को जानने तथा उनके साथ व्यवहार करने का एक तरीका है। यही नहीं, धर्म नैतिक निर्णयों को लेने की प्रक्रिया में उत्पन्न कठिन असमंजस की स्थिति में उसकी सहायता भी करता है।

पंथ/संप्रदाय (Sect)

एक संप्रदाय धार्मिक रूप से सक्रिय व्यक्तियों का एक सामाजिक समूह होता है जिनके विश्वास विशिष्ट रूप से रहस्यता, व्यक्तिवादी एवं समन्वयात्मक होते हैं। इसकी सदस्यता ऐच्छिक होती है तथा इसका कोई भी औपचारिक संगठन नहीं होता है।

विज्ञान (Science)

मानवीय ज्ञान संबंधी समस्याओं का एक दृष्टिकोण विज्ञान के नाम से जाना जाता है जिसके द्वारा आनुभविक प्रेक्षण (इंद्रियों द्वारा प्राप्त अनुभव) के आधार पर असीमित वर्ग की घटनाओं के संबंध में सामान्य सिद्धांत खोजने का प्रयास किया जाता है। विज्ञान से तात्पर्य ऐसे व्यवस्थित एवं वस्तुनिष्ठ ज्ञान से है जिसका सत्यापन इंद्रियों के माध्यम से किया जाना संभव है। विज्ञान को जब एक पद्धति के रूप में परिभाषित किया जाता है तब विज्ञान का अर्थ ज्ञान प्राप्ति की एक व्यवस्थित पद्धति से होता है।

सामाजिक परिवर्तन (Social Change)

किसी समाज की सामाजिक संरचना (सामाजिक संबंधों का तानाबाना) अथवा सामाजिक संगठन संस्थानों और सामाजिक भूमिकाओं अथवा समाज के अन्य उपादानों में समय अंतराल के साथ होने वाले बदलाव और परिष्करण की प्रक्रिया को सामाजिक परिवर्तन कहते हैं। यह अवधारणा किसी समाज के किन्हीं लघु समूहों में हुए छुट-पुट बदलाव की अपेक्षा वृहद् सामाजिक प्रणाली या संपूर्ण संबंधों की व्यवस्था में आए व्यापक बदलाव को इंगित करती है।

विकास (Development)

विकास परिवर्तन की एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा एक देश के अधिकाधिक नागरिक उच्च भौतिक रहन-सहन के स्तर, स्वस्थ एवं दीर्घ जीवन प्राप्त करने के साथ-साथ अधिकाधिक मात्रा में शिक्षित होने का प्रयास करते हैं। व्यापक अर्थों में, वांछित लक्ष्यों की ओर बढ़ने का नाम ही विकास है, किंतु इसमें प्रयुक्त साधनों और यंत्रों का भी उतना ही महत्त्व है, जितना लक्ष्य का। सार रूप में किसी समाज की विद्यमान दशा में कुछ सकारात्मक प्रगति का नाम विकास है। विकास किसे कहा जाए, इसकी धारणा एक समाज से दूसरे समाज में बदलती रहती है। मोटे रूप में विकास के तीन प्रमुख प्रतिरूपों का प्रयोग किया गया है- 1. पूँजीवादी या उदारवादी मॉडल, 2. समाजवादी या मार्क्सवादी मॉडल तथा 3. मिश्रित मॉडल।

विचारधारा (Ideology)

विश्व, समाज तथा मानव के प्रति देखने का दृष्टिकोण तथा विचारों की एक संपूर्ण व्यवस्था जिसकी प्रामाणिकता का परीक्षण प्रत्यक्षात्मक विज्ञानों के दायरे से परे होता है विचारधारा कहलाती है। विचारधाराएँ विचारों, अनुमानों और कल्पनाओं का एक समूह होती हैं जो सही हो भी सकती हैं और नहीं भी। ये सामाजिक घटनाओं को सरल बनाने और उन्हें समझने में हमारी सहायता करती हैं। फासीवाद, साम्यवाद और पूँजीवाद बीसवीं सदी की तीन प्रमुख विचारधाराएँ रही हैं।

मानववाद (Humanism)

मानव की गरिमा की पुनर्स्थापना, मानवीय प्रतिष्ठा एवं मानवीय हित के सर्वतोमुखी विकास तथा सामाजिक जीवन हेतु अनुकूल परिस्थितियों के निर्माण की धारणा के आधार पर विकसित विचारधारा को मानववाद का नाम दिया गया है। इस विचारधारा का जन्म मूलत: शोषण एवं सामाजिक बुराई के विरोध स्वरूप हुआ। मानववादी दृष्टिकोण मानव को मानव के नाते समुचित महत्त्व देने पर बल देता है। 'सभी मानव समान हैं', इस विचारधारा का मूलमंत्र है।

उदारवाद (Liberalism)

एक विचारधारा जो व्यक्ति की स्वतंत्रता तथा कल्याण के महत्त्व में विश्वास करती है तथा जो इस बात पर बल देती है कि सामाजिक प्रगति और जीवन में गुणात्मक सुधार सामाजिक संगठन में परिवर्तन तथा नवाचारों द्वारा ही संभव है। इस विचारधारा ने प्रजातंत्र के विकास सार्वभौमिक मताधिकार, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, दास प्रथा की समाप्ति तथा नागरिक अधिकारों में वृद्धि का समर्थन किया। यह विचारधारा सरकार अथवा समृद्ध वर्ग द्वारा व्यक्तियों पर प्रभुत्व या किसी भी प्रकार के हस्तक्षेप का प्रतिकार करती है।

उपयोगितावाद (Utilitarianism)

एक नैतिक एवं मनोवैज्ञानिक सिद्धांत जो इस बात पर बल देता है कि समस्त मानवीय आचरण तथा नियमों की उपयुक्तता की जाँच का एक मात्र उद्देश्य अधिकतम व्यक्तियों का अधिकतम सुख होना चाहिए। यह सिद्धांत बेंथम तथा जॉन स्टूअर्ट मिल के नाम के साथ जुड़ा हुआ है, जिनकी दृष्टि में दु:ख की अपेक्षा सुख ही जीवन का मूलमंत्र है। उपयोगिता ही अधिकतम व्यक्तियों का अधिकतम सुख

है। उपयोगिता को बढ़ाना ही मानव प्राणी के जीवन का यथोचित लक्ष्य है। मानवीय जीवन का यह दर्शनिक उपागम तार्किक सोच वाले व्यक्ति की महत्ता पर बल देता है। इस उपागम द्वारा यह माना जाता है कि मानव जीवन के अस्तित्व का मूलमंत्र बुद्धिसंगत स्वहित है।

समूहवाद/सामूहिकतावाद (Collectivism)

एक ऐसी विचारधारा जो व्यक्तिगत हित के बजाय समाज या समूह के हितों की पूर्ति पर बल देती है।

व्यक्तिवाद (Individualism)

यह एक ऐसा सिद्धांत है जो साधन अथवा साध्य या स्वार्थपरता अथवा परार्थ के रूप में अकेले व्यक्ति की महत्ता अथवा श्रेष्ठता पर बल देता है। राजनीतिक सिद्धांत के रूप में, व्यक्तिवाद, व्यक्ति की स्वतंत्रता, गरिमा तथा हितों की हामी एक ऐसा दृष्टिकोण है जो इन्हीं के आधार पर न्याय, राजनीतिक दायित्व तथा जनहितों की तुष्टि की विवेचना करता है।

आदर्शवाद (Idealism)

दार्शनिक विचारधारा का एक दृष्टिकोण जिसके अनुसार ब्रह्माण्ड की व्याख्या पदार्थ अथवा भौतिक वस्तुओं की अपेक्षा विचारों के आधार पर की जाती है। आदर्शवाद के अनुसार यह माना जाता है कि यथार्थता मुख्यतः इस बात में निहित है कि व्यक्ति उसके बारे में सोच-विचार करते हैं और यह सब कुछ मानवीय विचारों और सिद्धांतों पर निर्भर करता है। आदर्शवाद को मार्क्स के भौतिकवाद का विरोधी विचार माना जाता है, जिसके अनुसार यह माना गया है कि बाह्य संसार मानव के मस्तिष्क की उपज है।

✪✪✪✪✪

KGS IAS
KHAN GLOBAL STUDIES
Most Trusted Learning Platform
KHAN SIR
Dr. S.S. Pandey

2 भारतीय समाज की आधारभूत विशेषताएँ (Basic Features of Indian Society)

अति प्राचीन एवं विशाल भारतीय समाज अनेक धर्मों और जातियों से मिलकर बना हुआ है। लोगों की प्रथाओं, मूल्यों, विश्वासों, रहन-सहन के तरीकों, भोजन एवं वस्त्र आदि में यहाँ काफी भिन्नता देखने को मिलती है। यहाँ के ग्रामीण और नगरीय जीवन में भी स्पष्ट अन्तर दिखलाई पड़ता है। यहाँ एक ओर शिकारी एवं घुमंतू जीवन व्यतीत करने वाली आदिम जनजातियाँ पाई जाती हैं, तो दूसरी ओर नगरीय समुदायों में ऐसे लोग हैं जो नवीनतम यंत्रों के माध्यम से अपनी आजीविका कमाते हैं। भारतीय समाज में हजारों वर्षों से प्रजातीय और सांस्कृतिक सम्मिश्रण भी होता रहा है जिसके कारण भारतीय समाज में विभिन्न प्रजातीय तत्त्व मिश्रित रूप में पाए जाते हैं जो मिलकर एक बहुलवादी समाज की रचना करते हैं।

- विभिन्न संस्कृतियों (द्रविड़, आर्य, मुस्लिम, पश्चिमी आदि) व उनके सम्मिश्रण का भारतीय समाज एवं संस्कृति पर बहुत प्रभाव पड़ा है। परन्तु इस विविधता के बावजूद भारतीय समाज में एक मौलिक एकता भी दिखाई पड़ती है जिसका अनुभव न केवल भारतीय बल्कि विदेशी भी करते हैं।

परंपरागत भारतीय समाज की आधारभूत विशेषताएँ

विभिन्न कालों में भारतीय समाज की विवेचना के उपरांत परंपरागत भारतीय समाज की निम्न विशेषताओं की चर्चा की जा सकती है-

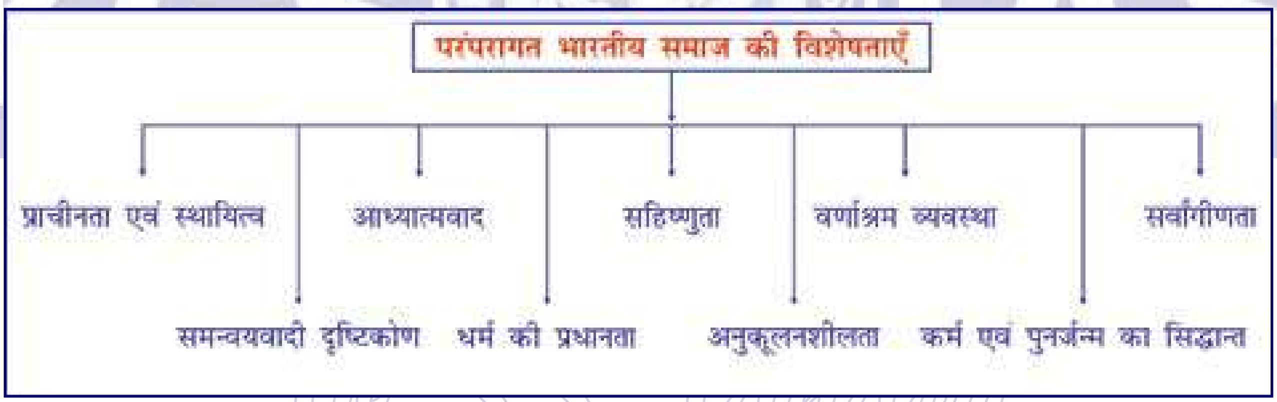

1. ***प्राचीनता एवं स्थायित्व***- भारत की संस्कृति एवं समाज व्यवस्था विश्व की प्राचीनतम संस्कृतियों एवं सामाजिक व्यवस्थाओं में से एक है। समय के साथ-साथ मिस्र, सीरिया, यूनान, रोम आदि की प्राचीन संस्कृतियाँ नष्ट हो गईं और उनके अवशेष मात्र ही बचे हैं, किन्तु हजारों वर्ष बीत जाने पर भी भारत की आदि संस्कृति एवं समाज व्यवस्था आज भी जीवित है। आज भी हम भारत में वैदिक धर्म को मानते हैं। पवित्र वैदिक मंत्रों का यज्ञ एवं हवन के समय ब्राह्मणों द्वारा उच्चारण किया जाता है। विवाह वैदिक रीति से होता है। ग्राम-पंचायत, जातिप्रथा, संयुक्त परिवार प्रणाली आज भी विद्यमान है। गीता, बुद्ध और महावीर के उपदेश आज भी इस देश में जीवित और जाग्रत हैं। आध्यात्मवाद, प्रकृति-पूजा, पतिव्रता धर्म, कर्म और पुनर्जन्म, सत्य, अहिंसा और अस्तेय के सिद्धांत की गूँज आज भी इस देश के लोगों को प्रेरित करती है। सदियाँ बीत गई, अनेक परिवर्तन हुए, विदेशी आक्रमण हुए, किंतु भारतीय समाज एवं संस्कृति का दीपक आज भी प्रज्ज्वलित है, उसका अतीत वर्तमान में भी जीवित है।
2. ***समन्वयवादी दृष्टिकोण***- जनजातीय, हिन्दू, शक, हूण, कुषाण, मुस्लिम, ईसाई आदि सभी संस्कृतियों के प्रभाव से भारतीय संस्कृति नष्ट नहीं हुई वरन् इससे समन्वय एवं एकता भी स्थापित हुई है। भारतीय समाज एवं संस्कृति में समन्वय की महान शक्ति है, जो निरंतर गतिमान रही है और आज तक विद्यमान है।
3. ***अध्यात्मवाद***- धर्म और आध्यात्मिकता भारतीय समाज एवं संस्कृति की आत्मा है। भारतीय संस्कृति में भौतिक सुख और भोग-लिप्सा को कभी भी जीवन का ध्येय नहीं माना गया। यहाँ आत्मा और ईश्वर के महत्त्व को स्वीकार किया गया है और शारीरिक सुख के स्थान पर मानसिक एवं आध्यात्मिक आनन्द को सर्वोपरि माना गया है। इसमें भोग और त्याग का सुन्दर समन्वय पाया जाता है।

4. ***धर्म की प्रधानता***– भारतीय समाज के जनजीवन पर वेदों, उपनिषदों, पुराण, महाभारत, रामायण, भगवद् गीता, कुरान एवं बाइबिल का अत्यधिक गहरा प्रभाव है। इन महान ग्रन्थों ने यहाँ के लोगों को आशावादिता, आस्तिकता, त्याग, तप, संयम आदि का पाठ पढ़ाया है। भारत के लोग सूर्योदय से सूर्यास्त तक तथा जन्म से मृत्युपर्यन्त अनेक धार्मिक कार्यों की पूर्ति करते हैं।
5. ***सहिष्णुता***– भारतीय समाज एवं संस्कृति की एक महान् विशेषता इसकी सहिष्णुता है। भारत में सभी धर्मों, जातियों, प्रजातियों एवं संप्रदायों के प्रति उदारता, सहिष्णुता एवं प्रेमभाव पाया जाता है। हमारे यहाँ समय-समय पर अनेक विदेशी संस्कृतियों का आगमन हुआ और सभी को फलने-फूलने का अवसर दिया गया। हमारे द्वारा असहिष्णु होकर कभी भी विदेशियों एवं अन्य संस्कृति के लोगों पर बर्बर अत्याचार नहीं किए गए।
6. ***अनुकूलनशीलता***– भारतीय संस्कृति को अमर बनाने में इसकी अनुकूलनशील प्रवृत्ति का महान योगदान है। भारतीय संस्कृति अपने दीर्घ जीवन के लिए समय चक्र और परिस्थितियों के अनुसार सदैव समाज के साथ सामंजस्य करती रही है, जिसके परिणामस्वरूप यह आज तक बनी रही है। भारतीय परिवार, जाति, धर्म एवं संस्थाएँ समय के साथ अपने को परिवर्तित करते रहे हैं।
7. ***वर्णाश्रम व्यवस्था***– प्राचीन भारतीय संस्कृति की उल्लेखनीय विशेषता है-वर्ण एवं आश्रमों की व्यवस्था। समाज में श्रम विभाजन हेतु चार वर्णों-ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र वर्ण की रचना की गई। ब्राह्मण समाज, बुद्धि और शिक्षा के प्रतीक हैं तो क्षत्रिय शक्ति के, वैश्य भरण-पोषण एवं अर्थव्यवस्था का संचालन करते हैं तो शूद्र समाज की सेवा करते हैं।
8. ***कर्म एवं पुनर्जन्म का सिद्धांत***– भारतीय संस्कृति में कर्म को अत्यधिक महत्त्व दिया गया है। यह माना जाता है कि अच्छे कर्मों का फल अच्छा और बुरे कर्मों का फल बुरा मिलता है। श्रेष्ठ कर्म करने वाले को ऊँची योनि में जन्म और सुखी जीवन व्यतीत करने का अवसर मिलता है जबकि बुरे कर्म करने वाले को निम्न योनि में जन्म लेना होता है तथा नाना प्रकार के कष्ट उठाने पड़ते हैं। अत: कर्म और पुनर्जन्म के सिद्धान्त द्वारा भारतीयों को सदैव अच्छे कर्म करने की प्रेरणा दी गई है।
9. ***सर्वांगीणता***– भारतीय समाज एवं संस्कृति की एक विशेषता यह है कि इसका संबंध किसी एक जाति, वर्ण, धर्म, या किसी व्यक्ति विशेष से नहीं होकर समाज के सभी पक्षों से है और इसके निर्माण में राजा, किसान, मजदूर, शिक्षित, शूद्र, ब्राह्मण आदि सभी का योगदान रहा है। भारतीय संस्कृति में कहा गया है 'सर्वे भवन्तु सुखिन:' अर्थात सभी सुखी हो।

परंपरागत भारतीय समाज के आधार

किसी भी सामाजिक व्यवस्था के अस्तित्व के लिए आवश्यक है कि उसके सदस्यों के लक्ष्यों एवं कर्तव्यों का निर्धारण किया जाए और नियमानुसार इन लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु उन्हें उचित प्रेरणा प्रदान की जाए, साथ ही उनके बीच एकीकरण एवं सामंजस्य स्थापित करते हुए सामाजिक व्यवस्था के संतुलन एवं निरंतरता को बनाए रखा जाए।

इस संदर्भ में भारतीय सामाजिक संगठन को भी कई आधारों पर संगठित किया गया है। इन आधारों में धर्म, पुरुषार्थ, कर्म का सिद्धांत, ऋण तथा यज्ञ सर्वाधिक प्रमुख हैं।

धर्म (Religion)

धर्म हिन्दू सामाजिक संगठन का केन्द्रीय आधार है, जिसको परिभाषित करते हुए कहा गया है कि धर्म चारों वर्णों एवं आश्रमों के सदस्यों द्वारा जीवन के चार पुरुषार्थों के संबंध में पालन करने योग्य मनुष्य का संपूर्ण कर्तव्य है। अर्थात् हिंदू धर्म को जीवन के कर्तव्य (कर्म) के रूप में देखा गया है तथा वर्ण-धर्म, आश्रम-धर्म, कुल-धर्म, राज-धर्म, स्व-धर्म आदि के रूप में वर्गीकृत कर व्यक्ति के स्वयं के प्रति और संपूर्ण समाज के प्रति कर्तव्यों को निर्धारित किया गया है और सामाजिक जीवन के सभी पक्षों को धर्म के साथ सम्बद्ध कर व्यक्ति को समाज के लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु निर्देशित किया गया है। इसे निम्न बिंदुओं के अन्तर्गत स्पष्ट किया जा सकता है:-

1. भारतीय मान्यता के अनुसार इस विश्व और ब्रह्माण्ड का सृष्टिकर्ता केवल एक ईश्वर है। मनु के अनुसार इस प्रकार यह संपूर्ण जड़ तथा चेतन जगत् सर्वशक्तिमान परमात्मा की अभिव्यक्ति है और मानव जीवन के लिए धर्म तथा कर्म-क्षेत्र है। इसी संसार में अपने धर्मानुसार आचरण के द्वारा ही जीवन के परम लक्ष्य अर्थात् 'परम सत्य' की ओर बढ़ा जा सकता है।
2. उत्सव, पर्व और त्यौहार सामाजिक जीवन के महत्त्वपूर्ण अंग हैं और इन पर भी हमें धर्म का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है। नवरात्र, दशहरा, नागपंचमी, गणेश चतुर्थी, जन्माष्टमी, तीज, करवाचौथ आदि हिन्दुओं के महत्त्वपूर्ण व्रत हैं और इनमें से प्रत्येक में किसी न किसी देवी-देवता को पूजने का विधान है।
3. भारतीय जीवन के सभी प्रमुख कर्तव्य धर्म आधारित हैं। हिन्दू जीवन दर्शन के अनुसार शास्त्र विहित कर्म ही धर्म हैं। सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, त्याग आदि सार्वभौम कर्त्तव्य हैं और इन सबका आधार धर्म ही है। जीवन के आधारभूत कर्तव्य-कर्मों में यज्ञ का स्थान महत्त्वपूर्ण है।
4. व्यक्ति की शारीरिक, मानसिक तथा बौद्धिक शुद्धि या सुधार के लिए किए जाने वाले अनुष्ठानों को ही संस्कार कहते हैं जिसके माध्यम से ही एक व्यक्ति समाज का पूर्ण विकसित सदस्य बन सकता है। जीवन पथ के ये सभी संस्कार किसी न किसी रूप में धर्म से संबंधित व धर्म पर आधारित होते हैं।
5. सफल जीवन के लिए शिक्षा एक आवश्यक शर्त है और भारत में बच्चे के जीवन में यह विद्यारम्भ भी धार्मिक आधार पर ही

होता है। हिन्दुओं में इस संस्कार के अवसर पर विधिवत पट्टी पूजन किया जाता है। आज भी ग्रामीण समुदायों में कुछ लोग लिखना-पढ़ना इस उद्देश्य से सीखना चाहते हैं कि वे धार्मिक पुस्तकों को पढ़ सकें।

6. भारत में व्यक्ति का पारिवारिक जीवन भी धर्म पर आधारित है। पारिवारिक जीवन में प्रवेश पाने के लिए विवाह अनिवार्य है और हिन्दुओं में तो विवाह स्वयं ही एक धार्मिक संस्कार है। हिन्दुओं में पत्नी को धर्म-पत्नी व पति को पति-देवता कहा जाता है। पत्नी विहीन पुरुष धार्मिक कर्तव्यों को करने का अधिकारी नहीं होता।
7. भारत में आर्थिक जीवन का भी धार्मिक आधार है। हिन्दुओं में लक्ष्मी को धन की देवी माना जाता है और यह विश्वास किया जाता है कि धनी या निर्धन होना पूर्णतया इसी देवी माँ की कृपा पर निर्भर करता है। निर्धनता को एक ईश्वरीय अभिशाप माना गया है और धर्म विरुद्ध तरीकों से धन कमाने को पाप माना जाता है।
8. प्राचीन भारत में राजनीतिक जीवन के कर्तव्यों का पालन भी धार्मिक आधार पर होता था। प्रत्येक राजा के दरबार में एक राजपुरोहित या राजगुरु होता था जिसकी आज्ञा का पालन राजा भी करता था। परंपरागत रूप में राजनीतिक जीवन के धार्मिक आधार का एक और प्रमाण 'राजधर्म' की अवधारणा में देखा जा सकता है जो राजा के कर्तव्यों को बताता है। आधुनिक प्रजातंत्रात्मक राज्य तक में जनता के प्रतिनिधि (संसद् तथा विधानसभा के सदस्य) ईश्वर के नाम पर ही अपने पद तथा गोपनीयता की शपथ लेते हैं।
9. भारत में जीवन का अंत हो जाने अर्थात् मृत्यु के बाद भी 'जीवन' (अगर हम उसे जीवन मानें) धर्म पर आधारित है। व्यक्ति के मर जाने पर जो अंतिम संस्कार किया जाता है वह भी धर्म पर ही आधारित होता है। हिन्दुओं में मर रहे व्यक्ति को भगवान का नाम लेने को कहा जाता है, उसकी देह की अस्थियों या जली हुई राख को गंगा अथवा अन्य किसी पवित्र नदी में बहा दिया जाता है, तेरहवीं के दिन हवन आदि किया जाता है।

धर्म : समकालीन संदर्भ

वर्तमान भारतीय समाज में विज्ञान एवं तार्किक विश्व दृष्टि के विकास के कारण निश्चित तौर पर जीवन के अन्य क्षेत्रों (शैक्षिक, राजनीतिक, आर्थिक, प्राकृतिक आदि) में धर्म के प्रभाव में कमी आई है। परन्तु, विश्वास और आस्था की एक व्यवस्था के रूप में आज भी इसकी महत्ता बनी हुई है। कावड़ियों, वैष्णो देवी के दर्शनार्थियों एवं कुंभ के मेले में स्नान करने के लिए आने वाले भक्तों की बढ़ती संख्या इस तथ्य को पुष्ट करती है। कर्त्तव्य-कर्म के रूप में भले ही आज धर्म का महत्त्व कम हुआ है परन्तु आज भी अचेतन रूप में नैतिकता के आधार पर भारतीय जनमानस पर इसका प्रभाव कायम है।

पुरुषार्थ

पुरुषार्थ का अर्थ मानव जीवन के उद्देश्यों एवं लक्ष्यों से संबंधित है जिसमें धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष के रूप में चार पुरुषार्थों को शामिल किया जाता है:-

1. धर्म 2. अर्थ 3. काम 4. मोक्ष इन सभी पुरुषार्थों में धर्म को सर्वप्रमुख स्थान दिया गया है, जिसके बिना अन्य किसी भी पुरुषार्थ को समुचित रूप से पूरा नहीं किया जा सकता। एक पुरुषार्थ के रूप में धर्म का तात्पर्य उन सभी कर्तव्यों से है जो लोकहितकारी हैं तथा जिनके द्वारा व्यक्ति को इस जीवन तथा पारलौकिक जीवन में 'अभ्युदय' की प्राप्ति होती है। इस पुरुषार्थ की प्राप्ति के लिए हिन्दू व्यवस्था में सभी व्यक्तियों के अनुकूल कर्तव्य निर्धारित किए गए हैं। वर्ण-धर्म, आश्रम-धर्म एवं विभिन्न स्थितियों में व्यक्ति के भिन्न-भिन्न कर्तव्यों के निर्धारण में भी पुरुषार्थ के रूप में धर्म का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

'अर्थ' दूसरा महत्त्वपूर्ण पुरुषार्थ है जिसके बिना वैयक्तिक, पारिवारिक तथा सामाजिक दायित्वों की पूर्ति नहीं की जा सकती। अर्थ का तात्पर्य उन सभी पदार्थों तथा साधनों से है जिनकी सहायता से व्यक्ति अपने विभिन्न सांसारिक दायित्वों को पूरा करता है। पुरुषार्थ की यह विशेषता है कि इसने व्यक्ति के सामने धर्म और मोक्ष का आदर्श प्रस्तुत करने के बाद भी उसे अन्य व्यक्तियों के प्रति अपने कर्तव्यों से पृथक हो जाने की अनुमति नहीं दी। इसी कारण 'अर्थ' को एक पुरुषार्थ का रूप देकर व्यक्ति को उद्यम करने का प्रोत्साहन दिया गया। परन्तु, धन के संचय और आर्थिक समृद्धि की प्रतिस्पर्द्धा से सामाजिक संघर्षों की रक्षा के लिए व्यक्ति को केवल गृहस्थ आश्रम में ही आर्थिक क्रियाएँ करने की अनुमति दी गई। हमारे समाज में 'अर्थ' की प्राप्ति स्वयं में एक लक्ष्य न होकर, लक्ष्य प्राप्ति का एक साधन मात्र है। इसी आधार पर आर्थिक साधनों को उद्यम से प्राप्त करने का आदेश देकर भी इसे धर्म की धारणा से मिला दिया गया जिससे व्यक्ति ईमानदारी व न्यायोचित ढंग से आर्थिक साधनों को प्राप्त करे तथा सम्पत्ति का उपभोग और उत्पत्ति इस प्रकार हो कि सामान्य कल्याण में वृद्धि हो सके।

पुरुषार्थों के अन्तर्गत 'काम' को भी महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। यद्यपि 'काम' को सांसारिक जीवन के आधार के रूप में स्वीकार किया गया लेकिन इसे सबसे निम्न कोटि का पुरुषार्थ माना गया। व्यापक अर्थों में काम का तात्पर्य उन सभी इच्छाओं से ही है जो इन्द्रियों की संतुष्टि से संबंधित हैं और जो मनुष्य को भौतिक सुख की ओर प्रेरित करती है।

काम को एक पुरुषार्थ के रूप में तीन आधारों पर स्वीकार किया गया है। (1) जैविकीय आधार पर विभिन्न इच्छाओं के कारण

व्यक्ति में उत्पन्न तनाव को जैविकीय क्रिया के द्वारा संतुष्ट करना। (2) सामाजिक आधार पर प्रजनन अथवा समाज की निरंतरता बनाए रखने के लिए काम की पूर्ति, (3) धार्मिक आधार पर काम को केवल उसी सीमा तक मान्यता दी गई है जहाँ तक यह व्यक्ति की अति आवश्यक इच्छाओं और इन्द्रियजन्य वासना को शांत करने में सहायक है।

मोक्ष अंतिम और सर्वाधिक प्रमुख पुरुषार्थ है जिसे हिन्दू जीवन का अंतिम उद्देश्य माना जाता है। व्यक्ति जब सात्विक ज्ञान प्राप्त कर लेता है तब उस पर पड़ा हुआ माया का आवरण हट जाता है और व्यक्ति स्वयं को माया से भिन्न अनुभव करने लगता है। इस स्थिति में प्रकृति अथवा माया व्यक्ति को प्रभावित नहीं कर पाती और इस प्रकार व्यक्ति 'कैवल्यता' (बंधनों से पूर्ण छुटकारा) की स्थिति को प्राप्त कर लेता है।

उपरोक्त चारों पुरुषार्थों में मोक्ष को मानव जीवन के अंतिम एवं सर्वोच्च लक्ष्य के रूप में स्वीकार किया गया है जिसका संबंध अलौकिक जगत की सत्ता से है अर्थात् जीवन-मरण के चक्र से मुक्त होना, अर्थात् आत्मा का परमात्मा में विलीन होना ही मोक्ष माना गया है। मोक्ष प्राप्ति के तीन मार्ग हैं-ज्ञान मार्ग, भक्ति मार्ग और कर्म मार्ग। व्यक्ति जब सभी प्राणियों में समानता का भाव रखता हुआ अपने मन को स्थिर कर लेता है अथवा आत्मज्ञान प्राप्त कर लेता है तब इसे ही मोक्ष का 'ज्ञान मार्ग' कहा जाता है। इसी प्रकार 'भक्ति-मार्ग' वह है जिसमें ईश्वर के सगुण रूप की उपासना करता हुआ मनुष्य उसके प्रति अपने को पूर्णतया समर्पित कर देता है। कर्म मार्ग के अन्तर्गत मोक्ष प्राप्ति हेतु धर्म के अनुसार अर्थ एवं काम के लक्ष्यों की प्राप्ति पर बल दिया जाता है।

हिंदू धर्म में मोक्ष प्राप्ति के लिए कर्म-मार्ग को सर्वश्रेष्ठ मार्ग बतलाया गया है अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति बिना अर्थ (धन अर्जन या भौतिक क्रियाकलाप) के संभव नहीं है। हिंदू धर्म में अर्थ के साथ-साथ काम को भी महत्त्व प्रदान करते हुए इसे पुरुषार्थ में शामिल किया गया है ताकि मानव समाज की निरंतरता बनी रहे, परन्तु गलत तरीके से धन अर्जन या काम संबंधी क्रियाओं से व्यक्ति मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकता है। अर्थ और काम के लक्ष्यों की प्राप्ति धर्म द्वारा बताए गए मार्ग अथवा नियम के अनुसार ही की जानी चाहिए इसलिए हिन्दू समाज ने धर्म, अर्थ और काम के समन्वित रूप को त्रिवर्ग की संज्ञा दी है जिसके माध्यम से मनुष्य अपने अंतिम लक्ष्य अर्थात् मोक्ष को प्राप्त कर सकता है।

पुरुषार्थ : समकालीन संदर्भ

वर्तमान भारतीय समाज में भौतिक लक्ष्यों के महत्त्व के बढ़ जाने के कारण निश्चित तौर पर इसकी महत्ता कम हो गयी है फिर भी यह अचेतन रूप में आज भी विद्यमान है। आज भी प्रत्येक हिन्दू अपना परलोक सुधारने का प्रयास करता है।अंतिम संस्कार, अस्थियों का गंगा में विसर्जन, पुत्र-प्राप्ति की इच्छा आज भी इसकी निरंतरता को दर्शाते हैं। हिंदू संस्कृति के सारतत्व के रूप में, एक विशिष्ट व्यक्तित्व के निर्माण में यह आज भी महत्त्वपूर्ण है। यद्यपि नगरों की अपेक्षा गाँवों में इसका प्रभाव अधिक देखने को मिलता है।

कर्म और पुनर्जन्म का सिद्धांत

कर्म और पुनर्जन्म का सिद्धांत हिंदू सामाजिक संगठन का प्रमुख आधार है जिसकी मान्यता है कि कर्म केवल भौतिक क्रिया नहीं है बल्कि इसके अंतर्गत मानसिक, आध्यात्मिक एवं भावनात्मक सभी क्रियाएँ आती हैं (कायिक, वाचिक और मानसिक) और इस कर्म से उत्पन्न शक्ति द्वारा कर्म फल उत्पन्न होता है। कर्म और पुनर्जन्म का सिद्धांत इस बात पर भी बल देता है कि अच्छे कर्म का अच्छा और बुरे कर्म का बुरा फल होता है, किए गए कर्म का फल नष्ट नहीं होता है और बिना कर्म के फल नहीं मिलता है तथा कर्म का चक्र अनंत है और मनुष्यों को अपने किए गए कर्म का फल भुगतना ही पड़ता है।

इस संदर्भ में तीन प्रकार के कर्मों की चर्चा की गई है:-

1. संचित कर्म (वह कर्म जो इस जीवन में किया जा रहा है)
2. प्रारब्ध कर्म (अतीत का कर्म जिसका फल हम भुगत रहे हैं।)
3. संचयीमान कर्म (वह एकत्रित कर्म जिसका फल हमें भविष्य में भुगतना है।)

इस सिद्धांत की मान्यता है कि आत्मा अमर है तथा पुनर्जन्म होता है और इसका संबंध कर्म-फल से होता है। सद्कर्मों द्वारा व्यक्ति के भाग्य में सुधार संभव है। प्रमुख सद्कर्म-यज्ञ, तप, दान, अध्ययन आदि माने गए हैं।

हिंदू दर्शन में जीवन व्यतीत करने के दो मार्ग बताए गए हैं:-

1. संन्यासी का मार्ग
2. गृहस्थ का मार्ग

इनमें से गृहस्थ के मार्ग को ही सर्वश्रेष्ठ माना गया है जिसको कर्मयोग के नाम से जाना जाता है।

कर्म और भाग्य

अनेक विद्वानों का विचार है कि कर्म का सिद्धांत ही हिन्दू जीवन में भाग्य का आधार रहा है। महाभारत में धर्म-व्याध ने कहा है कि भाग्य मनुष्य के जीवन में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण अंग है और मनुष्य को बिना किसी प्रतिवाद के भाग्य को स्वीकार करना चाहिए। **मैक्डॉनेल** का कथन है कि "कर्म और पुनर्जन्म की संयुक्त धारणा के प्रभाव से एक ओर व्यक्ति को इस जन्म को अपने पूर्वजन्म के कर्मों का फल मानकर भाग्य पर सन्तोष करने की प्रेरणा मिली है, जबकि दूसरी ओर इसने व्यक्ति की क्रियाशीलता को शिथिल करके उसे सांसारिक विरक्ति या उदासीनता की ओर उन्मुख किया है।"

इसके विपरीत, **राधाकृष्णन** का कथन है कि, कर्म का सिद्धान्त व्यक्ति को भाग्य से बाँधता नहीं है बल्कि यह व्यक्ति को प्रत्येक परिस्थिति में अपने विकास की छूट देता है। कर्म भाग्य पर आधारित नहीं है बल्कि भाग्य कर्म पर आधारित है। इस रूप में भाग्य में स्वयं ही कोई बल नहीं होता बल्कि यह तो व्यक्ति के कर्मों से ही बल प्राप्त करता है और यदि व्यक्ति के कर्म बदल जाए तब भाग्य का प्रभाव अपने आप बदल जाता है।

कर्म और पुनर्जन्म का सिद्धांत : समकालीन संदर्भ

तार्किक एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण के विकास के साथ कर्म और पुनर्जन्म के सिद्धांत की वर्तमान में प्रासंगिकता कम हुई है फिर भी यह समाज में अचेतन रूप में कमोबेश आज भी विद्यमान है। आज धार्मिक क्रियाकलापों के कई पक्ष मजबूत हो रहे हैं जिसमें कहीं न कहीं यह अभिप्रेरक के रूप में जरूर विद्यमान है। विशिष्ट भारतीय संस्कृति और व्यक्तित्व के निर्माण में आज भी यह सिद्धांत महत्त्वपूर्ण बना हुआ है और नगरों की तुलना में विशेषतः ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी इसकी महत्ता बनी हुई है।

स्पष्ट है कर्म व पुनर्जन्म का सिद्धांत व्यक्ति के स्वधर्म पालन करने, सामाजिक नियंत्रण बनाए रखने एवं सामाजिक संगठन को स्थिरता प्रदान करने के लिए प्रमुख नैतिक आधार प्रदान करता है।

ऋण तथा यज्ञ का सिद्धांत

ऋण तथा यज्ञ की अवधारणा को व्यक्ति के धार्मिक कर्तव्य के रूप में परिभाषित किया गया है, जिसकी मान्यता है कि व्यक्ति कुछ ऋणों के साथ मानव शरीर धारण करता है। ये प्रमुख ऋण हैं-

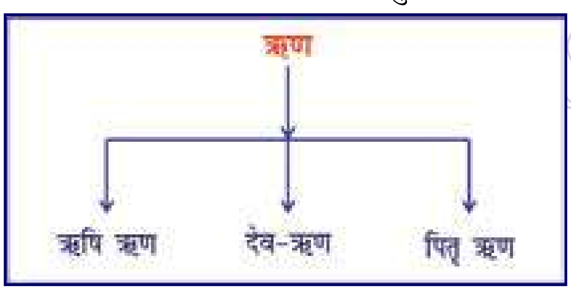

1. ***ऋषि ऋण-*** यह अपने परम पूज्य ऋषियों के प्रति व्यक्ति के कर्तव्यों को निर्धारित करता है।
2. ***देव-ऋण-*** यह ऋण इस जगत के निर्माता देवताओं के प्रति व्यक्ति के कर्तव्यों को निर्देशित करता है।
3. ***पितृ ऋण-*** यह ऋण जन्म देने वाले पितरों के प्रति व्यक्ति के कर्तव्यों को निर्धारित करता है।

इसके अलावा अतिथियों एवं अन्य जीवों के प्रति व्यक्ति के कर्तव्य कर्म के निर्धारण हेतु **अतिथि ऋण** एवं **जीव ऋण** का उल्लेख भी किया गया है।

धार्मिक कर्तव्य पालन या विभिन्न ऋणों से मुक्त होने के लिए व्यक्ति का प्रयत्न ही यज्ञ कहलाता है जिसका निर्धारण विभिन्न यज्ञों के रूप में किया गया है। जैसे-

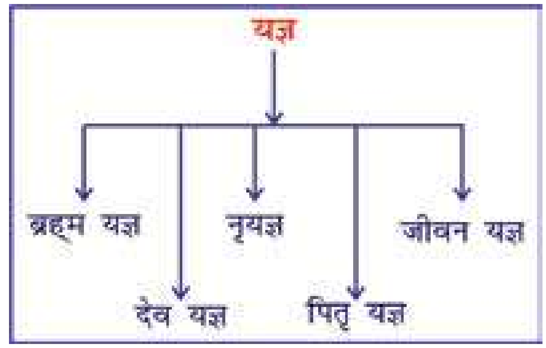

1. ***ब्रह्म यज्ञ-*** इस यज्ञ की पूर्ति व्यक्ति वेद अध्ययन व अध्यापन द्वारा करता है।
2. ***पितृ यज्ञ-*** श्राद्ध कर्म, पितरों का तर्पण और प्रजनन (पुत्र के रूप में) द्वारा पितृ यज्ञ पूरा करने का विधान धर्मशास्त्रों द्वारा बनाया गया है।
3. ***देव यज्ञ-*** देवताओं का आह्वान तथा असहाय एवं अपाहिजों को दान देकर सहारा प्रदान करना देव यज्ञ के अन्तर्गत आता है।
4. ***नृयज्ञ-*** अतिथियों की सेवा के रूप में मानवता की सेवा के लिए इस यज्ञ का प्रावधान किया गया।
5. ***जीवन यज्ञ-*** अन्य जीव जन्तुओं कीरक्षा और उनकी वृद्धि के प्रयासों को इस यज्ञ द्वारा सुनिश्चित किया गया है।

ऋण तथा यज्ञ : समकालीन संदर्भ

आधुनिक भारतीय समाज में व्यावहारिक रूप से इनका महत्त्व कम हुआ है, परन्तु अचेतन रूप से आज भी यह सदस्यों के क्रियाओं के निदेशक के रूप में क्रियाशील हैं। गया में पितरों का तर्पण, श्राद्ध कर्म, अस्थियों का गंगा में प्रवहन, पुत्र-प्राप्ति की असीम चाह की विद्यमानता आदि के रूप में इनके प्रभाव को आज भी देखा जा सकता है। विशिष्ट संस्कृति और विशिष्ट व्यक्तित्व के निर्माण में आज भी इस सिद्धांत का महत्त्व बना हुआ है, परन्तु शहरों की अपेक्षा गाँवों में आज यह अधिक महत्त्वपूर्ण है।

हिन्दू संस्कार

भारतीय हिन्दू समाज में धर्म पर आधारित वे पद्धतियाँ जिनके द्वारा व्यक्ति के जीवन को शुद्ध एवं पवित्र बनाने का प्रयास किया जाता है, जिससे वह जीवन के परम लक्ष्य मोक्ष को प्राप्त करने की योग्यता धारण कर सके, संस्कार कहलाता है।

वस्तुतः ये वे पवित्र अनुष्ठान हैं जो कि सामजिक, आध्यात्मिक, शारीरिक एवं बौद्धिक परिष्कार के लिए किए जाते हैं। इन अनुष्ठानों

के द्वारा व्यक्ति के व्यक्तित्व में परिवर्तन करने की चेष्टा की जाती है। भारतीय समाज में संस्कार की क्रिया व्यक्ति के जन्म लेने से पूर्व ही आरंभ हो जाती है तथा मृत्यु तक चलती है। माना जाता है कि बिना संस्कारों को पूर्ण किए व्यक्ति पूर्णता को कदापि प्राप्त नहीं कर सकता। इन संस्कारों में यज्ञ की क्रिया, मंत्रोच्चारण, देवता एवं पितरों का आमंत्रण, शुभ घड़ी इत्यादि तत्त्व शामिल होते हैं।

वेदों धर्मसूत्रों एवं गृहसूत्रों में संस्कारों की संख्या निर्धारित की गई है। ऋग्वेद में केवल तीन संस्कार गर्भधान, विवाह एवं मृत्यु का ही उल्लेख है परंतु बाद के ग्रंथों में इनकी संख्या अलग-अलग निर्धारित की गई है।

आश्रम व्यवस्था

हिंदू दर्शन में सामाजिक संगठन बनाए रखने एवं व्यक्ति के जीवन को संगठित एवं व्यवस्थित करने के लिए आश्रम व्यवस्था के रूप में व्यक्ति के पूरे जीवनकाल को इस तरह नियोजित किया गया ताकि व्यक्ति एवं समाज के बौद्धिक, आध्यात्मिक तथा व्यावहारिक प्रगति को अधिकतम किया जा सके। इस प्रकार हिंदू दर्शन के अनुसार आश्रम व्यवस्था सामाजिक नियोजन की एक ऐसी व्यवस्था है जिसमें व्यक्ति के जीवन को इस तरह नियोजित किया जाता है कि वह अपने आयु के विभिन्न स्तरों में अलग-अलग सामाजिक दायित्वों का निर्वाह करते हुए मोक्ष के अंतिम लक्ष्य को प्राप्त कर सके। इस व्यवस्था के अंतर्गत जीवन को 100 वर्ष मानकर इसे चार आश्रमों में बाँटा गया है और प्रत्येक आश्रम से संबंधित व्यक्ति के दायित्वों एवं कर्तव्यों का निर्धारण किया गया है। ये निम्न हैं-

1. ***ब्रह्मचर्य आश्रम (1-25 वर्ष)***-इस आश्रम के अंतर्गत अध्ययन कार्य करते हुए, शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक रूप से व्यक्ति के व्यक्तित्व विकास पर बल दिया जाता है। इस आश्रम में व्यक्ति के लिए यह कर्तव्य निर्धारित किया गया है कि यह जीवन के आरंभिक वर्षों में गुरु के पास रहकर विद्या एवं धर्म का अध्ययन करते हुए आने वाले जीवन के लिए स्वयं को तैयार करे। इस आश्रम में ज्ञान के विकास एवं व्यक्तित्व निर्माण की शिक्षा दी जाती है।
2. ***गृहस्थ आश्रम (25 से 50 वर्ष)***-विवाह संस्कार द्वारा गृहस्थ जीवन में प्रवेश कर विभिन्न यज्ञों का संपादन करना तथा गृहस्थ जीवन से संबंधित दायित्वों का निर्वाह करना। व्यक्ति का कर्तव्य माना गया है। इस आश्रम के अंतर्गत व्यक्ति के लिए यह विधान किया गया है कि वह समाज के उन उत्तरदायित्वों को पूरा कर सके जो उसके लिए समाज ने निर्धारित किया है। इसमें प्रजनन द्वारा सामाजिक निरंतरता तथा यज्ञ व ऋण द्वारा प्रकृति और समाज के ऋणों को उतारने की व्यवस्था की गई है।
3. ***वानप्रस्थ आश्रम (50 से 75 वर्ष)***- इसमें व्यक्ति परिवार से अलग रहकर सांसारिक मोह-माया से पृथक होने का प्रयास करता है। इस आश्रम में व्यक्ति के लिए यह कर्तव्य निर्धारित किया गया है कि वह अब समाज से दूर रहते हुए अपने जीवन के अर्थ को जानने का प्रयास करे और आने वाली पीढ़ी को अपने उत्तरदायित्वों का निर्वहन करने हेतु स्वतंत्र करे, साथ ही अपने अनुभवों द्वारा उनका दिशा निर्देशन करे।
4. ***संन्यास आश्रम (75 से 100 वर्ष)***- संन्यास आश्रम के अंतर्गत व्यक्ति से अपेक्षा की गई है कि वह भ्रमण करते हुए संसार के कल्याण में अपना जीवन लगाए। इस आश्रम के अंतर्गत व्यक्ति अपने परिवार से एकदम अलग हो जाता है और संपूर्ण संसार को अपना परिवार मानता है। वह भ्रमणकारी जीवन व्यतीत करता है और अपने जीवन के संपूर्ण अनुभवों द्वारा लोकोपकारी कार्यों को करता हुआ लोक कल्याण में रत हो जाता है।

एक हिन्दू के जीवन के उपर्युक्त चारों चरणों को मिलाकर आश्रम व्यवस्था का निर्माण होता है। पहला आश्रम अर्थात् ब्रह्मचर्य आश्रम शिक्षा प्राप्ति का चरण है। परन्तु चौथे वर्ण अर्थात् शूद्र और पहले तीन वर्णों की महिलाओं को इस आश्रम में प्रवेश की अनुमति नहीं है। वर्णाश्रम व्यवस्था जीवन के विभिन्न चरणों को आयु के विभिन्न चरणों से जोड़ने की एक आदर्श व्यवस्था है जिसमें यह निर्धारित किया गया है कि वर्णाश्रम का हर आश्रम किस आयु से शुरू होता है। वर्णाश्रम का पालन करना अनिवार्य नहीं है लेकिन इसे सामान्यत: काफी मान्यता दी जाती है।

वर्ण व्यवस्था (Varna System)

सभी समाज एक संगठित व्यवस्था के रूप में ही कार्य कर सकते हैं। अतः सामाजिक संगठन या व्यवस्था को सुचारू रूप से क्रियाशील करने के लिए यह आवश्यक है कि सामाजिक कार्यों का विभाजन उचित ढंग से किया जाए। वर्ण व्यवस्था सामाजिक कार्यों को विभिन्न स्वभाव, गुण एवम् प्रवृत्तियों वाले व्यक्तियों अथवा समूहों में बाँट देने की एक परंपरागत व्यवस्था है जिसके अंतर्गत सामाजिक कार्यों को चार वर्गों में विभक्त किया गया है और इन चार वर्गों से संबंधित कार्य करने वाले समूहों को चार वर्ण-ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के रूप में विभक्त किया जाता है। कभी-कभी अछूत के रूप में एक पाँचवें वर्ण की भी चर्चा की जाती है।

इन सभी वर्णों के लिए अलग-अलग कार्य सुनिश्चित किए गए हैं। ब्राह्मण धार्मिक और आनुष्ठानिक कार्य, वेदों का अध्ययन और समाज के सभी वर्गों के लिए मानदंड (धर्म) बनाने के कर्तव्य को पूरा करते थे। क्षत्रिय वर्ण का कार्य देश की रक्षा करना, कानून और व्यवस्था बनाए रखना आदि निर्धारित किया गया था। व्यावसायिक कार्यों का उत्तरदायित्व वैश्यों पर था जबकि शूद्र वर्ण का कार्य अन्य तीनों वर्णों की सेवा से संबंधित था। समय बीतने के साथ इन तीनों वर्णों ने अपने कार्यों में दक्षता प्राप्त कर ली और एक सामाजिक सोपान में ढल गए जिसमें ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वैश्यों का स्थान

क्रमशः प्रथम, द्वितीय और तृतीय रहा। चौथा स्थान शूद्रों या दासों का रहा जो ऊपर के तीन वर्णों के लोगों की सेवा करते थे। वर्ण जाति समूहों से भिन्न हैं क्योंकि वर्ण हिन्दू समाज के बृहद् भाग हैं, जबकि जातियाँ विशिष्ट अन्तःवैवाहिक समूह हैं जिनकी संख्या हजारों में है। वर्ण अखिल भारतीय स्तर पर सामान्य घटना हैं जबकि जातियाँ स्थानिक समूह हैं।

अपने उद्‌भव के आरंभिक समय में वर्णों के व्यवसाय वंशानुगत नहीं थे। उनको न केवल व्यवसायों में परिवर्तन की छूट थी बल्कि यदि किसी व्यक्ति में आवश्यक बुद्धि और गुण थे तो वह अपनी प्रस्थिति को भी ऊपर उठा सकता था। उच्च से निम्न जाति में पदावनति भी होती थी। समय बीतने के साथ जाति और व्यवसाय स्थिर और वंशानुगत बनते गए। सामाजिक और आर्थिक क्रियाओं का यह विभाजन सामाजिक विधान का एक मानक और भाग बन गया। इस प्रकार जाति और सम्पत्ति रूपी संस्थाओं ने राज्य के उद्‌भव को आवश्यक बना दिया और वर्ण व्यवस्था को समाज की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए एक लाभकारी व्यवस्था के रूप में प्रस्तुत किया गया।

वर्ण व्यवस्था में कठोरता उत्तर वैदिक काल में आई जब ऋषियों ने सामाजिक संबंधों और विवाह पर प्रतिबंध लगाने के महत्त्व पर बल दिया। रामायण, महाभारत और जातक कथाओं में लिखा है कि ब्राह्मण न केवल वर्ण व्यवस्था के अंतर्गत सर्वश्रेष्ठ थे बल्कि उनके पास सम्पत्ति और सत्ता भी थी। राजा को अपने विशेषाधिकार से ब्राह्मणों को गाँवों में राजस्व वसूल करने की छूट या कर-मुक्त जमीनें (ब्रह्मदेय) देने का अधिकार था।

क्षत्रियों और वैश्यों पर वर्ण का वंशानुगत आधार लागू नहीं होता था। शासन, कला और सैन्य व्यवसाय एक समूह तक सीमित नहीं थे। भारतीय इतिहास में ब्राह्मण, वैश्य और शूद्र के राजवंशों के कई उदाहरण भी मिलते हैं। सातवाहन ब्राह्मण थे, गुप्त वैश्य थे और नंद राजा शूद्र थे। इसके अलावा यवन, शक और कुषाण राजवंश किसी जाति से संबंधित नहीं थे।

वैश्य एक बहुत अधिक विभेदित जाति समूह था क्योंकि उसमें कुछ परिवार धनी थे और अन्य छोटे किसान, कारीगर, फेरीवाले आदि थे। शूद्र लोगों का प्रत्यक्ष रूप में एक वर्ण स्वरूप था। वे तीनों वर्णों की सेवा करते थे और उनकी आर्थिक स्थिति निम्नतम थी। वास्तव में वे उच्च जातियों के नौकर के रूप में समझे जाते थे।

जाति-व्यवस्था (Caste System)

जाति व्यवस्था भारत में सामाजिक स्तरीकरण का विशिष्ट स्वरूप रही है जो भारतीय सामाजिक संगठन के प्रमुख आधार के रूप में देखी जा सकती है। भारतीय समाज ऐसे जातीय और उप-जातीय समूहों में बँटा है जिनकी सदस्यता का आधार जन्म होता है न कि व्यक्ति के गुण एवं स्वभाव। भारतीय समाज के वर्ण व्यवस्था में हुए परिवर्तनों के कारण स्तरीकरण के आधार के रूप में गुण तथा स्वभाव का स्थान जन्म ने ले लिया, परिणामस्वरूप वर्ण व्यवस्था जाति व्यवस्था के रूप में बदल गई। प्रत्येक वर्ण में जातियाँ बढ़ती गई और जाति की सदस्यता पूर्णतः जन्म पर आधारित हो गई। सामाजिक गतिशीलता की दृष्टि से वर्ण परिवर्तन तो फिर भी संभव था परन्तु एक जाति की सदस्यता छोड़कर किसी अन्य जाति में पहुँचना प्रायः असंभव था। धीरे-धीरे एक ही वर्ण की विभिन्न जातियों में ऊँच-नीच की भावना पनपने लगी। उच्च जातियों को अनेक विशेषाधिकार प्राप्त हो गए, वहीं निम्न जातियों को कुछ निर्योग्यताओं से पीड़ित रहना पड़ा।

जाति-व्यवस्था के अंतर्गत प्रत्येक जाति ने अन्तर्विवाह की नीति को अपनाया। प्रत्येक जाति की अपनी जातीय पंचायतें भी रही हैं जो जाति से संबंधित नियमों का पालन नहीं करने वालों को कठोर दंड देती रही है। यह व्यवस्था स्तरीकरण के बन्द प्रणाली के स्वरूप को प्रदर्शित करती हैं। वर्तमान में जाति व्यवस्था के स्वरूप एवं कार्यों में विभिन्न कारणों से अनेक परिवर्तन आए हैं, परन्तु, आज भी अधिकांश भारतीयों के जीवन को जाति व्यवस्था अनेक रूपों में प्रभावित कर रही है।

धार्मिक संस्कार के रूप में विवाह एवं संयुक्त परिवार

हिंदू दर्शन में विवाह को एक धार्मिक संस्कार के रूप में देखा गया है जिसके द्वारा व्यक्ति प्रजनन और यौन आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। परंतु, उसके उद्देश्यों में धर्म को प्रथम, प्रजनन को द्वितीय एवं रति को तृतीय स्थान प्रदान किया गया है और इस रूप में व्यक्ति के यौन व्यवहारों और प्रजनन कार्यों को धार्मिक आधार पर नियमित किया गया है।

परंपरागत भारतीय समाज में संयुक्त परिवार भी उसका एक सांगठनिक आधार रहा है जो समाज की इकाई के रूप में अपने सदस्यों पर धर्मानुसार आचरण करने अर्थात् सामाजिक जीवन से संबंधित सभी कर्तव्यों का पालन करने का निर्देश देता था और इस प्रकार यह सामाजिक नियंत्रण की एजेंसी के रूप में क्रियाशील रहा है। परिवार की देख-रेख में व्यक्ति विभिन्न यज्ञों का क्रियान्वयन और वर्ण-धर्म का पालन करता रहा है। यद्यपि वर्तमान में औद्योगीकरण, लोकतांत्रिक मूल्यों के प्रसार, धर्म के प्रभाव में कमी आदि के कारण संयुक्त परिवार कमजोर हुआ है और एकाकी परिवार की संख्या में वृद्धि हुई है तथापि अभी भी गाँवों में एक सामाजिक इकाई के रूप में यह महत्त्वपूर्ण है। साथ ही नगरों में भी संयुक्तता की भावना की विद्यमानता के रूप में इसको देखा जा सकता है।

भारतीय समाज के परंपरागत आधारः मूल्यांकन

स्पष्ट है भारतीय समाज के कुछ ऐसे परंपरागत आधार रहे हैं, जिन्होंने समाज में समन्वयकारी प्रवृत्तियों के विकास में योगदान दिया है और

व्यक्ति को समन्वित जीवन व्यतीत करने हेतु प्रोत्साहित किया है फलत: ये सभी समाज की इकाई या अंग के रूप में प्रकार्यात्मक संबंधों के आधार पर एक-दूसरे के साथ संबद्ध होते हुए परंपरागत हिंदू समाज को बनाए रहे और व्यक्ति की उन्नति के साथ-साथ समाज के विकास में भी सहायक रहे हैं।

भारतीय समाज में परिवर्तन और निरंतरता

परंपरागत भारतीय समाज में निम्न तत्त्व प्रमुख रहे हैं-

1. धर्म को समाज में केन्द्रीय स्थान प्राप्त है।
2. वर्ण व्यवस्था को प्रकार्यात्मक विशेषीकरण के एक सिद्धांत के रूप में विकसित करने का प्रयास किया गया है।
3. जाति व्यवस्था सामाजिक स्तरीकरण के विशिष्ट रूप में समाज को श्रेणीबद्ध करती है।
4. कर्म के सिद्धांत द्वारा व्यक्ति के भूत-वर्तमान और भविष्य के कर्म फलों को निश्चित किया गया है।
5. आश्रम व्यवस्था द्वारा विभिन्न आयु वर्ग के लोगों के कार्यों को निश्चित किया गया है।
6. पुरुषार्थ व्यवस्था द्वारा सामाजिक लक्ष्यों व उनको प्राप्त करने के उचित साधनों की व्यवस्था की गई है।

कालांतर में सामाजिक व्यवस्था के उपरोक्त तत्त्वों पर कई धर्मों एवं संस्कृतियों, जैसे-बौद्ध एवं जैन धर्म, इस्लाम धर्म, पश्चिमी-संस्कृति, आधुनिकीकरण तथा वैश्वीकरण आदि का प्रभाव पड़ा। इन प्रभावों ने परंपरागत भारतीय समाज में परिवर्तन लाकर इसे वर्तमान स्वरूप प्रदान किया है जहाँ व्यक्तिवादिता, समानता धर्मनिरपेक्षता, लोकतांत्रिक मूल्य, परिवर्तन के प्रति आस्था केन्द्रीय मूल्य व्यवस्था के रूप में सामाजिक जीवन के सभी क्षेत्रों में क्रियाशील हैं। परन्तु वर्तमान भारतीय समाज का यह नवीन स्वरूप परंपरागत समाज एवं उनके तत्त्वों को प्रतिस्थापित करके नहीं आया है। अभी भी जाति-व्यवस्था, संयुक्त परिवार, विवाह के प्रथागत पक्ष और जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में धर्म का प्रभाव देखा जा सकता है। अर्थात् वर्तमान भारतीय समाज निरंतरता के साथ परिवर्तन को दर्शाता है जहाँ परंपरागत समाज अपनी निरंतरता को बनाए रखे हुए है और आधुनिकता के साथ विद्यमान है।

भारतीय समाज में परिवर्तन के कारण

परंपरागत भारतीय समाज में होने वाले परिवर्तन के लिए उत्तरदायी कारकों को निम्न बिन्दुओं के अन्तर्गत स्पष्ट किया जा सकता है-

1. बौद्ध, जैन एवं इस्लाम धर्म के प्रभाव ने हिन्दू सामाजिक व्यवस्था में समानता की भावना के साथ कर्मकांडों को लचीला बनाया है।
2. अंग्रेजी शिक्षा एवं ईसाई मिशनरियों के प्रभाव से स्वतंत्रता, समानता व धर्मनिरपेक्षता जैसे आधुनिक मूल्यों का प्रसार संभव हुआ है।
3. धर्मनिरपेक्षता की विचारधारा ने रोजमर्रा के जीवन में धर्म के प्रभाव को कम किया है।
4. ब्रिटिश प्रशासनिक व्यवस्था द्वारा बनाए गए कानूनों ने विधि के समक्ष समता के रूप में धर्म संहिताओं के प्रभाव को कम किया है।
5. स्वतंत्रता, समानता एवं सामाजिक न्याय के रूप में लोकतांत्रिक मूल्यों के प्रसार ने जाति स्तरीकरण की व्यवस्था की कठोरता को कम किया है।
6. औद्योगीकरण और नगरीकरण ने भारतीय जाति व्यवस्था में गतिशीलता के अवसर प्रदान किए हैं।
7. भारतीय संविधान ने समान अवसर की स्थापना कर सभी को विकास के समान अवसर प्रदान करके एक समतामूलक समाज की दिशा में परिवर्तन को संभव बनाया है।
8. यातायात एवं संचार क्रांति द्वारा विभिन्न जातियों के बीच की सामाजिक दूरी कम हुई है और भेदभाव एवं असमानता के तत्त्व कमजोर हुए हैं।

भारतीय समाज में निरंतरता के कारण

परंपरागत भारतीय समाज में परिवर्तन की प्रकृति अनुकूलनकारी रही है जहाँ परंपरा की निरंतरता के साथ परंपरा में परिवर्तन होता रहा है। भारतीय परंपरा की इस निरंतरता के लिए उत्तरदायी कारकों को निम्न बिन्दुओं के तहत देखे जा सकते है:-

1. भारतीय परंपराओं में निहित परिवर्तन की गुंजाइश तथा निर्वचन एवं तर्क के लिए खुलेपन ने इनको बदलती परिस्थितियों के साथ अनुकूलन में सहायता प्रदान की है।
2. परंपरागत भारतीय समाज में निहित परसंस्कृतिग्रहण और सात्मीकरण की प्रवृत्ति ने भारतीय समाज में सदैव गतिशीलता को बनाए रखा है।
3. भारतीय परंपराओं में निहित सामंजस्य या अनुकूलन की क्षमता ने भी परिवर्तन को पोषित किया है। फलत: अनुकूलनकारी सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया निरंतर क्रियाशील रही है।
4. भारतीय परंपरा में विद्यमान सहिष्णुता की क्षमता के कारण विभिन्न समूहों में आपसी प्रतिस्पर्द्धा का अभाव पाया जाता रहा है जिसने परंपरा की निरंतरता में सहयोग किया है।

मूल्यांकन

इस प्रकार उपरोक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि वर्तमान भारतीय समाज निरंतर गतिशील रहा है तथा परंपरा व आधुनिकता के सहअस्तित्व को परिलक्षित करता है। यह अनेक अंतर्जात एवं बहिर्जात स्रोतों

के परिणामस्वरूप होने वाले परिवर्तनों के साथ अपनी निरंतरता को बनाए हुए है। परंतु, वैश्वीकरण एवं आधुनिकीकरण के वर्तमान दौर में परिवर्तन की गति इतनी तीव्र हो गई है कि परंपरा या निरंतरता के समक्ष गंभीर संकट महसूस किया जा रहा है।

हिन्दू सामाजिक संगठन पर बौद्ध धर्म का प्रभाव

परंपरागत भारतीय समाज की तीन मुख्य विशेषताएं थीं:-

1. क्रम-विन्यास या सोपान
2. संपूर्णता की भावना
3. नैरन्तर्य की प्रवृत्ति

परन्तु, कालांतर में इसका स्वरूप विकृत हो गया जिसमें सुधार की कोशिश दो तरीकों से की गई-

1. वैदिक परंपरा में थोड़ी फेर-बदल करके जैसे- शंकराचार्य, रामानुज और भक्ति आंदोलन का प्रादुर्भाव आदि।
2. वैदिक परंपरा के मुख्य तत्त्वों से भिन्नता रखते हुए नई परंपरा की स्थापना करके, जैसे-बौद्ध और जैन धर्म का उदय।

बौद्ध धर्म यथार्थवादी दृष्टिकोण (तर्क, बुद्धि एवं अनुभव पर जोर देने वाला) पर आधारित एवं अहिंसा व सदाचार पर बल देने वाला धर्म है। बौद्ध धर्म में देवी-देवताओं भाग्यवाद, पुनर्जन्म और ग्रहों-नक्षत्रों का प्रभाव आदि पर विश्वास नहीं किया जाता है और इस लौकिक जगत की यथार्थता पर बल दिया जाता है। फलतः, इस धर्म की बहुत सारी मान्यताओं ने हिंदू सामाजिक संगठन को व्यापक रूप में प्रभावित किया है। ये मान्यताएँ निम्नलिखित हैं:-

1. संसार में सब कुछ परिवर्तनशील है इसीलिए जाति व्यवस्था का आधार जन्म नहीं कर्म होना चाहिए।
2. कोई भी व्यक्ति अपने 'स्व' को विकसित करके सोपानिक व्यवस्था के क्रम में ऊपर आ सकता है और निर्वाण प्राप्त कर सकता है।
3. स्त्रियों को भी पुरुषों के समान दर्जा मिलना चाहिए (संघ में प्रवेश की अनुमति देकर)।
4. दान की प्रथा द्वारा अधिशेष को पुनर्वितरित करने पर बल दिया गया जिससे समाज में समानता आ सके।
5. भाषायी सोपान को अस्वीकार करते हुए धर्म विधियों पर संस्कृत भाषा जानने वाले ब्राह्मण वर्ग के वर्चस्व को समाप्त करने का प्रयास किया गया। इसलिए बौद्ध धर्म द्वारा जन सामान्य की पालि भाषा को अंगीकार किया गया।

यद्यपि बौद्ध धर्म में भी बहुत सी ऐसी सैद्धांतिक मान्यताएँ थीं जो क्रम-विन्यास को परिलक्षित करती थीं। परन्तु, यहाँ उल्लेखनीय है कि बुद्ध का उद्देश्य पूर्ण समानतायुक्त समाज की स्थापना करना नहीं बल्कि सभ्य समाज की स्थापना करना था। बौद्ध धर्म की इन मान्यताओं ने परंपरागत भारतीय समाज को कई रूपों में प्रभावित किया जिसे निम्न बिन्दुओं के अंतर्गत देखा जा सकता है-

1. बौद्ध धर्म की मान्यताओं के प्रभाव स्वरूप वर्ण व्यवस्था कमजोर हुई।
2. हिंदू धर्म में पुनर्जागरण शुरू हुआ तथा ब्राह्मणों की शक्ति एवं महत्त्व में कमी आई।
3. हिंदू धर्म में जन्म से अधिक चरित्र, योग्यता और कर्म पर बल दिया जाने लगा।
4. इसके प्रभाव स्वरूप सामाजिक जीवन में कर्मकांडों के महत्त्व में कमी आई।
5. इसके प्रभाव में हिन्दू समाज में निहित भाग्यवादी धारणा कमजोर हुई और कर्म का महत्त्व बढ़ा।
6. अहिंसा हिंदू समाज का मुख्य मूल्य बन गया। फलतः नर-बलि, पशु-बलि, माँसाहार में कमी आई और शाकाहार तथा जीवों के प्रति दया भाव में वृद्धि हुई।
7. व्यावहारिक कार्य को प्रेरणा देने वाली और लोक कल्याणकारी शिक्षा पर बल दिया जाने लगा।
8. इसने समानता, सामाजिक न्याय तथा लोकतंत्र की भावना को प्रोत्साहित करके भारत में मानवतावादी और लोकोपकारी भावनाओं को प्रचलित किया।
9. इसने देशी भाषाओं को लोकप्रिय बनाकर देश की विभिन्न भाषाओं और बोलियों को समुचित महत्त्व दिया।
10. पंचशील, गुटनिरपेक्षता, राष्ट्रीय एकता, पारस्परिक सहयोग, शांति के लिए प्रयास, गाँधी की अहिंसक नीति आदि के मूल में भी यह अभिप्रेरक के रूप में सहयोगी रहा।

इस तरह बौद्ध धर्म ने परंपरागत हिंदू समाज की सोपानिक व्यवस्था को कमजोर किया और समतामूलक समाज को स्थापित किया जिसके कारण वह प्रसिद्ध हुआ और आज तक व्यावहारिक मानवतावादियों को आकर्षित करता रहा है। यद्यपि इस प्रक्रिया में बौद्ध धर्म भी हिंदू सामाजिक संगठन से प्रभावित हुआ। कर्म का सिद्धांत, पुनर्जन्म का सिद्धांत, मूर्तिपूजा (महायान), मठ संबंधी कुरीतियाँ, सोपानिक व्यवस्था तथा अंतर्विवाही समूह के रूप में विकास आदि तत्त्व आज इस धर्म में भी दिखाई देने लगे हैं।

निष्कर्षतः

यह कहा जा सकता है कि बौद्ध धर्म एक वैचारिक आंदोलन के रूप में हिंदू सामाजिक संगठन के विभिन्न तत्त्वों को प्रभावित करते हुए स्वयं भी प्रभावित हुआ है और वर्तमान भारतीय समाज की प्रकृति के निर्धारण में महत्त्वपूर्ण रहा है।

हिन्दू सामाजिक संगठन पर इस्लाम धर्म का प्रभाव

भारत में विभिन्न कालों में मुसलमानों के विभिन्न वंशों, जैसे-गुलाम वंश, खिलजी वंश, तुगलक वंश, सैय्यद वंश एवं लोदी वंश आदि का 600 वर्षों तक शासन रहा। मुसलमानों से पूर्व जितने भी आक्रमणकारी यहाँ आए, जैसे-यवन, शक, हूण, कुषाण, सिथियन व मंगोलियन आदि वे सब भारतीय समाज में समाहित हो गए, किन्तु मुसलमानों का पृथक् अस्तित्व बना रहा क्योंकि दोनों के धर्म, संस्कृति, देवी-देवता, खान-पान एवं जीवनदर्शन में काफी अन्तर था। लम्बे समय तक हिन्दू और मुस्लिम संस्कृति के संपर्क के कारण कला, धर्म, साहित्य, परिवार, विवाह, संगीत और संस्कृति के कई क्षेत्रों में दोनों में बहुत आदान-प्रदान हुआ और दोनों ही परंपराओं में संघर्ष, तनाव, व्यवस्थापन और समन्वय की प्रक्रिया काफी लम्बे समय से चल रही है।

इस्लाम का भारतीय समाज पर प्रभाव मुख्यत: नगरों तक सीमित रहा और ग्रामों में इसका प्रभाव कम रहा। चूँकि मुसलमान बाहर से आए थे और वे संख्या में कम थे किन्तु उन्होंने यहाँ के अनेक हिन्दुओं को धर्म परिवर्तन करवाकर मुसलमान बनाया। फलत: यहाँ के मुसलमानों में कई तत्त्व दोनों ही संस्कृतियों के साथ-साथ दिखाई देते हैं। साथ ही मुसलमान-शासक वर्ग के थे इसलिए भी जनता ने दबाव एवं स्वेच्छा से मुस्लिम संस्कृति को अपनाया। इस्लाम के भारतीय समाज पर प्रभाव को निम्न बिन्दुओं के अन्तर्गत देखा जा सकता है:-

1. हिन्दुओं में एकेश्वरवाद एवं निर्गुण ब्रह्म की उपासना प्रारम्भ हुई। भक्ति आंदोलन एवं समतावादी आदर्शों का जन्म हुआ। कबीर पंथ, दादू पंथ, अद्वैतवाद, सिख धर्म, रामानुज, वल्लभाचार्य, चैतन्य एवं रैदास के धार्मिक संप्रदायों का उदय हुआ।
2. हिन्दुओं में जातीय कठोरता कम हुई तथा अस्पृश्यता और ऊँच-नीच का भेद-भाव समाप्त होने लगा। जातीय कठोरता के कारण निम्न जातियों ने धर्म-परिवर्तन कर इस्लाम को ग्रहण किया। भारतीय समाज में दास प्रथा, बेगारी आदि के प्रचलन में वृद्धि हुई।
3. हिन्दुओं में मुस्लिम प्रभाव से पर्दा-प्रथा का प्रचलन हुआ। बाल-विवाह बढ़े, विधवा पुनर्विवाह समाप्त हुए और सती प्रथा को महत्त्व दिया गया। बहु-पत्नी प्रथा एवं दहेज प्रथा में भी वृद्धि हुई।
4. भारतीय संस्कृति पर भी इसका प्रभाव व्यापक रहा। मुस्लिम वेशभूषा, जैसे-चूड़ीदार पाजामा, अचकन एवं शेरवानी का प्रचलन शुरू हुआ। भोजन में माँसाहारी प्रवृत्ति बढ़ी। आज कलाकंद, बर्फी, गुलाब जामुन, बालूशाही, हलवा, इमरती एवं जलेबी मुसलमानों की ही देन है। उर्दू एवं खड़ी बोली का प्रादुर्भाव संभव हुआ। स्थापत्य कला के क्षेत्र में हिन्दुओं ने मुसलमानों से गुम्बद, ऊँची मीनारें, मेहराब तथा तहखाने बनाना सीखा। मुसलमानों ने अनेक हिन्दू मन्दिरों को तोड़कर उनमें हेराफेरी करके उन्हें मस्जिदों के रूप में बदल दिया। चित्रकला के क्षेत्र में मनुष्यों, पशुओं, पुष्पों एवं पक्षियों के सजीव चित्र बनाना तथा विभिन्न रूपहले रंगों को भरना मुस्लिम संस्कृति की देन है। तुर्की व ईरान की प्यूराइड चित्रकारी मुसलमान ही भारत में लाए। मथुरा के द्वारकाधीश मन्दिर में इसी शैली में कृष्णलीला का चित्रण किया गया है। कव्वाली, गजल, ठुमरी तथा तबला व सितारवादन भी इस्लाम की ही देन है। इस युग में रंगाई-छपाई, बर्तन एवं दस्तकारी के उद्योग तथा धातु, शक्कर, ईंट, पच्चीकारी, कताई आदि व्यवसायों का भी काफी विकास हुआ।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि इस्लाम के प्रभाव के कारण भारतीय समाज सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक एवं राजनैतिक सभी क्षेत्रों में प्रभावित हुआ और यह प्रभाव ब्रिटिश काल तक बना रहा। साथ ही केवल हिन्दुओं ने ही इस्लाम से ग्रहण नहीं किया वरन् मुसलमानों ने भी हिन्दू संस्कृति के अनेक तत्त्वों को ग्रहण किया। मुसलमानों में क्रूरता कम हुई, उनमें भक्ति, श्रद्धा, सहृदयता व दयालुता की प्रवृत्ति पैदा हुई। उन्होंने भी हिन्दुओं के खान-पान, जाति-प्रथा, उत्सवों एवं अन्धविश्वासों को ग्रहण किया। इस प्रकार दोनों संस्कृतियों के संपर्क से एक नवीन संस्कृति हिन्दू-मुस्लिम संस्कृति का जन्म हुआ।

भारतीय समाज में परिवर्तन की प्रमुख प्रक्रियाएँ

संस्कृतिकरण (Sanskritisation)

संस्कृतिकरण की अवधारणा का प्रयोग भारतीय सामाजिक-संरचना में सांस्कृतिक गतिशीलता की प्रक्रिया के विश्लेषण हेतु ***एम.एन. श्रीनिवास*** द्वारा किया गया। इनके अनुसार संस्कृतिकरण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा कोई निम्न हिन्दू जाति या कोई जनजाति अथवा कोई अन्य समूह किसी उच्च और प्राय: द्विज जाति की दिशा में अपने रीति-रिवाज, कर्मकांड, विचारधारा और जीवन-पद्धति को बदलता है।'' साधारणत: ऐसे परिवर्तनों के बाद निम्न जाति जातीय सोपान में उच्च स्थिति का दावा करने लगती है।

इस प्रकार संस्कृतिकरण वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से कोई निम्न हिंदू जातीय-समूह अथवा कोई जनजातीय समूह अपनी संपूर्ण जीवन-विधि को उच्च जातियों या वर्णों की दिशा में बदल कर अपनी स्थिति को ऊँचा उठाने का प्रयत्न करता है और जातीय संस्तरण की प्रणाली में उच्च होने का दावा प्रस्तुत करता है।

संस्कृतिकरण के बारे में उपरोक्त विवेचन के आधार पर इसके निम्न लक्षणों की चर्चा की जा सकती है-

1. संस्कृतिकरण की प्रक्रिया का संबंध निम्न हिंदू जातियों, जनजातियों तथा कुछ अन्य समूहों (हिंदू धर्म व संस्कृति से भिन्न) से है।

2. संस्कृतिकरण की प्रक्रिया के अंतर्गत अपने से उच्च जातियों की जीवन, उनकी प्रथाओं, रीति-रिवाजों, खान-पान, विश्वासों एवं मूल्यों का अनुकरण करते हुए उन्हें अपनाने का प्रयास किया जाता है।
3. संस्कृतिकरण के माध्यम से किसी जातीय-समूह की स्थिति आसपास की जातियों से कुछ ऊपर उठ जाती है परंतु स्वयं जाति-व्यवस्था में कोई परिवर्तन नहीं होता है।
4. संस्कृतिकरण केवल सामाजिक परिवर्तन की एक प्रक्रिया नहीं है बल्कि सांस्कृतिक परिवर्तनों की भी एक प्रक्रिया है। इसमें भाषा, साहित्य, संगीत, विज्ञान, दर्शन, औषधि तथा धार्मिक विधान आदि के क्षेत्र में होने वाले परिवर्तन भी शामिल हैं।
5. संस्कृतिकरण की प्रक्रिया का संबंध किसी व्यक्ति या परिवार से नहीं होकर समूह से होता है। इस प्रक्रिया के द्वारा कोई जातीय या जनजातीय समूह अपनी स्थिति को ऊँचा उठाने का प्रयत्न करता है।

भारत में संस्कृतिकरण के सामाजिक प्रभाव निम्न रहें हैं:-

1. संस्कृतिकरण से निम्न जातीय समूहों की प्रस्थिति में सुधार तथा जातीय गतिशीलता संभव होती है।
2. इससे निम्न जातीय समूहों की जीवन-शैली में परिवर्तन होता है और उनके द्वारा निकृष्ट समझी जाने वाली क्रियाओं को छोड़ दिया जाता है।
3. इससे महिलाओं की प्रस्थिति में गिरावट आती है या उच्च जातियों की तरह पितृसत्तात्मकता के प्रबल स्वरूप का उद्भव होता है जिससे महिलाओं पर पुरुषों का नियंत्रण बढ़ जाता है।
4. इससे जातीय प्रतिस्पर्धा एवं संघर्ष में वृद्धि होती है क्योंकि उच्च जातियाँ संस्कृतिकरण को रोकने का प्रयास करती हैं।

पश्चिमीकरण (Westernization)

पश्चिमीकरण शब्द का प्रयोग मुख्यत: उन परिवर्तनों को व्यक्त करने के लिए किया गया है जो भारत में उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी में अंग्रेजी राज्य की अवधि में प्रारंभ हुए। पश्चिमीकरण में भारतीय समाज और संस्कृति में एक सौ पचास वर्षों से अधिक समय के अंग्रेजी राज्य के परिणामस्वरूप लाए गए परिवर्तन शामिल हैं और इस शब्द में विभिन्न स्तरों, प्रौद्योगिकी, संस्थाओं, विचारधाराओं तथा मूल्यों में होने वाले परिवर्तन सम्मिलित हैं। मानवतावाद तथा तार्किकता पर जोर पश्चिमीकरण का एक अंग है जिसने भारत में संस्थागत तथा सामाजिक सुधारों की श्रृंखला आरंभ कर दी। वैज्ञानिक, प्रौद्योगिक तथा शिक्षा संस्थाओं की स्थापना, राष्ट्रीयता का उदय, देश में नवीन राजनीतिक संस्कृति और नेतृत्व सबके सब पश्चिमीकरण के उप-उत्पाद हैं।

भारत में अंग्रेजी राज्य-स्थापना के पश्चात् अनेक राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं प्रौद्योगिक शक्तियाँ कार्य करने लगी। इन शक्तियों ने देश के सामाजिक सांस्कृतिक जीवन को अनेक रूपों में प्रभावित किया। अंग्रेजों के पास राजनीतिक और आर्थिक शक्ति के साथ एक नवीन प्रौद्योगिकी, वैज्ञानिक ज्ञान तथा महान साहित्य था। इनसे प्रभावित होकर उच्च जातियों के लोगों ने अंग्रेजों का अनुसरण करना प्रारम्भ किया, उनकी प्रथाओं और आदतों को अपनाया। अंग्रेज जातीय संस्तरण की प्रणाली में सर्वोच्च शिखर पर पहुँच गए और ब्राह्मणों का स्थान द्वितीय हो गया। जहाँ निम्न जातियाँ अपनी सामाजिक प्रस्थिति को ऊँचा उठाने की दृष्टि से अपने से उच्च जातियों और ब्राह्मणों के जीवन के तरीके को अपनाने में लगी हुईं थीं वहाँ ब्राह्मणों तथा कुछ अन्य उच्च जातियों के लोगों ने अंग्रेजों के जीवन के तरीके को अपनाने में तत्परता दिखाई। इस प्रकार देश में पश्चिमीकरण की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई।

पश्चिमीकरण के कारण ब्राह्मणों को अंग्रेजों और यहाँ के शेष लोगों के बीच मध्यस्थ के रूप में भूमिका निभाने का सुअवसर मिला। परिणाम यह हुआ कि एक नवीन और लौकिक जाति व्यवस्था का परंपरागत व्यवस्था पर आधिपत्य हो गया जिसमें नवीन क्षत्रिय शिखर पर थे और ब्राह्मण दूसरे स्थान पर तथा जनसंख्या के शेष लोग जातीय पिरामिड के निम्नतम स्थान पर थे। संस्तरण की इस नवीन प्रणाली में ब्राह्मण अंग्रेजों का अनुकरण कर रहे थे और बाकी सभी लोग ब्राह्मणों और अंग्रेजों दोनों का ही अनुकरण कर रहे थे। संस्तरण की नवीन प्रणाली में ब्राह्मणों की स्थिति निर्णायक थी। उनके माध्यम से पश्चिमीकरण हिन्दू समाज के अन्य लोगों तक पहुँचा।

पश्चिमीकरण की प्रक्रियाओं में प्रमुखत: उन लोगों ने भाग लिया जो नवीन शिक्षण संस्थाओं में शिक्षा प्राप्त कर व्यवसायों में, ऊँची नौकरियों में, नगरों में व्यापार और उद्योग-धंधों में लग गए थे। यातायात और संचार के साधनों के विकास, औद्योगीकरण, कृषि क्षेत्र में होने वाले विकास तथा अभिजात वर्ग व ग्रामीणों की क्षेत्रीय तथा सामाजिक गतिशीलता में वृद्धि ने पश्चिमीकरण की प्रक्रिया को तीव्र और साथ ही राष्ट्रव्यापी बना दिया। बड़े नगरों और समुद्री किनारों पर रहने वाले लोगों का पश्चिमीकरण सबसे पहले हुआ।

पश्चिमी प्रभाव के कारण उन्नीसवीं शताब्दी के सातवें दशक तक भारत में ऐसे नेताओं के वर्ग का उदय हो चुका था जो नवीन और आधुनिक भारत के लिए प्रकाश स्तंभ बना। बहुत से नेता (जैसे-टैगोर, विवेकानंद, रानाडे, गोखले, तिलक, पटेल, गाँधी, जवाहरलाल नेहरू तथा राधाकृष्णन आदि) मौजूदा सामाजिक कुरीतियों, जैसे-बाल-विवाह, सती प्रथा, विधवा-विवाह निषेध, स्त्रियों को पृथक्करण में रखना, स्त्री-शिक्षा का विरोध, अस्पृश्यता तथा अन्तर्जातीय विवाह निषेध आदि के प्रति जागरुक थे। समाज सुधार की प्रक्रिया में इस अभिजात-वर्ग ने अनुभव किया कि भारत को आधुनिकीकरण की ओर बढ़ने के कार्य को सफलतापूर्वक संपन्न करने के लिए राजनीतिक शक्ति की आवश्यकता है। उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम पचास वर्षों में काफी राष्ट्रीय जागृति हुई। इस अवधि में रेलों का निर्माण, छापेखाने का

विकास तथा शिक्षा प्रसार आदि ने राष्ट्रीयता के भावों को जागृत करने में काफी सहयोग दिया। इस प्रकार पश्चिमीकरण ने केवल अभिजात-वर्ग के उदय में ही नहीं बल्कि हिन्दू समाज को अनेक कुरीतियों से मुक्त करने, राष्ट्रीयता के भाव जगाने और स्वतंत्रता प्राप्ति हेतु आंदोलन करने में भी महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

पश्चिमीकरण का भारतीय सामाजिक संस्थाओं पर काफी प्रभाव पड़ा है। यह प्रभाव संयुक्त परिवार प्रणाली, हिन्दू विवाह तथा जाति-व्यवस्था पर देखने को मिलता है। पश्चिमीकरण ने व्यक्तिवादिता को प्रोत्साहित किया है जिसके परिणामस्वरूप संयुक्त परिवार की संरचना में परिवर्तन हो रहा है। अब पश्चिमीकरण के प्रभाव से शिक्षित युवक-युवतियाँ विवाह को जन्म-जन्मांतर का संबंध नहीं मानकर एक समझौता मानने लगे हैं। अब पति-पत्नी के संबंध समानता पर आधारित होने लगे हैं। पश्चिमीकरण के कारण विभिन्न जातियों के सदस्यों को कारखानों तथा अन्य क्षेत्रों में साथ-साथ काम करने का अवसर मिलने लगा है जिससे जातिगत दूरी पहले की तुलना में कम हुई है। पश्चिमीकरण के कारण स्तरीकरण के नवीन आधार के रूप में वर्गों का भी महत्त्व बढ़ने लगा है।

पश्चिमीकरण के कारण गाँवों में व्यक्ति की स्थानीय सामाजिक स्थिति उसकी जाति एवं परिवार की प्रतिष्ठा पर आधारित नहीं होकर उसकी स्वयं की योग्यता पर आधारित होती है। पश्चिमीकरण की प्रक्रिया ने ग्रामीण क्षेत्रों में जाति पंचायतों के विघटन में योगदान दिया है। ग्रामीण समुदायों में भी व्यक्तिवादिता का प्रभाव स्पष्टत: दिखलाई पड़ने लगा है। पश्चिमीकरण के कारण भारतीय ग्रामीण सामाजिक संगठन में पारिवारिकता का महत्त्व कम हुआ है। पश्चिमीकरण की प्रक्रिया ने भारत में नगरीकरण एवं औद्योगीकरण की प्रक्रियाओं को जन्म दिया है जिनसे भारतीय ग्राम भी अप्रभावित नहीं रहे हैं। ग्रामों में आजकल सामुदायिक भावना शिथिल पड़ रही है तथा स्थानीयता का महत्त्व कम होता जा रहा है। इस प्रक्रिया के कारण भारतीय ग्रामों में समाचार-पत्रों, रेडियो तथा चुनाव आदि का प्रादुर्भाव हुआ है।

आधुनिकीकरण (Modernization)

भारत में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया का प्रारंभ ब्रिटिश शासन की स्थापना एवं उसके संपर्कों का परिणाम है। अंग्रेजों द्वारा भारत पर विजय की प्रक्रिया लगभग एक शताब्दी तक चलती रही। स्वाभाविक रूप से उन्होंने अपने साम्राज्य की स्थापना के लिए और फिर उसे बनाए रखने के लिए भारत में कुछ नई तकनीकी और संरचनाओं की स्थापना की। उत्पादन में नई मशीनी तकनीकी, व्यापार की नई बाजार प्रणाली, यातायात और संचार के साधनों का विकास, कर्मचारी तंत्र पर आधारित सिविल सेवा, औपचारिक और लिखित कानून की स्थापना, आधुनिक सैन्य संगठन, पृथक् न्यायिक व्यवस्था और आधुनिक औपचारिक शिक्षा व्यवस्था वे महत्त्वपूर्ण परिवर्तन थे जिन्होंने आधुनिकीकरण के लिए आवश्यक पृष्ठभूमि तैयार की।

पश्चिमी शिक्षा तथा सरकारी सेवाओं के नए अवसरों ने भारतीय समाज में एक ऐसे प्रबुद्ध वर्ग को जन्म दिया जो अपने समाज की दीन-हीन दशा पर विचार करने के लिए बाध्य हो गया। इसी वर्ग के नेतृत्व में भारत में समाज सुधार आंदोलन का सूत्रपात हुआ। इसी प्रबुद्ध वर्ग और उभरते हुए पूँजीवादी वर्ग में राष्ट्रीय चेतना का जागृत होना भी स्वाभाविक था क्योंकि उनके हितों का संरक्षण इस बात में था कि अंग्रेज अपनी नीतियों में इस प्रकार संशोधन करें जिससे नीति-निर्माण में और प्रशासन में अधिक से अधिक भारतीयों को प्रतिनिधित्व मिल सके और व्यापारी और उद्योगपति प्रोत्साहन और संरक्षण प्राप्त कर सकें। इन वर्ग-हितों ने राष्ट्रीय आंदोलन को जन्म दिया जो धीरे-धीरे आगे बढ़ता हुआ स्वतंत्रता आंदोलन के रूप में परिवर्तित हो गया।

स्वतंत्र भारत में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया योजनाबद्ध और तीव्र गति से हुई है। भारतीय संविधान बनाकर और उसे व्यवहार में क्रियान्वित कर भारत ने सर्वप्रथम राजनीतिक आधुनिकीकरण किया। भारतीय समाज की बहुलवादी विशेषता को देखते हुए आधुनिकीकरण का अपना एक अलग और विशिष्ट मॉडल अपनाया गया है। इसमें समाजवाद, लौकिकवाद, उद्योगवाद, प्रजातंत्र, समतावाद एवं व्यक्ति की स्वतंत्रता तथा मौलिक अधिकार आदि मूल्यों को महत्त्व दिया गया है। इनमें से अधिकांश मूल्य धर्म और जाति पर आधारित परंपरागत भारतीय सामाजिक संरचना के विपरीत हैं इसलिए भारतीय समाज में मूल्य-संघर्ष एक अनिवार्य लक्षण बन गया है।

शिक्षा को आधुनिकीकरण की एक पूर्व शर्त के रूप में स्वीकार किया गया है। स्वतंत्र भारत ने निरक्षरता उन्मूलन और सार्वभौमिक शिक्षा के लक्ष्य सामने रखे हैं। आधुनिकीकरण के लिए आवश्यक वैज्ञानिक और तकनीकी ज्ञान के अनुसंधान, शिक्षण और प्रशिक्षण के विकास के लिए विशेष उपाय अपनाए गए हैं।

भारत में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया ने समाज के प्रत्येक पक्ष को प्रभावित किया है। एक ओर जहाँ लौकिकीकरण व तार्किकता में वृद्धि, गैर-कृषि व्यवसायों में लगे लोगों में बढ़ोत्तरी, नगरीकरण व औद्योगीकरण में वृद्धि, मृत्यु दर में कमी, परिवार नियोजन को मान्यता, आवागमन व संचार साधनों का विकास, शिक्षा का विस्तार, राष्ट्रीय व राजनीतिक चेतना आदि में वृद्धि हुई है वहीं दूसरी ओर जन साधारण की आशाएँ व माँगें इतनी बढ़ गई हैं कि उनमें वर्तमान सामाजिक- आर्थिक व राजनीतिक परिस्थिति के प्रति असंतोष व्याप्त हो गया है। तीव्र परिवर्तन से ठीक प्रकार से सामंजस्य न कर पाने के कारण विघटनकारी प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन मिला है। प्राचीन व नवीन मान्यताओं में संघर्ष के परिणामस्वरूप भारत में समन्वय व नियंत्रण की समस्या उत्पन्न हो गई है। व्यक्तिवादिता की वृद्धि ने व्यक्तिगत, पारिवारिक व सामुदायिक विघटन की परिस्थिति उत्पन्न कर दी है।

आधुनिक भारतीय समाज के लक्षण

परंपरागत भारतीय समाज के प्रमुख लक्षण तथा भारतीय समाज में क्रियाशील सामाजिक परिवर्तन की प्रमुख प्रक्रियाओं पर विचारोपरांत आधुनिक भारतीय समाज के निम्न लक्षणों की चर्चा की जा सकती है:–

1. ***विविधताओं से परिपूर्ण विशाल जनसंख्या–*** जनसंख्या के आधार पर भारत विश्व का दूसरा सबसे बड़ा देश है, परन्तु यह जनसंख्या विविधताओं से परिपूर्ण है जैसे–मैदानी भागों एवं तटीय प्रदेशों का जन घनत्व अत्यधिक है वहीं पहाड़ी व मरुस्थलीय प्रदेशों का जन घनत्व अति निम्न हैं। यहाँ बहुसंख्य जनसंख्या हिन्दुओं की है (81%) तो यहाँ मुस्लिम, सिख, ईसाई, बौद्ध, पारसी आदि समुदाय भी निवास करते है। केरल जैसे प्रदेश का लिंगानुपात अति उच्च है तो हरियाणा, पंजाब जैसे प्रदेश भी है जहाँ लिंगानुपात अति निम्न है। कुछ प्रदेशों में जनसंख्या का अधिकत्तर भाग साक्षर हैं (केरल) तो कुछ प्रदेशों में जनसंख्या का एक बड़ा भाग अभी भी निरक्षर हैं (बिहार)।

2. ***विविधता में एकता–*** भारतीय समाज एक बहुलक समाज है जहाँ कई धर्म, प्रजाति, जाति, संस्कृति, आदि के लोग एक साथ रहते हैं।

   यहाँ कई तरह की भाषाएँ एवं बोलियाँ बोली जाती हैं और हजारों त्यौहार मनाए जाते हैं। परन्तु इन विविधताओं में एक विशेष प्रकार की एकता परिलक्षित होती है। एक सामान्य शासन प्रणाली, एक सामान्य तीर्थ स्थल, संस्कृति, भारतीय समाज को एकता के सूत्र में जोड़ती है।

3. ***परंपरागत मूल्यों के साथ आधुनिक मूल्यों की विद्यमानता–*** समकालीन भारतीय समाज स्वतंत्रता, समानता, सामाजिक न्याय जैसे आधुनिक मूल्यों से निर्मित समाज है। परन्तु यहाँ आधुनिक समाज परंपरागत समाज को प्रतिस्थापित करके नहीं आया है बल्कि इस परंपरा की निरंतरता आज भी बनी हुई है और सामाजिक जीवन के सभी क्षेत्रों को ये परंपरागत मूल्य प्रभावित करते हैं। इसीलिए वर्तमान भारतीय समाज के बारे में कहा जाता है कि भारतीय समाज का आधुनिकीकरण मूलतः परंपरा का आधुनिकीकरण है। यहाँ आधुनिकता के मूल्यों के साथ समायोजन स्थापित करते हुए भारतीय परंपरा ने स्वयं को आधुनिकीकृति कर दिया है।

4. ***धार्मिक मान्यताओं के साथ धर्मनिरपेक्षता के मूल्यों की विद्यमानता और धर्म के नवीन स्वरूप पर प्रभाव–*** वर्तमान भारतीय समाज एक आधुनिक धर्मनिरपेक्ष समाज की ओर अग्रसर है, साथ ही धार्मिक मान्यताएँ भी हमारे जीवन में अपने महत्त्व को बनाए हुए हैं। आर्थिक और वैज्ञानिक दृष्टिकोण के विकास के साथ धर्म के अतार्किक मान्यताओं एवं रूढ़ियों में कमी आई है और धर्म का धर्मनिरपेक्षीकरण और तार्किकीकरण संभव हुआ है। आज भारत में धर्म कुछ नए रूपों में भी क्रियाशील हुआ है जैसे–धर्म का राजनीतिकीकरण, धर्म का बाजारीकरण धार्मिक पुन:प्रवर्तनवाद, धार्मिक रूढ़िवाद, आदि। आज राजनीतिक दलों द्वारा मतों को लामबंद करने हेतु धर्म का प्रयोग किया जा रहा है तो दूसरी तरफ जनता भी आर्थिक और राजनीतिक शक्ति को प्राप्त करने के एक सांगठनिक आधार के रूप में धर्म का प्रयोग कर रही है।

5. ***जाति व्यवस्था नवीन रूपों में क्रियाशील–*** वर्तमान भारतीय समाज में जाति व्यवस्था अपनी महत्ता बनाए हुए है। यद्यपि इसका कर्मकांडीय पक्ष कमजोर हुआ है तथापि जन्मजात सदस्यता, अंतरविवाही समूह और कुछ नवीन संदर्भों में यह समस्त भारत में क्रियाशील है।

   आज भारत सरकार ने आरक्षण के आधार के रूप में और जनगणना के आधार के रूप में जाति को निरंतरता प्रदान की है। राजनीतिक दलों द्वारा भी मतों को लाभबंद करने और सत्ता को प्राप्त करने के लिए जाति का प्रयोग किया जा रहा है। आज जाति कई राजनीतिक दलों के सामाजिक आधार के रूप क्रियाशील है।

6. ***वर्ग असमानता एवं वर्ग स्तरीकरण का विकास–*** परंपरागत भारतीय समाज में असमानता और स्तरीकरण का प्रमुख स्वरूप जाति था, परन्तु वर्तमान में धन के महत्त्व में वृद्धि हुई है और वर्ग असमानता और वर्ग स्तरीकरण (आर्थिक आधार पर निर्मित असमानता एवं ऊंच–नीच का भेदभाव) का उद्भव संभव हुआ है। यद्यपि भारत सरकार ने समाजवाद को लक्ष्य के रूप में निर्धारित करके निरंतर इस असमानता को दूर करने का प्रयास करती रही है। फिर भी यह असमानता आज बनी हुई है और आर्थिक सुधार की नवीन प्रक्रिया ने इसकी निरंतरता को और पुष्ट किया है।

7. ***एकाकी परिवार के साथ संयुक्त परिवार की विद्यमानता–*** वर्तमान भारतीय समाज में एकाकी परिवार का तीव्रता से विकास हुआ है विशेषकर नगरों में इस तरह के परिवारों की बहुलता है जिसमें पति, पत्नी एवं उनके अविवाहित बच्चे शामिल होते हैं।

   परंतु ये एकाकी परिवार पश्चिमी समाजों की तरह अलग–थलग एकाकी परिवार (Isolated Nuclear Family) नहीं है बल्कि यह अपने नातेदारों के साथ जुड़े हुए होते हैं। नगरों में रहने वाले ये एकाकी परिवार गाँव के पृथक परिवार की एक शाखा के रूप में विद्यमान होते हैं और पर्व, त्यौहार, शादी विवाह आदि के अवसर पर एकत्रित होकर और एक दूसरे के समय–समय पर सहयोग देकर अपनी संयुक्तता को अभिव्यक्त करते हैं। इस

तरह वर्तमान भारतीय समाज में भी संयुक्त परिवार की निरंतरता बनी हुई है। परन्तु यह भी सत्य है कि इनके बीच संबंधों की प्रगाढ़ता में कमी आई है।

8. ***पितृसत्तात्मकता में कमी और स्त्रियों की प्रस्थिति में सुधार-*** यह सही है कि आज भी भारतीय समाज पितृ सत्तात्मक है और सामाजिक जीवन के सभी क्षेत्रों में लिंग असमानता विद्यमान है परन्तु साथ ही यह भी सत्य है कि यह पितृसत्तात्मकता पहले की अपेक्षा काफी कमजोर हुई है। सामाजिक जीवन के सभी क्षेत्रों में महिला सशक्तिकरण ने लिंग समानता की दिशा में सामाजिक बदलाव को संभव बनाया है और जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में महिलाएँ पुरुषों के समान सहभागिता दर्ज करने में लगी हुई हैं।

9. ***धार्मिक स्वरूप के साथ विवाह के आधुनिक रूप का विकास-*** वर्तमान भारतीय समाज में विवाह पूर्णतः एक धार्मिक संस्कार नहीं रह गया है। बावजूद इसके अग्नि के सात फेरे, मंत्रोंच्चारण आदि धार्मिक कृत्यों की प्रधानता बनी हुई है। हिन्दू विवाह अधिनियम 1955 द्वारा विवाह विच्छेद को वैधानिक मान्यता दे देने से भारत में हिन्दुओं में विवाह एक समझौता का रूप धारण कर चुका है। परंतु व्यवहार में आज भी हिन्दू पति पत्नी अपने संबंधों को आजन्म निभाने का प्रयास करते हैं। भारत में मुस्लिम समुदायों में भी विवाह के आधुनिक रूपों का विकास हुआ है और बहुपत्नी विवाह और तलाक से मुसलमान परहेज करने लगे हैं। आज भी भारत के जनजातियों में विवाह के कुछ परंपरागत रूप जैसे गोल गधेड़ों, हरण विवाह, सेवा विवाह, अनादर विवाह आदि देखे जा सकते हैं परन्तु इनमें भी अब आधुनिक विवाह की ओर परिवर्तन दृष्टिगत हो रहा है।

आज भारत में मुख्यतः हिन्दुओं में विवाह संबंध निषेध (जाति बर्हिविवाह, गोत्र, अंतरविवाह, सप्रवर विवाह, सपिण्ड विवाह आदि) कमजोर हुए हैं और विवाह संबंधी नियमों में जातीय अंतरविवाह भी अपनी निरंतरता को बनाए हुए है। परन्तु यहाँ भी अंतरजातीय विवाह की घटनाएँ दिखाई देने लगी हैं। भारत सरकार द्वारा अंतरजातीय विवाह को सामुदायिक एकीकरण हेतु आवश्यक मानते हुए उत्साहित किया जा रहा है और अनुलोम विवाह पर 50,000 रुपये की धनराशि प्रदान की जाती है। गोत्र बर्हिविवाह के नियम यद्यपि महत्त्वहीन होते जा रहे हैं तथापि कुछ जातियों द्वारा आज भी इसको शक्ति से लागू करवाने का प्रयास किया जा रहा है (जाट जाति में खाप पंचायत द्वारा) और इस नियम का उल्लंघन करने वालों को बँधवाकर या हत्या करके दंडित किया जा रहा है। आज भारत में विवाह के कुछ नवीन रूप भी दृष्टिगत होने लगे हैं जैसे विवाह का बाजारीकरण (राहुल महाजन) ख्याति प्राप्ति हेतु विवाह (सलमान रूश्दी-पद्मा लक्ष्मी) आदि।

10. ***शिक्षा व्यवस्था में आधुनिकता-*** वर्तमान भारत में यद्यपि परंपरागत कर्मकांडीय शिक्षा आंशिक तौर पर विद्यमान है तथापि आधुनिक शिक्षा का तेजी से प्रसार हुआ है। इस आधुनिक शिक्षा में उच्च शिक्षा, तकनीकी शिक्षा, माध्यमिक एवं प्राथमिक शिक्षा से लेकर साक्षरता तक को शामिल किया जाता है। हालाँकि अभी भी संपूर्ण भारतीयों को आधुनिक शिक्षा से शिक्षित नहीं किया जा सका है और शैक्षिक असमानता धार्मिक स्तर पर, जाति स्तर पर, लैंगिक स्तर पर, क्षेत्रीय स्तर पर विद्यमान है फिर भी हम इस दिशा में निरंतर प्रयासरत हैं।

11. ***लोकतांत्रिक राजनीतिक व्यवस्था, लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण एवं लोकतांत्रिक समाज का निर्माण क्रियाशील-*** स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् आधुनिक विकसित समाजवादी भारतीय समाज के निर्माण का लक्ष्य निर्धारित किया गया और इसके लिए लोकतांत्रिक राजनीतिक व्यवस्था को स्वीकार किया गया। यह लोकतांत्रिक राज्य भारत में एक प्रक्रिया के रूप में क्रियाशील रहा है जो निरंतर लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण के द्वारा लोकतांत्रिक समाज के निर्माण की ओर अग्रसर है। इसके लिए लोकतांत्रिक राज्य में निरंतर लोकतांत्रिक संस्थाओं के अधिकाधिक विकास द्वारा राजनीतिक जागरूकता को बढ़ाकर लोकतंत्र को वास्तविक रूप प्रदान करने का प्रयास किया है ताकि आधुनिक भारतीय समाज के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सके। इस दिशा में दबाव समूहों की संख्या में वृद्धि, राजनीतिक दलों की संख्या में वृद्धि, सूचना का अधिकार, नवीन पंचायतीराज का उद्भव आदि प्रमुख प्रयास रहे हैं।

12. ***आधुनिक कृषि अर्थव्यवस्था, औद्योगिक अर्थव्यवस्था एवं सेवा अर्थव्यवस्था-*** परंपरागत रूप से भारतीय समाज कृषि प्रधान समाज था, परन्तु आधुनिकीकरण की प्रक्रिया ने जहाँ कृषि व्यवस्था को आधुनिक स्वरूप प्रदान किया (ट्रैक्टर, हार्वेस्टर, कॉन्ट्रेक्ट फार्मिंग) वहीं आधुनिक उद्योगों एवं सेवा क्षेत्र का भी तीव्रता से विस्तार हुआ है।

आज हमारे सकल घरेलू उत्पाद (GDP) में आधे से अधिक भाग में सेवा क्षेत्र ही योगदान करता है। आज BPO, सॉफ्टवेयर, बैंकिंग, बीमा, होटल, पर्यटन जैसे क्षेत्रों ने व्यापक महत्त्व प्राप्त कर लिया है।

13. ***नगरीकरण एवं अतिनगरीकरण-*** आधुनिक उद्योगों के विकास ने भारत में नगरीकरण की प्रक्रिया को तीव्र कर दिया है। वर्ष 1901 में जहाँ जनसंख्या का 11% ही नगरों में निवास करता था वहीं आज लगभग 32% जनसंख्या नगरों में रहती है। दिल्ली, मुम्बई जैसे महानगर तो आज अति नगरीकरण के शिकार हैं।

14. ***जनजातियों का आधुनिकीकरण-*** जनजातीय समुदाय भारतीय समाज का एक प्रमुख अंग है जिनकी संख्या लगभग 8.6%

है। इसमें संथाल, भील, मीणा, गारो, खासी, हो, बैगा, गोण्ड आदि प्रमुख जनजातियाँ हैं जो भारत के विभिन्न क्षेत्रों में निवास करती हैं। ये जनजातियाँ भारत की सर्वाधिक पिछड़ा समुदाय है। सरकार के प्रयास से इनका तीव्रता से विकास हुआ है और इनके सामाजिक सांस्कृतिक जीवन का काफी हद तक आधुनिकीकरण संभव हुआ है। आज ये जनजातियाँ भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में, प्रशासनिक व्यवस्था में, शिक्षा व्यवस्था में, आर्थिक व्यवस्था में बढ़ चढ़कर अपनी उपस्थिति दर्ज करवा रही हैं। परन्तु इनका एक भाग आज भी पिछड़ेपन का शिकार है।

15. ***वैश्विक संस्कृति का प्रसार और वैश्विक समाज का निर्माण–*** आर्थिक सुधार के बाद होने वाली संचार क्रांति ने भारत के सामाजिक सांस्कृतिक संबंधों का फैलाव विश्व के अन्य देशों तक कर दिया है और फलत: विश्व के अन्य देशों की संस्कृति का भारतीय समाज पर प्रभाव व्यापक रूप से दिखाई देने लगा है रहन-सहन, खानपान, जीवनशैली, वस्त्र, साज-सज्जा आदि सभी क्षेत्रों पर इनका प्रभाव देखा जा सकता है। चाऊमीन, मोमोज से लेकर पिज्जा तक और वेलेंटाइन डे, लिव-इन-रिलेशनशिप, समलैंगिकता जैसे नवीन तरीकों का प्रचलन आज इसी वैश्विक संस्कृति के प्रसार का परिणाम है। इसके कारण आज भारतीय समाज एक वैश्विक समाज का स्वरूप लेता जा रहा है।

भारतीय समाज की आधारभूत विशेषताएँ : समकालीन मुद्दे

भारत में परंपरा, आधुनिकता एवं आधुनिकीकरण

'परंपरा' संस्कृत शब्द 'ऐतिह' तथा अंग्रेजी शब्द 'Tradition' का हिन्दी रूपांतरण है जिसका अर्थ है, विरासत में प्राप्त होना अर्थात् परंपरा शब्द से उन सभी बातों का बोध होता है जिसका उद्‌गम स्मृतियों, ऋषि-मुनियों के आप्त वाक्यों अथवा पौराणिक नायकों द्वारा प्रदान किए गए ज्ञान से हुआ है। दूसरे शब्दों में, हमारे पूर्वजों द्वारा बनाए गए रीति-रिवाजों, विश्वासों व कार्य करने के तरीके जो हमें विरासत में प्राप्त होते हैं, परंपरा कहे जाते हैं। स्पष्ट है, परंपरा किसी समुदाय का वह संचरित मूल्य एवं मान्य व्यवहार है जो दीर्घकाल से चला आ रहा है।

परंपराएं अतीत के द्वारा हस्तांतरित विश्वासों और व्यवहारों की पूँजी होती हैं। पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तांतरित होने के कारण इनके बारे में यह विश्वास जम जाता है कि ये मूल्यवान हैं और समाज की एकता एवं सामाजिक सुदृढ़ता के लिए उपयोगी हैं। परंपरा की धारणा जैसा है उसी को अपनाने की प्रवृत्ति पर जोर देती है और नवीनता के प्रति संदेह या भय की धारणा रखती है और इसका विरोध करती हैं।

परंपराएँ पूर्णत: स्थिर नहीं होती हैं तथा स्थान व समय के अनुसार इनमें भी बदलाव आता रहता है। इस बदलाव की प्रक्रिया में कई बार पुरानी व उपयोगिताहीन परंपराएँ समाप्त हो जाती हैं तो कई बार यह अपने बदले हुए रूप के साथ अपनी निरंतरता को बनाए रखती हैं।

परंपरा के उपरोक्त अवधारणात्मक विश्लेषण के आधार पर यदि भारतीय परंपरा पर विचार किया जाए तो इसके निम्न लक्षण परिलक्षित होते हैं-

1. धर्म की प्रधानता परंपरागत भारतीय समाज का केन्द्रीय तत्त्व रहा है और सामाजिक जीवन के सभी पक्ष इसी के इर्द-गिर्द संगठित रहे हैं।
2. परलोकवादिता को भी धर्म के संदर्भ में भारतीय परंपरा के प्रमुख तत्त्व के रूप में स्वीकार किया गया है क्योंकि परंपरागत भारतीय समाज के लोगों की क्रियाओं की उन्मुखता इहलोक के बजाय पारलौकिक जगत की ओर होती है। भारतीय परंपरा में निहित जीवनचक्र के संस्कार, मोक्ष का लक्ष्य आदि इस तथ्य की पुष्टि करते हैं।
3. संस्तरण भी परंपरागत भारतीय समाज का एक प्रमुख लक्षण है जो जाति व्यवस्था, गुण, आश्रम व्यवस्था, पुरुषार्थ आदि सभी में दृष्टिगत होता है।
4. भारतीय परंपरा का एक अन्य प्रमुख लक्षण इसमें निर्वचन एवं तर्क के लिए खुलेपन की विद्यमानता है, जिसके चलते इसमें परिवर्तन की गुंजाइश सदैव बनी रहती है। भारत में बौद्ध एवं जैन धर्म का उद्‌भव परंपरा में इस लक्षण की विद्यमानता की पुष्टि करते हैं।
5. सामंजस्य एवं सात्मीकरण को भी भारतीय परंपरा के प्रमुख लक्षण के रूप में स्वीकार किया जाता है। भारत में शक, हूण, कुषाण आदि का आगमन और भारतीय परंपरा के साथ उनका संपर्क तथा उनके साथ भारतीय परंपरा का सामंजस्य और स्वयं में उनको आत्मसात करने की प्रवृत्ति ऐतिहासिक रूप से विद्यमान रही है।
6. सहिष्णुता भारतीय परंपरा का एक अन्य प्रमुख गुण रहा है और अन्य संस्कृतियों एवं परंपराओं के प्रति यह कभी भी कठोर नहीं रहा है। एक तरफ इस्लाम धर्म के विरूद्ध बोलने पर **सलमान रुश्दी** पर फतवा जारी कर देना तथा दूसरी तरफ **एम. एफ. हुसैन** द्वारा हिन्दू देवियों का नग्न चित्र बनाने पर उनको कलाकार कहकर सहन कर लेना इस तथ्य को स्पष्ट तौर पर परिलक्षित करता है।
7. भारतीय परंपरा का एक और प्रमुख गुण इसकी निरंतरता है। भारतीय परंपरा में विद्यमान निर्वचन एवं तर्क के लिए खुलापन,

सहिष्णुता, सामंजस्य एवं सात्मीकरण के लक्षणों ने इसकी निरंतरता को संपोषित किया है और तमाम परिवर्तनों के बाद भी आज भारतीय परंपरा अपनी निरंतरता को बनाए हुए हैं।

आधुनिकता एवं आधुनिकीकरण
(Modernity and Modernization)

'आधुनिक' शब्द अंग्रेजी शब्द 'Modern' का हिन्दी अनुवाद है जिसका अर्थ है प्रचलन या फैशन, अर्थात् जो भी समकालीन है या जिसका वर्तमान समय में प्रचलन है वही आधुनिक है, चाहे वह अच्छा है या बुरा, हम उसे चाहते हैं अथवा नहीं। आधुनिकता का यह अर्थ वृहद् संदर्भ को प्रस्तुत करता है परंतु अपने वर्तमान और विशिष्ट संदर्भ में बुद्धिवाद और उपयोगितावाद के दर्शन पर आधारित सोचने समझने और व्यवहार करने के ऐसे तौर तरीके को आधुनिकता कहा जाता है जिसमें प्रगति की आकांक्षा विकास की आशा और परिवर्तन के अनुकूल अपने आप को ढालने का भाव निहित होता है। यह इस बात पर बल देती है कि बौद्धिक एवं तार्किक विश्व-दृष्टि के माध्यम से सामाजिक प्रगति हासिल की जा सकती है। अपने इस विशिष्ट अर्थ में आधुनिकता की शुरूआत यूरोप में प्रबोधनकाल से मानी जाती है किन्तु एक ठोस विचारधारा के रूप में इसका विकास 20वीं सदी के अंतिम वर्षों में ही संभव हुआ है।

अपने समकालीन एवं विशिष्ट संदर्भ में आधुनिकता के कई लक्षण बताए गए हैं जिनमें परानुभूति, वैज्ञानिक विश्व-दृष्टि, सार्वभौमिक दृष्टिकोण, धर्मनिरपेक्षता, उन्नत एवं परिष्कृत प्रौद्योगिकी, भविष्योन्मुखता, व्यक्तिवादिता आदि प्रमुख हैं।

आधुनिकता के उपरोक्त लक्षणों के अनुरूप सामाजिक-सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक आदि पक्षों में होने वाले परिवर्तन की प्रक्रिया को आधुनिकीकरण की संज्ञा दी जाती है। दूसरे शब्दों में, आधुनिकीकरण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा परंपरागत या पूर्व औद्योगिक समाज आधुनिक समाज की विशेषताओं को अपनाते हैं। इस तरह आधुनिकीकरण 'आधुनिकता' के उन क्षेत्रों में प्रसार की प्रक्रिया है जो अभी तक परंपरागत हैं या आधुनिक नहीं हैं। इसके द्वारा परंपरागत या पूर्व आधुनिक समाज समूहवाद, भाग्यवाद, रूढ़िवाद व धर्मान्धता से मुक्ति प्राप्त करता है और आधुनिक समाज के रूप में तब्दील हो जाता है।

आधुनिकीकरण किसी एक क्षेत्र तक सीमित नहीं होता है बल्कि इस प्रक्रिया को सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक सभी क्षेत्रों में देखा जा सकता है। इन क्षेत्रों में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को निम्न रूपों में देखा जा सकता है-

1. सामाजिक क्षेत्र में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया सामाजिक गतिशीलता में वृद्धि, प्रदत्त प्रस्थिति के स्थान पर अर्जित प्रस्थिति के महत्त्व में वृद्धि, पुरानी धारणाओं को त्याग कर नए व्यवहारों को अपनाने की प्रवृत्ति तथा संरचनात्मक विभेदीकरण में वृद्धि के रूप में घटित होती है।
2. राजनीतिक क्षेत्र में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया नागरिकों द्वारा सार्वभौमिक सत्ता की वैधता की प्राप्ति, नागरिकों में वयस्क मताधिकार के आधार पर राजनीतिक शक्ति का हस्तांतरण, समाज के केन्द्रीय कानून, प्रशासनिक तथा राजनीतिक संस्थाओं का विस्तार एवं प्रसार तथा प्रशासकों द्वारा जनता की भलाई के लिए नीति-निर्माण आदि के रूप में दृष्टिगत होता है।
3. आर्थिक क्षेत्र में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया उत्पादन, वितरण, आवागमन तथा संचार हेतु पशु एवं मानवीय शक्ति के स्थान पर अमानवीय अर्थात् जड़ शक्ति का प्रयोग, मशीनों, तकनीकी एवं औजारों का अधिकाधिक प्रयोग, उच्च तकनीकी के परिणामस्वरूप उद्योग, व्यापार, व्यवसाय आदि में वृद्धि, औद्योगीकरण में तीव्र वृद्धि, आर्थिक कार्यों में उत्पादन तथा उपभोग में वृद्धि आदि के रूप में क्रियाशील होती है।

भारत में औपनिवेशिक शासनकाल के दौरान आधुनिकीकरण की शुरूआत

भारतीय ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना 17वीं शताब्दी में हुई और इसके साथ ही भारतीय समाज का संपर्क आधुनिक पश्चिमी सभ्यता के साथ व्यापक रूप से संभव हुआ। फलतः भारत में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया का प्रारंभ औपनिवेशिक शासन के प्रमुख प्रभावों में से एक था। अंग्रेजों द्वारा भारत में अपने साम्राज्य की स्थापना के लिए और फिर उसे बनाए रखने के लिए कुछ नई तकनीक एवं संरचनाओं को भारतीय समाज पर लागू किया गया और इसी के साथ भारत में आधुनिकीकरण का प्रवेश संभव हुआ।

अंग्रेजों द्वारा अपने लाभ हेतु उत्पादन में नई मशीनी तकनीक का प्रयोग करके औद्योगीकरण की नींव रखी गई तथा व्यक्ति की योग्यता को महत्त्व प्रदान किया गया, व्यापार की नई बाजार प्रणाली को लागू किया गया, अपने व्यापार संबंधी आवश्यकताओं को पूरा करने हेतु तथा प्रशासन को दुरूस्त करने हेतु यातायात एवं संचार के आधुनिक साधनों का विकास किया गया, नगरीकरण की प्रक्रिया को तीव्र किया गया और इस तरह भारत में आर्थिक क्षेत्र के आधुनिकीकरण की प्रक्रिया प्रारंभ हुई। फलतः भारतीय समाज में संरचनात्मक एवं प्रकार्यात्मक विभेदीकरण संभव हुआ, वर्ग स्तरीकरण का विकास संभव हुआ, कई नवीन वर्गों तथा संस्थाओं का प्रादुर्भाव हुआ, प्रवास के दर में वृद्धि हुई, समाज में अर्जित प्रस्थिति को महत्त्व प्राप्त हुआ, व्यक्तिवादिता का विकास हुआ जिसके कारण परंपरागत संरचनाओं में आधुनिकीकरण की दिशा में परिवर्तन प्रारंभ हो गया।

आधुनिक पश्चिमी सभ्यता समानता, स्वतंत्रता, सामाजिक न्याय, व्यक्तिवादिता, विवेकशीलता, मानववाद के दृष्टिकोण पर आधारित थी। औपनिवेशिक शासनकाल में प्रारंभ की गई औपचारिक आधुनिक शिक्षा व्यवस्था ने, जो धर्मनिरपेक्ष, तार्किक एवं वैज्ञानिक थी, न केवल योग्यता एवं प्रदत्त प्रस्थिति को महत्त्व प्रदान किया बल्कि स्वतंत्रता, समानता, सामाजिक न्याय, वैज्ञानिक विश्व-दृष्टि, धर्मनिरपेक्षता के

मूल्यों को प्रसारित करके हमारे जीवन के सभी पक्षों को इस दिशा में प्रभावित किया और भारतीय समाज में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को अग्रसारित किया फलतः भारतीय समाज में धर्म के प्रभाव में कमी आई सोपानिकता कमजोर हुई निम्न जातीय समूहों एवं स्त्रियों की प्रस्थिति में सुधार प्रारंभ हुआ तथा सामूहिकता की जगह व्यक्तिवादिता की प्रवृत्ति विकसित होने लगी जिसने नातेदारी व्यवस्था, परिवार, विवाह आदि में नवीन परिवर्तनों और प्रस्थिति उन्नयन हेतु विभिन्न व्यक्तियों व समूहों के बीच प्रतिस्पर्धा एवं संघर्ष का बीजारोपण किया।

औपनिवेशिक शासनकाल में नवीन शिक्षा व्यवस्था की शुरूआत प्रारंभ में मुंबई, कलकत्ता एवं मद्रास विश्वविद्यालय की स्थापना के रूप में भारत के तीन क्षेत्रों में हुई जिसने मुख्यतः दो तरह के परिवर्तनों को संभव बनाया–

1. इन शिक्षण संस्थानों में आधुनिक शिक्षा प्राप्त नवीन मध्यम वर्ग का उदय हुआ जो विवेकशीलता के सिद्धांत पर बल देता था और जिसने भारतीय समाज में आधुनिकीकरण को नेतृत्व प्रदान किया।
2. सांस्कृतिक सुधारवादी आंदोलन जैसे ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज आदि का प्रारंभ हुआ। इसने सामाजिक जीवन के सभी क्षेत्रों में बदलाव एवं समन्वय की प्रक्रिया को क्रियाशील किया इससे परंपरागत कुरीतियों एवं मान्यताओं के उन्मूलन की दिशा में परिवर्तन संभव हो सका।

अंग्रेजों द्वारा वयस्क मताधिकार, संगठित व प्रशिक्षित पृथक न्याय व्यवस्था, औपचारिक एवं लिखित कानून व्यवस्था, आधुनिक सैन्य संगठन, नौकरशाही व्यवस्था पर आधारित सिविल सेवा का अखिल भारतीय स्वरूप आदि की शुरूआत की गई और इस दिशा में बहुत सारे कानूनों का निर्माण किया गया जिससे राजनीतिक एवं प्रशासनिक क्षेत्रों में आधुनिकीकरण की शुरूआत हुई। परिणामस्वरूप, शक्ति संरचना में शक्ति की प्राप्ति हेतु प्रतिस्पर्धा तेज हुई, शक्ति संरचना का परंपरागत एवं आनुवांशिक स्वरूप कमजोर हुआ और लोकतांत्रिक राजनीतिक व्यवस्था तथा लोकतांत्रिक समाज के निर्माण की पृष्ठभूमि तैयार हुई।

यहाँ ध्यान देने योग्य प्रमुख बात यह है कि औपनिवेशिक काल में निश्चित रूप से भारत में आधुनिक संरचना और संस्कृति की पृष्ठभूमि तैयार हुई जो पूरे भारत वर्ष में प्रभावशाली रही। फिर भी, इस दौर में स्थानीय या लघु संरचनाएँ, जिनमें परिवार, जाति एवं ग्राम शामिल हैं, विशेष प्रभावित नहीं हुए। क्योंकि, अग्रेंजों की प्रारंभिक नीति इन क्षेत्रों में न्यूनतम हस्तक्षेप की बनी रही। भारतीय परंपरा के आधुनिकीकरण की इस प्रक्रिया के विकास की पूर्णतः अभिव्यक्ति स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् संभव हो सकी जब बृहद् संरचनाओं, लघु संरचनाओं एवं लघु तथा बृहद् परंपराओं के मध्य आधुनिकीकरण में असंगति को काफी हद तक समाप्त कर दिया गया, जो अंग्रेजी शासनकाल के दौरान विद्यमान थी।

भारत में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया के स्वरूप

आधुनिकीकरण की प्रक्रिया के प्रति भारतीय समाज में तीन तरह की प्रतिक्रियाएँ दृष्टिगत होती हैं–

1. परंपरा द्वारा आधुनिकीकरण की प्रक्रिया का विरोध
2. आधुनिकीकरण द्वारा परंपरा का विस्थापन
3. भारतीय परंपरा का आधुनिकीकरण

परंपरा द्वारा आधुनिकीकरण की प्रक्रिया का विरोध

प्रथम प्रकार की प्रतिक्रिया घोर परंपरावादी और कट्टरपंथियों की थी जो भारतीय परंपरा में निहित तत्त्वों एवं आदर्शों को श्रेष्ठ मानते थे और इससे अलग हर विदेशी तत्त्व एवं आदर्श को संदेह की दृष्टि से देखते थे और त्याज्य मानते थे। इनके अनुसार आज के युग की सभी उपलब्धियाँ परंपरागत भारत में (वैदिक काल या रामायण व महाभारत काल में) घटित हो चुकीं थी। इसलिए ये पुनः अपनी परंपरा को स्थापित करना और अपने अतीत के गौरव को वापस लाना चाहते थे। आधुनिकीकरण के प्रति इनकी प्रतिक्रिया विरोध के रूप में प्रकट हुई और इन्होंने हर आधुनिक चीज को विदेशी कहकर उसका विरोध किया और सामाजिक जीवन के सभी क्षेत्रों में परंपरा को पुनर्स्थापित करने का प्रयास किया।

आधुनिकीकरण द्वारा परंपरा का विस्थापन

आधुनिकीकरण के प्रति दूसरी प्रतिक्रिया उन लोगों की थी जिन्हें तत्कालीन समय में आधुनिकतावादी कहा जाता था। ये परंपरा में निहित सभी तत्त्वों व आदर्शों को पुरातनपंथी पोंगापंथी व अंधविश्वास कहकर उनका माजक उड़ाते थे व अंग्रेजों के साथ आए प्रत्येक विदेशी चीज को श्रेष्ठ मानते थे। इनके अनुसार भारतीय समाज का कल्याण इसी में है कि यह शीघ्रता से पश्चिमी समाज की भाँति हो जाए। आधुनिकीकरण के प्रति इनकी प्रतिक्रिया परंपरा के सभी तत्त्वों का त्याग और आधुनिकता के सभी तत्त्वों एवं आदर्शों की पूर्ण स्वीकृति के रूप में हुई। इन लोगों ने आधुनिकता के मूल्य प्रतिमान, जीवनशैली तथा विश्वदृष्टि सभी को पूर्ण रूपेण स्वीकार किया व इसका समर्थन किया।

भारतीय परंपरा का आधुनिकीकरण

आधुनिकीकरण के प्रति तीसरी प्रतिक्रिया समन्वयवादियों की थी जो परंपरा और आधुनिकता के मध्य समन्वय के पक्षधर थे। इनका मानना था कि आधुनिकता के संदर्भ में परंपरा पर फिर से विचार करना चाहिए। परंपरा में जो तत्त्व एवं आदर्श रखने योग्य हैं उसे बनाए रखना चाहिए और जो वर्तमान समय में प्रासंगिक या उपयोगी नहीं हैं उनका त्याग करना चाहिए। इसी तरह, आधुनिकता के तत्त्वों एवं आदर्शों में से जो तत्त्व वर्तमान भारतीय समाज एवं संस्कृति के लिए प्रासंगिक, उपयोगी एवं विवेकपूर्ण हैं उसे स्वीकार करना चाहिए और जो नहीं हैं उसे छोड़ देना चाहिए। दूसरे शब्दों में, परंपरा

एवं आधुनिकता के समन्वय से ही भारतीय समाज का कल्याण एवं विकास संभव है इसलिए इस तीसरी विचारधारा के समर्थकों ने परंपरा के साथ आधुनिकता को संशोधित रूप में स्वीकार किया और भारत में भारतीय समाज व संस्कृति के साथ सामंजस्य बैठाते हुए आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को संशोधित रूप में अग्रसारित किया। उपरोक्त तीनों प्रतिक्रियाओं में से तीसरी प्रतिक्रिया सर्वाधिक तर्कसंगत एवं व्यवहारिक रूप से सफल रही है अर्थात् भारत में परंपरा का बिना विखंडन किए आधुनिकीकरण संभव है और दोनों में परस्पर विरोध ना होकर दोनों का सह अस्तित्व संभव दिखाई पड़ रहा है। संतान के लिए आधुनिक चिकित्सा पद्धति का प्रयोग तथा जन्म के शुभ अवसर पर पारंपरिक कर्मकांड (छठी आदि), आधुनिक तकनीक से कृषि कार्य तथा मकर संक्रांति, पोंगल, लोहड़ी, वैशाखी का त्यौहार, परिवार नियोजन की स्वीकृति और संतान को ईश्वरीय इच्छा के रूप में मानना, औद्योगीकरण एवं यंत्रीकरण तथा विश्वकर्मा पूजा के अवसर पर यंत्रों की पूजा, जीवन के अनेक क्षेत्रों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण तथा अनेक क्षेत्रों में अंधविश्वास को मान्यता (जैसे-बिल्ली द्वारा रास्ता काटना, शुभ-अशुभ की मान्यता आदि) ऐसे उदाहरण हैं जो उपरोक्त कथन की पुष्टि करते हैं। अतः निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि आधुनिकीकरण और भारतीय परंपरा में एक अटूट क्रम विद्यमान रहा और कुछेक अंतर्विरोधों के बावजूद दोनों ने एक-दूसरे को संपोषित किया है। इस प्रक्रिया ने निश्चित रूप से भारतीय समाज को आधुनिक समाज की ओर अग्रसारित किया है। परन्तु यह परंपरा को पूर्णतः विस्थापित करके नहीं हुआ है, बल्कि परंपरा का आधुनिकीकरण हुआ है और भविष्य में अनुकूलनकारी परिवर्तन की इस प्रक्रिया की सफलता इस बात पर निर्भर करेगी, कि आधुनिकीकरण एवं परंपरा के मध्य उत्पन्न तनाव का समाधान कैसे किया जाता है क्योंकि जहाँ समाधान सही नहीं रहा है, वहाँ आधुनिकीकरण की इस प्रक्रिया ने कई तरह के विखंडन को उत्पन्न दिया है। (जैसे-इंडोनेशिया, वर्मा, आदि देशों में) और जहाँ यह समाधान सही तरीके से हुआ है, वहाँ आधुनिकीकरण सफल रहा है। (जैसे-जापान में)

भारतीय समाज में आधुनिकीकरण की समस्याएँ

भारतीय समाज परंपरागत व्यवस्था से आधुनिकीकृत व्यवस्था की ओर बढ़ने से परंपरा एवं आधुनिकता की समांतर धाराएँ एक साथ दिखाई दे रही हैं जो एक दूसरे के विपरीत मूल्यों पर आधारित होने के कारण अनुकूलन की समस्या उत्पन्न कर रही हैं। परंपरा और आधुनिकता के इस संक्रमण काल से तमाम विरोधाभास एवं समस्याएँ भी उत्पन्न हो रही हैं जिन्हें निम्न बिन्दुओं के आधार पर समझा जा सकता है:-

1. ***तनाव एवं असंतोष:-*** परंपरागत भारतीय समाज में शिक्षा की दर अत्यंत कम थी। विभिन्न सरकारी एवं गैरसरकारी उपायों के उपरांत यहाँ साक्षरता में वृद्धि हुई। धीरे-धीरे उच्च शिक्षा एवं तकनीकी शिक्षा में भी भारतीय समाज आगे बढ़ने लगा। किन्तु सभी शिक्षित लोगों को उनकी योग्यतानुसार रोजगार नहीं मिला। जिसके कारण उनमें तनाव, कुंठा एवं असंतोष उत्पन्न हुआ। ये बेरोजगार युवक आगे-चलकर गैर कानूनी गतिविधियों में भी शामिल होने लगे हैं।
2. ***सांस्कृतिक एवं प्रौद्योगिकीय विलंबना:-*** भारत में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया सभी क्षेत्रों में समान रूप में आरंभ नहीं हुई बल्कि समाज के कुछ तत्त्व इससे अछूते ही रहे। औद्योगीकरण एवं नगरीकरण तथा अर्थव्यवस्था के विकास के साथ भारतीय समाज में वर्ग व्यवस्था के लक्षण आने लगे किन्तु जाति व्यवस्था फिर भी बनी हुई है। भारत में उत्पादन प्रणाली की उत्पादन शक्तियों का आधुनिकीकरण हुआ पर उत्पादन संबंध में बदलाव बहुत कम आया। भारत में शिक्षा में वृद्धि के उपरान्त राष्ट्रवादी भावना में वृद्धि हुई किन्तु साथ ही क्षेत्रवाद, जातिवाद, भाई-भतीजावाद अभी तक बना हुआ है। महिला सशक्तीकरण की प्रक्रिया आरंभ हो गई है तथा महिलाओं की स्थिति में सुधार हुआ है, किन्तु पितृसत्तात्मकता आज भी बनी हुई है।
3. ***आधुनिकता बनाम परंपरा:-*** भारत में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया के साथ साथ परंपराए भी अपना स्थान बनाए हुए हैं। शहर और गाँव सभी समाजों में यह स्थिति बनी हुई है। लोग जब आधुनिक मूल्यों से खतरा महसूस करते हैं तो वे परंपरागत मूल्यों की ओर वापस लौटने लगते हैं। विभिन्न धर्मों के पुनरूत्थानवादी आंदोलनों में ऐसा स्पष्ट देखा जा सकता है।
4. ***व्यक्तिगत स्वार्थ एवं मैं की भावना:-*** परंपरागत भारतीय समाज में समूह हित सर्वोपरि था तथा परिवार, समाज या समूह के प्रति हम की भावना होती थी किन्तु आधुनिकता के विकास के साथ व्यक्ति तार्किक होता जा रहा है उसमें भावनात्मक मूल्यों की कमी आ रही है जिसके कारण वह केवल व्यक्तिगत स्वार्थ देख रहा है। उसके अन्दर मैं की भावना आ रही है और हम की भावना गायब होती जा रही हैं जिससे सामाजिक सौहार्द्र में कमी आ रही है। लोगों में द्वितीयक एवं संविदात्मक संबंध बनते जा रहे हैं और प्राथमिक एवं सहयोगात्मक संबंधों में कमी आ रही है।

उपरोक्त तथ्यों के आधार पर निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि भारतीय समाज में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया से समाज

में सहयोगात्मक ही नहीं बल्कि असहयोगात्मक तत्त्वों की वृद्धि हो रही है। लोगों में भौतिकवादी मूल्यों के प्रति रूझान होने से तमाम समस्याएँ उत्पन्न हो रहीं हैं। व्यक्ति भौतिक विकास में असफल होने से असंतुष्ट होता जा रहा है और उसमें मानसिक तनाव भी उत्पन्न हो रहें हैं। कभी कभी आपराधिक गतिविधियाँ भी इसके कारण उत्पन्न हो रही हैं। किन्तु यह स्थितियाँ संक्रमण के दौर के कारण आई हैं और आशा है कि भारतीय समाज संक्रमण की स्थिति से निकलकर आधुनिकीकरण से लाभांवित हो सकेगा।

जनसंचार के साधनों का भारतीय समाज पर प्रभाव

एक विशेष मुद्दे, विचार या सूचना आदि को अन्य लोगों तक संप्रेषित करना संचार कहलाता है। आधुनिक युग सूचना का युग है और इन सूचनाओं को एक साथ जनता के बहुत बड़े भाग तक संप्रेषित करना जनसंचार कहलाता है। जनसंचार के अंतर्गत आधुनिक संचार प्रणाली यथा रेडियो, टीवी, समाचारपत्र, इंटरनेट के माध्यम से किसी सूचना या विचार को द्रुत गति से जनता के पास तक पहुँचाया जाता है।

विकास और परिवर्तन में सूचना एक महत्त्वपूर्ण कारक है और जनसंचार के साधनों द्वारा इन सूचनाओं का प्रसार सामाजिक परिवर्तन को संभव बनाता है या इसके लिए उपयुक्त वातावरण प्रदान करता है। मनोवृत्तियों व मूल्यों में बदलाव लाने हेतु यह न केवल नवीन अवसर व ज्ञान प्रदान करता है बल्कि लोगों के ज्ञान के सीमा के विस्तार में भी सहायता प्रदान करता है।

वर्तमान भारत के जनसंचार माध्यमों की विषयवस्तु पर विचारोपरांत यह स्पष्ट होता है कि आज अधिकांश साधन भूमंडलीकरण तथा आधुनिकीकरण के मूल्यों के प्रसार में लगे हैं जिसके दो महत्त्वपूर्ण परिणाम रहे हैं-

1. आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को गति मिली है।
2. पाश्चात्य सांस्कृतिक तत्त्वों का प्रचार हुआ है।

आधुनिकीकरण के तत्त्वों (जैसे स्वतंत्रता, समानता, धर्मनिरपेक्षता व लोकतांत्रिक मूल्यों) ने जहाँ भारतीय सामाजिक जीवन में सकारात्मक परिवर्तन को सक्रिय बनाया है वहीं पाश्चात्य संस्कृति के भौतिकवादी-उपभोक्तावादी तत्त्वों ने ऐसी प्रवृत्ति (व्यक्तिवादी व महत्त्वाकांक्षी प्रवृत्ति, धन से धन कमाने की प्रवृत्ति, भोगविलास की प्रवृत्ति, प्रतिस्पर्धा एवं असहिष्णुता, सांस्कृतिक विविधता का ह्रास आदि) को प्रसारित किया है जो भारतीय संस्कृति के तत्त्वों (सहिष्णुता, सामूहिकता, आध्यात्मिकता, सांस्कृतिक विविधता आदि) को कमजोर किया है। जनसंचार के साधनों का भारतीय समाज पर प्रभावों को निम्न बिंदुओं के अन्तर्गत देखा जा सकता है-

1. भारतीय संस्कृति पर प्रभाव, एवं
2. भारतीय समाज की संरचना पर प्रभाव।

भारतीय संस्कृति पर प्रभाव (Effect of Indian Culture)

जनसंचार के साधनों ने भारतीय संस्कृति में आधुनिकता व पश्चिमी संस्कृति के तत्वों का तीव्र प्रसार किया है जिसको निम्न बिन्दुओं के अंतर्गत देखा जा सकता है-

1. पाश्चात्य परिधानशैली का आगमन जहाँ पुरुषों व स्त्रियों के काम व आराम के अनुकूल है वहीं कम कपड़ों के कारण इसने स्त्रियों के प्रति व्यभिचारों को बढ़ाया है। आज व्यक्ति के लिए फैशन व सौंदर्य प्रसाधनों के प्रयोग को संचार साधनों के प्रभाव ने आवश्यक बना दिया है और सामाजिक प्रतिष्ठा के प्रतीक के रूप में स्थापित किया है।
2. आज जनसंचार माध्यमों ने लोक संस्कृति के लिए विशेष प्रश्न खड़े किए हैं। जनसंचार का इनके लिए संदर्भ बन जाने के कारण इनके मूल स्वरूपों का रूपांतरण संभव हुआ है जिससे स्वयं लोक संस्कृति के रचनाकारों की अपनी मौलिक रचनात्मक क्षमता प्रभावित हुई है। आज लोक रचनाओं के साथ लोगों की प्रत्यक्ष भागीदारी अप्रत्यक्ष भागीदारी में बदल गई है। लेकिन दूसरी ओर इसने लोक संस्कृति को भारतीय स्तर पर प्रसारित करने तथा इसकी विलुप्तता को पुनर्जीवित करने का काम भी किया है।
3. कला के व्यापारीकरण में जनसंचार के साधन बिचौलियों का काम कर रहे हैं साथ ही जनसंचार के साधनों व विशेष रूप से जनकलाकारों के बीच भी व्यापारिक मध्यस्थों की भूमिका बढ़ी है। कला के ऊपर कलाकार का हस्तक्षेप कम हुआ है और बाह्य तत्त्वों, नौकरशाही व व्यापारिक मध्यस्थों का हस्तक्षेप बढ़ा है। पाश्चात्य संगीत की ओर मध्यमवर्ग के झुकाव के कारण भारतीय शास्त्रीय संगीत उपेक्षित हुआ है। परंतु इसकी प्रतिक्रिया में शास्त्रीय संगीत की पुनर्स्थापना भी हो रही है।
4. संचार साधनों के प्रभाव से भारत में एक 'पॉप संस्कृति' का उद्‌भव हो रहा है जिसने भारतीय मानसिकता का शोषण किया है साथ ही भारतीय संस्कृति के मिश्रण ने एक नई विधा को भी उत्पन्न किया है जिसे जनमानस उपयोगी मानता है।
5. जनसंचार के साधनों द्वारा प्रदर्शित व प्रसारित सांस्कृतिक भूमंडलीकरण की विशेषताओं ने स्थानीय व लघु सांस्कृतिक पहचानों के लिए संकट खड़ा किया है। बाजार के महत्त्व में वृद्धि ने सांस्कृतिक प्रतीकों को पदार्थों में रुपांतरित कर दिया है फलस्वरूप एक तरफ जहाँ समाज में आर्थिक संवृद्धि आ रही है वहीं दूसरी तरफ सांस्कृतिक वस्तुएँ अर्थहीन हो रही हैं।
6. जनसंचार के साधन सजातीयता की अपेक्षा रखते हैं और संस्कृति का मूलतत्त्व विलक्षणता है। भारत में सांस्कृतिक बहुलवाद को विविधता कायम रखती है न कि सजातीयता। भूमंडलीकरण ने इस सांस्कृतिक विशिष्टताओं के मिश्रण का प्रयास किया है और बहुलता को नकारा है फलतः जहाँ सांस्कृतिक एकीकरण को

बढ़ावा मिला है वहीं राष्ट्रों की सांस्कृतिक स्वायत्तता सकते में आ गयी है।

स्पष्ट है कि जनसंचार माध्यमों का भारतीय संस्कृति पर प्रभाव सकारात्मक कम और नकारात्मक ज्यादा है। सिनेमा और विभिन्न चैनलों ने आधुनिकता के सकारात्मक मूल्यों को कम और पश्चिमी संस्कृति के मूल्यों को अधिक प्रसारित किया है जिसे आज भारतीय संस्कृति के समक्ष सांस्कृतिक क्षरण की स्पष्ट समस्या के रूप में देखा जा सकता है।

भारतीय समाज की संरचना पर प्रभाव

भारतीय समाज एक परंपरागत समाज रहा है जहाँ धर्म की प्रधानता एवं जाति आधारित बंद स्तरीकरण की व्यवस्था रही है। इस समाज में परिवर्तन की गति अत्यंत मंद रही है परंतु संचार साधनों के विकास ने भारतीय सामाजिक संरचना में अनेक परिवर्तनों को उत्पन्न किया है जिन्हें निम्न बिन्दुओं के अंतर्गत देखा जा सकता है-

1. जनसंचार माध्यमों से प्रसारित आधुनिकीकरण के मूल्यों ने जाति व्यवस्था पर प्रहार किया है, फलतः जातिगत ऊँच-नीच की भावना या अस्पृश्यता जैसे तत्त्वों का ह्रास हुआ है, इनसे संबंधित सोपान के तत्त्व कमजोर हुए हैं और जजमानी व्यवस्था का विघटन संभव हुआ है। परंतु, दूसरी ओर आरक्षण के क्रियान्वयन व पहचान के संकट ने लोगों में जातीय पहचान की आस्था को पुनर्जीवित किया है दलितों में चेतना का आविर्भाव हुआ है और वे इस आधार पर संगठित हुए हैं तथा उनकी क्षैतिजीय भागीदारी में वृद्धि हुई है और इसमें संचार की भूमिका महत्त्वपूर्ण रही है।
2. आज जनसंचार साधनों द्वारा प्रसारित कार्यक्रमों में प्रेम विवाह को तरजीह दी जा रही है जो युवाओं में तेजी से प्रचलित हुआ है। हालाँकि इससे दहेज जैसी कुरीतियाँ, विवाह में धार्मिक एवं जातिगत प्रतिबंध ढीले पड़े हैं और स्त्रियों को समानता का दर्जा मिला है, परंतु दूसरी तरफ समाज की पकड़ युवाओं पर ढीली हुई है और अतिस्वच्छंदतावादी मूल्यों को बढ़ावा मिला है।
3. आज पाश्चात्य संस्कृति के रीति-रिवाजों का प्रचलन हमारी विवाह संस्था को चुनौती दे रहे हैं। समलैंगिकता का प्रसार भी विवाह पर कुठाराघात है जिसने भारतीय युवा मानसिकता को न केवल इस ओर उन्मुख किया है बल्कि कोलकाता के एक स्वयंसेवी संगठन ने तो इसको मान्यता देने की माँग भी शुरू कर दी है।
4. सम्पत्ति के लिए संबंधों को हाशिए पर रखना, विवाहेत्तर प्रेमसंबंध, संयुक्त परिवार के समझौता व सहिष्णुता के पक्षों का ह्रास, सास-बहू आदि संबंधों में परंपरागत तत्त्वों का ह्रास आदि वर्तमान जनसंचार साधनों का मुख्य विषय रहा है। इन मुद्दों से संबंधित कार्यक्रम जहाँ स्त्री-पुरुष स्वतंत्रता की प्रवृत्ति तथा सदस्यों के मध्य समानता युक्त संबंधों को प्रचलित कर रहे हैं वहीं परंपरागत संस्थाओं को कमजोर कर तथा तलाक की प्रवृत्ति को बढ़ाकर सामाजिक अव्यवस्था को भी उत्पन्न कर रहे हैं।
5. जनसंचार ने एक तरफ जहाँ स्वतंत्रता व समानता के मूल्यों को प्रसारित करके महिलाओं की प्रस्थिति को ऊँचा उठाया है वहीं दूसरी तरफ उन्हें उपभोग की वस्तु के रूप में प्रस्तुत कर स्त्रियों के प्रति परंपरागत आदरभाव को समाप्त किया है। साथ ही, अश्लील कार्यक्रमों को प्रस्तुत करके समाज के युवाओं पर नकारात्मक प्रभाव छोड़ा है जिसकी परिणति बढ़ती यौन विकृति, छेड़छाड़, बलात्कार आदि घटनाओं के रूप में हुई है।

इसके द्वारा जहाँ ग्रामीण समाज में धर्मनिरपेक्षता के मूल्यों को विस्तारित करके ग्रामीण जीवन के सभी पक्षों से धर्म के प्रभावों को कमजोर किया गया है वहीं आस्था, जागरण आदि धार्मिक चैनलों द्वारा धार्मिक तत्त्वों की व्याख्या कर धर्म के प्रति आस्था को पुर्नजागरित किया जा रहा है। धर्म के प्रति उपयोगितावादी दृष्टिकोण, धर्म का बाजारीकरण, धार्मिक रूढ़िवाद भी इसके प्रभावों में प्रमुख हैं।

आज जनसंचार के साधन विज्ञान व प्रौद्योगिकीय शिक्षा के प्रसार का एक महत्त्वपूर्ण साधन हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में सामाजिक जीवन के विभिन्न मुद्दों पर जागरुकता को बढ़ाकर और गाँव के लोगों को समकालीन समाज के सभी मुद्दों से परिचित कराकर ग्रामीण विकास में इसने महत्त्वपूर्ण योगदान किया है। आज रामदेव जी द्वारा धर्म के तत्त्व योग को फैलाकर मानसिक व शारीरिक क्रांति को उत्पन्न किया जा रहा है जिसमें जनसंचार की भूमिका काफी महत्त्वपूर्ण है। यू.जी.सी.के सभी शैक्षिक पाठ्यक्रमों के संदर्भ में तथा दूरस्थ-शिक्षा के क्षेत्र में भी इसका महत्त्व उल्लेखनीय है।

निष्कर्ष है कि जनसंचार के साधनों की भूमिका आधुनिकीकरण की दिशा में उन्मुख किसी भी समाज के लिए महत्त्वपूर्ण है परंतु इसके द्वारा अपेक्षित परिवर्तन के लक्ष्यों की प्राप्ति जनसंचार माध्यमों पर संतुलित नियंत्रण व इसके सकारात्मक प्रयोग द्वारा ही संभव है।

जनसंचार साधन-जनित परिवर्तन की चुनौतियाँ

भारतीय समाज एवं संस्कृति में परिवर्तन हेतु जनसंचार एक प्रमुख साधन रहा है जिसके द्वारा हमारे देश में एक पराई संस्कृति का प्रसार हुआ है जिसे तृतीय विश्व पर सांस्कृतिक हमले की संज्ञा दी जाती है। इन साधनों से संस्कृति का प्रसार इस तरह होता है कि लोग अपने सामुदायिक व सामाजिक हितों को अपनी निगाहों में उचित नहीं समझते और यह बौद्धिक व सांस्कृतिक प्रचार हमारे राष्ट्रीय संस्कृति को कई आधारों पर चुनौती दे रहा है।

छद्म आधुनिकीकरण इसकी प्रथम चुनौती है। हमने आधुनिकता के आधार पर तार्किकता, परानुभूति, सामाजिक गतिशीलता और सक्रिय सहभागिता को पूरी तरह नहीं अपनाया है बल्कि हम उसके उपभोगवादी लक्षणों में ही उलझकर रह गए हैं। इससे व्यक्ति केन्द्रीयता बढ़ी है और सामाजिक सरोकारों का ह्रास हुआ है। व्यक्तिगत धरातल पर लोकतंत्रीकरण की प्रक्रिया ने सामाजिक प्रस्थिति व भूमिकाओं को डगमगा दिया है।

दूसरी चुनौती धर्म के उपयोग की है जहाँ धर्म को अल्पकालिक राजनीतिक लाभ का साधन बनाकर विवेकहीन धर्मांतरण को प्रश्रय दिया जा रहा है। धर्म पर आधारित सिद्धांत विस्मृत हो रहे हैं और तांत्रिक व चमत्कारिक बाबा फल-फूल रहे हैं क्योंकि वे अच्छे दामों पर स्वार्थ सेवा में लगे हैं। हमारी संस्कृति अनुकरणकारी, भोगवादी एवं लिप्सावादी संस्कृति बन गई है।

तीसरी चुनौती अविवेकी और निकट दृष्टि की राजनीति की है जहाँ सामूहिकता का क्षय तथा व्यक्तिगत स्वार्थ की प्रबलता राजनीति को एक साधन या व्यवसाय के रूप में प्रयुक्त करने को उन्मुख करती है।

चौथी चुनौती स्थानीय या लघु सांस्कृतिक पहचानों के संकट की है। बाजार के महत्त्व में वृद्धि ने सांस्कृतिक प्रतीकों को पदार्थों में रूपांतरित किया है। सांस्कृतिक तत्त्वों के बाजारीकरण से लोगों में जहाँ आर्थिक समृद्धि आई है तो वहीं दूसरी तरफ इनकी परंपरागत महत्ता में कमी भी आई है। महत्त्वाकांक्षा में वृद्धि कर इसने भले ही सामाजिक गतिशीलता को संभव बनाया हो परंतु साथ ही गैर-संस्थागत साधनों द्वारा लोगों को अपनी महत्त्वाकांक्षा को पूरा करने को भी प्रेरित किया है। जनसंचार के साधनों ने नवीन कौशल व तकनीक का प्रयोग कर समाज के आर्थिक विकास की गति को तीव्र किया है। परंतु इस आर्थिक विकास के व्यूह जाल में व्यक्ति धन प्राप्ति की लिप्सा में इतना उलझ गया है कि उसमें सकारात्मक सांस्कृतिक तत्त्वों के प्रति अरूचि उत्पन्न हो गई है। विज्ञापनों की भरमार ने अति-यथार्थता को प्रस्तुत कर वास्तविकता के प्रति समाज में भ्रम उत्पन्न किया है। इसने तुच्छ इच्छाओं की संतुष्टि को सामाजिक जीवन के केन्द्रीय मूल्य के रूप में प्रस्तुत कर जनमानस को गंभीर मुद्दों से विमुख किया है।

जनसंचारजनित सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तनों के संदर्भ में उपरोक्त तथ्य स्पष्ट करते हैं कि इसने सम्प्रति भारतीय समाज के समक्ष कई चुनौतियों को प्रस्तुत किया है। वैसे तो परिवर्तन की प्रक्रिया में परिवर्तन की चुनौती या अन्तर्विरोध प्रायः अन्तर्निहित होते हैं परंतु भारतीय संदर्भ में ये चुनौतियाँ राष्ट्रीयता की भी हैं और वैश्वीकरण की प्रक्रिया का अंग भी। इस रूप में आज संचार साधन आधुनिकीकरण के साथ वैश्वीकरण की प्रक्रिया के रूप में क्रियाशील हैं और इसने जहाँ कुछ अन्तर्विरोधों के बावजूद आधुनिकीकरण के मूल्यों को प्रसारित कर आधुनिक समाज की रचना की ओर हमें अग्रसर किया है वहीं एक वैश्विक उपसंस्कृति का निर्माण करके प्रतीकात्मक आंतरीकरण से नई आत्मचेतना एवं समानता के आधारों को मजबूत भी किया है। निश्चित ही संचार साधनों के इस प्रभाव ने भारतीय समाज व संस्कृति पर कुछ नकारात्मक प्रभावों को उत्पन्न किया है पर साथ-साथ इसने भारत तथा पाश्चात्य संस्कृति के बीच गहरे संपर्क को स्थापित करके विश्व संस्कृति या विश्व गाँव की अवधारणा को साकार बनाने का सार्थक प्रयास भी किया है। हालाँकि संभावना है कि आधुनिक समाज की रचना के साथ इससे किसी सांस्कृतिक पुनर्जागरण का जन्म होगा पर संभावना यह भी है कि इससे सांस्कृतिक विनाश का खतरा भी उत्पन्न हो जाएगा।

कक्षा कार्यक्रम

- सोशल नेटवर्किंग साइट्स का भारतीय समाज पर प्रभाव - कक्षा कार्यक्रम
- भारतीय समाज की आधारभूत विशेषताएँ : महत्वपूर्ण तथ्य एवं आँकड़े- कक्षा कार्यक्रम
- क्रिप्टोकरेंसी का भारतीय समाज पर प्रभाव - कक्षा कार्यक्रम
- कृत्रिम बुद्धिमता तकनीक का भारतीय समाज पर प्रभाव - कक्षा कार्यक्रम
- कोविड-19 महामारी का भारतीय समाज पर प्रभाव - कक्षा कार्यक्रम

संभावित प्रश्न

1. समकालीन भारतीय समाज के प्रमुख लक्षणों की चर्चा करें?
2. परंपरागत भारतीय समाज की उन विशेषताओं का उल्लेख करें, जिसने तमाम बाधाओं के बावजूद भारतीय समाज को निरंतरता प्रदान की है।
3. परंपरागत भारतीय समाज के आधारभूत लक्षणों की चर्चा करें तथा उनकी समकालीन प्रासंगिकता का विवेचन करें।
4. भारतीय समाज में निरंतरता एंव परिवर्तन के कारकों को स्पष्ट करें।
5. "भारतीय समाज में परंपरा एंव आधुनिकता का सह- अस्तित्व है", स्पष्ट करें।
6. भारतीय समाज पर जनसंचार साधनों के परस्पर विरोधी प्रभावों की समीक्षा करें।
7. आधुनिकीकरण से आप क्या समझते हैं। भारतीय समाज में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को स्पष्ट करें?
8. "समकालीन भारतीय समाज की आधुनिकता छद्म आधुनिकता है।" स्पष्ट कीजिए।
9. "भारतीय समाज में आधुनिकता परंपरा को विस्थापित करके नहीं आया है, बल्कि परंपरा की निरंतरता आज भी बनी हुई है।" इस कथन की समीक्षा कीजिए।
10. भारतीय समाज में आधुनिकीकरण की समकालीन चुनौतियों को दर्शाइए और आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को तीव्र करने हेतु अपने सुझाव प्रस्तुत कीजिए।

✪✪✪✪✪

3

भारत में जाति व्यवस्था (Caste System in India)

जाति व्यवस्था : अर्थ एवं लक्षण (Caste System : Meaning and Characteristics)

जाति व्यवस्था भारतीय समाज की प्रमुख विशेषता है, जो भारतीय समाज में सामाजिक स्तरीकरण (Social Stratification) के एक प्रमुख स्वरूप को परिलक्षित करती है। जाति व्यवस्था के अंतर्गत भारतीय समाज कुछ जातीय समूहों (Ethnic Group) में वर्गीकृत है और ये समूह सोपानिक (Hierarchical) रूप से एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। इसके अंतर्गत एक जाति समूह एक अंतर्विवाही समूह (Endogamous Group) होता है जिसकी सदस्यता जन्मजात होती है, उसका एक निश्चित व्यवसाय होता है और जो कुछ विशेषाधिकारों और निर्योग्यताओं के साथ खान-पान और सामाजिक सहवास संबंधी निषेधों का पालन करता है।

उपरोक्त विश्लेषणों के आधार पर जाति व्यवस्था के निम्न लक्षणों की चर्चा की जा सकती है:–

1. जाति व्यवस्था सम्पूर्ण समाज को कुछ खण्डों अथवा टुकड़ों में विभाजित करती है और प्रत्येक खण्ड के सदस्यों की स्थिति, भूमिका तथा प्रतिष्ठा जन्म से निश्चित होती है।
2. जाति के विभिन्न खण्डों में ऊंच-नीच का एक निश्चित सोपान होता है। जिसका निर्धारण जन्म के आधार पर होता है।
3. प्रत्येक जाति का एक निश्चित व्यवसाय होता है और उस जाति के सभी सदस्य अपने व्यवसाय को ईश्वर प्रदत्त मानकर उसके द्वारा जीविका उपार्जित करना अपना धर्म समझते हैं।
4. प्रत्येक जाति अपने सदस्यों के खान-पान और सामाजिक सहवास (Social Cohabitation) पर कुछ प्रतिबन्ध लगाती है।
5. प्रत्येक जाति में आवश्यक रूप से अन्तर्विवाह के नियम का पालन किया जाता है, अर्थात् कोई भी सदस्य अपनी जाति के बाहर विवाह सम्बंधों की स्थापना नहीं कर सकता।
6. जाति-व्यवस्था में विभिन्न जातियों की सैद्धान्तिक उच्चता व निम्नता के अनुसार कुछ जातियों को विशेष अधिकार प्रदान किए गये, जबकि कुछ जातियों को सामाजिक, धार्मिक व व्यावसायिक अधिकारों से वंचित कर दिया गया।

इस प्रकार हिन्दू जाति व्यवस्था ब्राह्मणों की सर्वोच्च स्थिति पर आधारित है और इस व्यवस्था पर प्रश्न करना अधर्म समझा जाता रहा है। जाति-व्यवस्था के अन्तर्गत व्यक्ति आर्थिक रूप से चाहे कितना भी आगे क्यों न बढ़ जाए लेकिन उसकी सामाजिक स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं होता। इसी आधार पर हिन्दू जाति-व्यवस्था को एक बन्द व्यवस्था के रूप में देखा जाता रहा है।

जाति-व्यवस्था के गुण एवं दोष (Advantages and disadvantages of Caste System)

जाति-व्यवस्था के गुण (Advantages of Caste System)

भारतीय सामाजिक व्यवस्था के एक अनिवार्य अंग के रूप में जाति व्यवस्था में निम्नांकित गुण पाए जाते हैं-

1. जाति व्यवस्था प्रत्येक व्यक्ति को स्थिर सामाजिक पर्यावरण प्रदान करती है। इसी आधार पर कहा जाता है कि "जाति व्यवस्था सामाजिक सुरक्षा का वह आधार है जहां व्यक्ति को रोजगार, आवास और विवाह से सम्बन्धित सुरक्षा प्राप्त होती है, जो व्यक्ति के परिवर्तनशील स्वभाव के कारण सम्भव नहीं हो पाती।"
2. जाति-व्यवस्था एक ही जाति के सदस्यों में सद्भावना एवं सहयोग की भावना विकसित करती है। निर्धन एवं जरूरत मंदों की सहायता करती है। साथ ही जजमानी प्रथा (Jajmani System) द्वारा सभी जातीय समूहों की परस्पर निर्भरता में वृद्धि करती है।
3. यह व्यक्ति के आर्थिक व्यवसाय का निर्धारण करती है। प्रत्येक जाति का एक विशिष्ट व्यवसाय होता है जिससे बच्चों के प्रशिक्षण के अवसर के साथ ही उनका भविष्य भी निश्चित हो जाता है।
4. अन्तर्जातीय विवाहों पर प्रतिबन्ध लगाकर इसने उच्च जातियों की प्रजातीय शुद्धता (Species Purity) को सुरक्षित बनाए रखा है। इसने सांस्कृतिक शुद्धता (Cultural Purity) पर बल देकर स्वच्छता की आदतों का विकास किया है।
5. चूँकि जाति व्यवस्था व्यक्ति को भोजन, संस्कार और विवाह सम्बन्धी जातिगत नियमों के पालन का आदेश देती है, अतः राजनीतिक एवं सामाजिक विषयों पर उसके विचार व बौद्धिक क्षमता उसकी जातीय प्रथाओं द्वारा प्रभावित हो जाते हैं।
6. वर्ग-संघर्ष की वृद्धि किए बिना यह वर्ग चेतना का विकास करती है। विभिन्न सांस्कृतिक स्तरों के लोगों को एक ही समाज में संगठित करने का यह सर्वोत्तम प्रयास था जिसने देश को संघर्षरत प्रजातीय समूहों (Ethnic Groups) में विभक्त होने से बचाया है।

7. यह सामाजिक जीवन के लिए आवश्यक विभिन्न कार्यों-शिक्षा, शासन, घरेलू सेवा आदि का प्रबन्ध, धार्मिक विश्वास, 'कर्म सिद्धान्त में विश्वास', की संपुष्टि करता है, जिससे कार्यों के विषम विभाजन को भी संसार का दैवीय विधान समझकर स्वीकार कर लिया जाता है।
8. जाति व्यवस्था में जातीय प्रथाएँ, विश्वास, कौशल, व्यवहार एवं व्यापारिक रहस्यों को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित करती हैं। इस प्रकार संस्कृति की निरंतरता बनी रहती है।
9. इसने सामाजिक जीवन को राजनीतिक जीवन से पृथक् रखकर अपनी स्वतंत्रता को राजनीतिक प्रभावों से मुक्त रखा है।

जाति-व्यवस्था के दोष
(Disadvantages of Caste System)

एक ओर जहाँ हमारी जाति व्यवस्था में कई गुण पाये जाते हैं वहीं यह कई दोषों से भी युक्त है, जो निम्नवत् हैं-

1. चूँकि व्यक्ति को अपने जातीय व्यवसाय को ही करना पड़ता है, जिसे वह अपनी इच्छा अथवा अनिच्छा के अनुसार बदल नहीं सकता, अतएव इसने श्रम की गतिशीलता को रोका है।
2. इसने अस्पृश्यता (Untouchability) को जन्म दिया है। इसके अतिरिक्त इसने अन्य दोषों, यथा-बाल विवाह, दहेज प्रथा, पर्दा प्रणाली और जातिवाद को भी जन्म दिया है।
3. इसने एक जाति को दूसरी जाति से पृथक करके तथा उनके बीच किसी भी सामाजिक अन्तर्क्रिया (Social Interaction) को प्रतिबन्धित करके हिन्दू समाज में सद्भावना एवं एकता के विकास को रोका है।
4. जाति व्यवस्था में अनुवांशिक व्यवसाय (Hereditary Occupation) के कारण व्यक्ति अपनी योग्यता व रुचि के अनुसार कोई अन्य व्यवसाय नहीं अपना सकता। यह लोगों की क्षमताओं का पूर्ण उपयोग नहीं करती, जिससे यह अधिकतम उत्पादन में बाधक सिद्ध होती है।
5. जाति-व्यवस्था देश में राष्ट्रीय एकता के विकास में बाधक सिद्ध हुई है। जाति-भक्ति की भावना ने दूसरी जातियों के प्रति घृणा उत्पन्न की जो राष्ट्रीय चेतना के विकास के लिए अनुकूल नहीं है।
6. यह राष्ट्र की सामाजिक एवं आर्थिक प्रगति में बड़ी बाधक रही है। कर्म के सिद्धान्त में विश्वास करने के कारण लोग परम्परावादी हो जाते हैं। चूँकि उनकी आर्थिक स्थिति निश्चित होती है, इससे उनमें गतिशीलता के प्रति उदासीनता देखी जाती है।
7. जाति-व्यवस्था अप्रजातंत्रीय (Undemocratic) है क्योंकि इसने सबको जाति, रंग अथवा विश्वास के भेदभाव के आधार पर समानता के अधिकार से वंचित कर दिया है।
8. जाति-व्यवस्था ने जातिवाद को जन्म दिया है। इसमें किसी जाति के सदस्यों में जातिगत भावनाएँ होती हैं और वह न्याय, समता, भ्रातृत्व जैसे स्वस्थ सामाजिक मानको को भूलकर अपनी जाति के प्रति अंधभक्ति प्रदर्शित करते हैं। राजनीतिज्ञ जातिवाद (Politician Casteism) की भावना का, राष्ट्रीय हितों को दांव पर लगाते हुए अपने लाभ-हेतु पक्षपोषण करते हैं।

जाति व्यवस्था में परिवर्तन एवं इसके कारक
(Change in Caste System and its Causes)

वर्तमान सामाजिक व्यवस्था में जाति प्रथा से सम्बन्धित जो परिवर्तन स्पष्ट हो रहे हैं उन्हें प्रमुख रूप से तीन भागों मे विभाजित किया जा सकता है: (क) जाति की संरचना में परिवर्तन, (ख) जातिगत निषेधों में परिवर्तन तथा (ग) जातिगत मनोवृत्तियों में परिवर्तन।

जाति की संरचना में परिवर्तन
(Change in Caste Structure)

परम्परागत भारतीय समाज में जाति व्यवस्था की सम्पूर्ण संरचना इस प्रकार थी जिसमें ब्राह्मणों की स्थिति सर्वोच्च थी। सामाजिक व्यवस्था की रूपरेखा वर्तमान समय में राज्य के द्वारा बनाये गये कानूनों द्वारा निर्धारित होती है। आधुनिक मूल्यों के विकास के साथ ही धार्मिक विश्वास स्वयं ही लौकिक जीवन (Worldly Life) से दूर हट रहे हैं। व्यक्तियों को संविधान द्वारा समानता का अवसर प्रदान किया गया है। अत: व्यक्ति की प्रस्थिति (Status) का निर्धारण आज जातिगत नियमों से न होकर उसकी योग्यता और कुशलता के द्वारा हो रहा है।

स्तरीकरण की व्यवस्था के रूप में जाति के अन्तर्गत सभी जातियों की स्थिति पूर्णतया निश्चित थी, जिसमें किसी प्रकार का भी परिवर्तन सम्भव नहीं था। वर्तमान समय में इस संस्तरण (Stratification) में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए हैं। आज प्रत्येक उप-जाति अपनी सामाजिक स्थिति को ऊंचा उठाने के लिए प्रयत्नशील है। आज एक जाति दूसरी जाति को अपने से उच्च मानकर उसका आधिपत्य मानने को तैयार नहीं है। व्यक्ति की सामाजिक प्रस्थिति (Social Status) भी आज जाति की सदस्यता से निर्धारित न होकर उसकी योग्यता, कार्यक्षमता, नेतृत्व अथवा आर्थिक सफलता से निश्चित होती है।

जाति-व्यवस्था की संरचना में जिन व्यक्तियों को अस्पृश्य, दलित अथवा अंत्य मानकर समस्त अधिकारों से वंचित कर दिया गया था, उनकी स्थिति में आज सबसे अधिक परिवर्तन हुआ है। महात्मा गांधी और अम्बेडकर के प्रयत्नों से इन व्यक्तियों को समान अधिकार ही नहीं दिये गए हैं बल्कि सभी सरकारी नौकरियों व राजनैतिक संस्थाओं में उनके लिए स्थान भी आरक्षित कर दिये गये हैं जिससे उनकी सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक स्थिति में सुधार हो सके। दलित जातियों को मन्दिरों में प्रवेश का अधिकार मिल जाने से जाति-व्यवस्था का वह धार्मिक आधार भी समाप्त हो गया

जिसके द्वारा सवर्णों और अस्पृश्यों के बीच विभेद को धार्मिक वैधता प्राप्त होती थी।

जातिगत निषेधों में परिवर्तन
(Change in Caste Taboos)

जाति व्यवस्था को स्थिरता प्रदान करने में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तत्व अनुलोम (Hypergamy) और अन्तर्विवाह (Endogamy) की वह व्यवस्था थी, जिससे एक जाति अपनी स्थिति बनाए रखती थी। समकालीन भारत में अन्तर्जातीय विवाहों की संख्या में निरन्तर वृद्धि हो रही है। विधवा विवाह को अधिक से अधिक प्रोत्साहन दिया जा रहा है। बाल विवाह को कानून के द्वारा दण्डनीय अपराध बना दिया गया है जिनके कारण बाल विवाह के स्थान पर विलम्ब विवाह की प्रवृत्ति तेजी से बढ़ रही है। गोत्र (Clan), प्रवर और सपिण्ड जैसी धारणाओं में व्यक्तियों का विश्वास कम होता जा रहा है। कानूनों द्वारा भी ऐसे विवाहों को मान्यता दे दी गई है।

जाति व्यवस्था के अंतर्गत प्रत्येक जाति का व्यवसाय निश्चित होता था। जो आनुवांशिक होता था। वर्तमान समय में जाति का यह आधार लगभग समाप्त हो चुका है। नगरों में लगभग सभी व्यावसायिक क्षेत्रों में सभी जातियों के व्यक्ति लगे होते हैं। इस प्रकार आज व्यावसायिक जीवन की गतिशीलता ने सभी जातियों को समान आर्थिक अवसर प्रदान किये हैं।

पारम्परिक जाति व्यवस्था में प्रत्येक जाति अपने से निम्न जाति के सदस्यों द्वारा स्पर्श किये गये भोजन पर प्रतिबन्ध लगाती थी लेकिन वर्तमान समय में जाति का यह आधार लगभग समाप्त ही हो गया है। औद्योगिक नगरों में सैकड़ों व्यक्ति एक साथ कारखानों में काम करते हैं और अवकाश के समय में साथ-साथ बैठकर भोजन करते हैं। होटल, जलपान-गृहों, चाय-पार्टियों तथा उत्सवों में सभी जातियों के व्यक्ति उस भोजन को ग्रहण करते हैं जो अज्ञात व्यक्तियों द्वारा बनाया गया हो, जिनका स्पर्श करना भी जाति-व्यवस्था द्वारा वर्जित था।

जाति व्यवस्था के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति का यह कर्त्तव्य था कि वह अपनी जाति के सदस्यों से ही अधिकतम सम्पर्क बढ़ाए, उच्च जातियों की श्रेष्ठता में विश्वास रखे और निम्न जातियों से दूरी बनाए रखे। आज जाति प्रथा का यह आधार पूर्णतया कमजोर पड़ गया है। आज बहुत सी उच्च जातियां अपने स्वार्थों को पूरा करने के लिए उन सभी व्यक्तियों से सम्पर्क स्थापित करती हैं जिनकी छाया भी किसी समय अपवित्रता का कारण बन जाती थी।

जातिगत मनोवृत्तियों में परिवर्तन
(Change in Caste Attitudes)

आधुनिक समाज का शिक्षित विवेकशील व्यक्ति जन्म के आधार पर व्यक्ति की सामाजिक प्रस्थिति के निर्धारण को रूढ़िगत (Traditional) मानता है। शिक्षा के प्रसार के कारण व्यक्तियों की मनोवृत्ति (Attitude) में तेजी से परिवर्तन हो रहा है और आज किसी भी ऐसे व्यक्ति का सम्मान किया जाता है जो शिक्षित, कुशल और सम्पन्न हो, फिर चाहे उसका जन्म किसी भी जाति में क्यों न हुआ हो।

जाति व्यवस्था आज भी हमारे सामाजिक जीवन को प्रभावित कर रही है। लेकिन जाति के इस प्रभाव को केवल राजनीतिक और आर्थिक हितों की पूर्ति के लिए ही प्रयुक्त किया जा रहा है। आज कोई भी शिक्षित व्यक्ति यह स्वीकार नहीं करता है कि इस व्यवस्था का सम्बन्ध किसी अलौकिक अथवा ईश्वरीय शक्ति से है। इसे एक सामाजिक कुरीति अथवा रूढ़ि के रूप में ही देखा जाता है।

जाति प्रथा को स्थायी बनाए रखने में जाति-पंचायतों तथा जाति-सभाओं का महत्त्वपूर्ण योगदान था। यह जाति-बहिष्कार, जाति-भोज और तरह-तरह की प्रायश्चितता का भय दिखाकर व्यक्तियों को जाति के नियमों का पालन करने के लिए बाध्य करते रहते थे। आज जातिगत-पंचायतों के पास कोई व्यावहारिक अधिकार नहीं है और अब यह एक निष्क्रिय संस्था मात्र रह गई है, जिसके कारण जाति-प्रथा को सशक्त करने वाला स्थानीय आधार लगभग समाप्त हो गया है।

जाति व्यवस्था में परिवर्तन के कारक
(Factors of Change in Caste System)

जाति व्यवस्था में होने वाले उपर्युक्त परिवर्तन कई कारकों के संयुक्त परिणाम हैं जिसका वर्णन निम्नांकित रूप से किया जा सकता है–

1. ब्रिटिश शासन की स्थापना के बाद से ही व्यक्ति ईसाई धर्म की एकता और समानता से प्रभावित होने लगे थे। यही भावना थी जिसके फलस्वरूप भारत में सुधार आन्दोलन का सूत्रपात हुआ जिसने जाति प्रथा का विरोध किया।
2. भारत में औद्योगीकरण के फलस्वरूप व्यक्ति की स्थिति आर्थिक आधार पर निर्धारित होने लगी। इसके परिणामस्वरूप व्यक्ति की सामाजिक और धार्मिक स्थिति उसकी जाति और वंश से प्रभावित न होकर उसकी आर्थिक सफलता से प्रभावित होने लगी। परिवहन और संचार के साधनों में तीव्र विकास से सभी जातियों के व्यक्तियों को एक दूसरे के निकट सम्पर्क में आने को अवसर मिला जिससे जातीय बन्धन शिथिल पड़ने लगे।
3. भारत में आधुनिक शिक्षा के विस्तार के साथ ही एक बड़े वर्ग ने जाति व्यवस्था जैसी सभी व्यवस्थाओं का विरोध करना आरम्भ कर दिया। शिक्षा से तर्क का महत्त्व बढ़ा और जाति के धार्मिक आधारों को तार्किक दृष्टिकोण से देखा जाने लगा और इन मान्यताओं पर प्रश्न खड़ा किया जाने लगा।
4. स्वतंत्रता आन्दोलन के समय महात्मा गांधी, तिलक, लाला लाजपत राय और बहुत से क्रान्तिकारियों के नेतृत्व में सभी धर्मों, सम्प्रदायों, जातियों और वर्णों के व्यक्तियों ने कन्धे से कन्धा मिलाकर राष्ट्रीयता की भावना का प्रसार किया जिसके परिणामस्वरूप जातिगत दूरी कम हुई।

5. भारत में प्रजातान्त्रिक शासन व्यवस्था स्थापित होने के बाद जाति-व्यवस्था की संरचना अपने आप ही विघटित होने लगी क्योंकि प्रजातंत्र का मूलदर्शन समानता, सामाजिक न्याय और धर्मनिरपेक्षता पर आधारित है, जबकि जाति-व्यवस्था जन्म से ही व्यक्ति को भेदभाव, निम्न जातियों के शोषण और धार्मिक कट्टरता की सीख देती है।
6. भारत में जाति-व्यवस्था इसलिए एक प्रभावपूर्ण संस्था बनी हुई थी क्योंकि इसकी उत्पत्ति और नियमों को धर्म और अलौकिक विश्वासों के साथ जोड़ दिया गया था। सम्प्रति (At present) जाति सम्बन्धी धार्मिक विश्वासों में कमी आयी है।
7. परम्परागत रूप से जाति पंचायतों ने जातिगत नियमों को स्थिर बनाने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया था जो जाति प्रथा के नियमों का उल्लघंन करने पर व्यक्ति को जाति से बहिष्कार करके, आर्थिक जुर्माने से तथा कभी-कभी शारीरिक क्षति पहुँचाकर दण्डित करती थी। वर्तमान समय में जाति पंचायतों का दण्ड देने का अधिकार पूर्णतया समाप्त हो चुका है।
8. जाति को स्थायी बनाने में संयुक्त परिवारों का योगदान सदैव महत्त्वपूर्ण रहा है। संयुक्त परिवार बच्चे को आरम्भ से ही परम्परागत जीवन व्यतीत करने, कर्मकाण्डों और रूढ़ियों में विश्वास करने तथा जातिगत भेदभाव को सिखाने का केन्द्र-स्थल रहे हैं। औद्योगीकरण तथा व्यवसायों की विविधता के कारण संयुक्त परिवारों के विघटन ने जाति व्यवस्था को कमजोर किया।
9. आधुनिक शिक्षा के प्रसार और सुधार आन्दोलनों के कारण स्त्रियों की स्थिति में तेजी से सुधार हो रहा है, वे स्वयं उन जातिगत नियमों का विरोध करने लगी हैं जिनके कारण उनका जीवन पशु-तुल्य हो गया था।
10. स्वतंत्रता के पश्चात् भारत में जितने भी सामाजिक अधिनियम बने, उनमें से अधिकतर विधान जाति प्रथा की सैद्धान्तिक मान्यताओं के विरुद्ध हैं। 1954 के विशेष विवाह अधिनियम ने अन्तर्विवाह प्रतिबन्धों पर प्रभाव डाला। अस्पृश्यता अपराध अधिनियम, 1955 के द्वारा अस्पृश्यता अथवा इससे सम्बन्धित सभी प्रकार के आचरण को अपराध घोषित कर दिया गया। सन् 1956 में हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम के द्वारा मिताक्षरा और दायभाग के भेद को समाप्त करके स्त्रियों को पुरुषों के समान ही साम्पत्तिक अधिकार दिए गए। इन सभी अधिनियमों के कारण एक ऐसे समतामूलक पर्यावरण का निर्माण हुआ जिसमें जाति प्रथा के स्थायित्व पर कठोर आघात हुआ क्योंकि जाति व्यवस्था अपनी प्रकृति में असमानताओं पर आधारित थी।

मूल्यांकन (Evaluation)

जाति व्यवस्था में निश्चित तौर पर अनेक परिवर्तन परिलक्षित हुए हैं, परन्तु इन तमाम परिवर्तनों के बावजूद जाति की वंशानुगत सदस्यता (Hereditary Membership), संस्तरण तथा इसके अंतर्विवाह संबंधी पक्ष में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ है। दूसरी ओर, आधुनिकीकरण के प्रभाव ने निम्न जातियों को प्रस्थिति सुधार हेतु अभिप्रेरित किया है। फलतः ये जातियां, जाति को आधार के रूप में इस्तेमाल करते हुए ऊर्ध्वमुखी सामाजिक गतिशीलता (Upward Social Mobility) हेतु उन्मुख हैं।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि भारतीय जाति व्यवस्था आधुनिक परिवर्तनों के साथ अभी भी अपनी निरंतरता बनाए हुए है अर्थात् आधुनिक भारत में जाति व्यवस्था एक साथ मजबूत एवं कमजोर दोनों हुई है।

जाति व्यवस्था की निरन्तरता एवं इसके कारक (Continuity of Caste System and its Causes)

यह देखा जाता है कि पारंपरिक सामाजिक संगठन में अनेक परिवर्तन आए हैं, जिसका एक उदाहरण जाति व्यवस्था है। फिर भी इस संगठन की भारतीय समाज में निरन्तरता बनी हुई है तथा यह पुराने व कुछ नये प्रकार्य (Function) निभा रहा है।

सामाजिक क्षेत्र में निरंतरता (Continuity in the Social Sector)

लखनऊ में रिक्शा चालकों के अध्ययन में पाया कि वे भिन्न-भिन्न जातियों के थे। रिक्शाचालक काम के समय जाति सम्बन्धी निषेधों की परवाह किए बिना एक-दूसरे के साथ अंतःक्रिया (Interation) करते थे। तथापि, शाम को जब ये रिक्शाचालक घर जाते थे तो जाति सम्बन्धी सभी धार्मिक रीतियों का पालन करते थे। उनके रिश्तेदार उन्हीं की जाति के थे तथा वे अपनी ही जातियों मे विवाह करते थे। जाति व्यवस्था की खान-पान सम्बन्धी व वैवाहिक नियम संबंधी दो प्रमुख विशेषताओं में से खान-पान सम्बन्धी विशेषता तो लुप्त हो चुकी है, परन्तु सभी परिवर्तनों के बाद भी अपनी ही जाति में विवाह के नियम अभी भी बने हुए हैं।

आर्थिक क्षेत्र में निरन्तरता (Continuity in the Economic Sector)

जाति व्यवस्था में विशिष्ट जाति समूहों के लिए विशिष्ट व्यवसाय नियत किये गए, जिनका सामाजिक सोपान में एक विशिष्ट स्थान था। उच्च जाति के व्यवसाय पवित्र माने जाते थे, जबकि निम्न जातियों के व्यवसाय, अपवित्र माने जाते थे। अंग्रेजों के आगमन से नए आर्थिक अवसर खुले और जन साधारण के लिए उपलब्ध हुए। अर्थव्यवस्था की वृद्धि के कारण आर्थिक सम्बन्ध वंशानुगत सामाजिक स्थितियों के स्थान पर बाजार की दशाओं से निर्धारित होने लगे।

व्यावसायिकतावाद के प्रभाव के कारण ग्रामीण अर्थव्यवस्था वृहत राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का भाग बन जाती है। अंग्रेजी शासन में परिवर्तित राजनैतिक वातावरण ने गाँव के पारम्परिक जाति पदक्रम

और भूस्वामित्व संरचना को धक्का पहुँचाया। तथापि, सामाजिक स्थितियों में आंतरिक अदल-बदल हुआ परन्तु सम्बन्धित समूहों में जाति व्यवस्था अभी भी राजनैतिक सम्बन्ध निर्धारित करती रही तथा आर्थिक प्रस्थितियों को प्रतिबिंबित करती रही। इस अर्थ में, व्यापक परिवर्तनों के बावजूद जाति की निरंतरता अभी भी बनी हुई है।

आज जाति की निरंतरता, एक अन्य रूप में देखी जा सकती है कि जब सामाजिक-आर्थिक, राजनैतिक व शैक्षणिक परिवर्तनों की नई शक्तियाँ उदित हुई, तो इन परिवर्तनों से सबसे पहले लाभ उठाने वाली उच्च जातियाँ, जैसे कि ब्राह्मण, राजपूत व वैश्य थीं, जो कि पहले से ही शक्तिशाली थी। अंग्रेजी शिक्षा के प्रति सबसे पहले ब्राह्मण वर्ग चैतन्य हुआ और इसलिए उसने राजनैतिक व प्रशासनिक शक्ति का लाभ उठाया। यही स्थिति वाणिज्यिक क्षेत्र में भी देखने को मिलती है। बिड़ला, डालमिया आदि जैसे बड़े व्यापारी घराने भी पारम्परिक वाणिज्यिक जातियों के हैं। आधुनिक बैकिंग तथा वाणिज्य के क्षेत्र में भी दक्षिण के चेट्टियार जैसी जातियों ने अपने आप को स्थापित कर लिया, जो कि उनके पारम्परिक व्यवसाय के विस्तार के रूप में देखा जा सकता है।

राजनीतिक क्षेत्र में निरन्तरता
(Continuity in the Political Sector)

ग्रामीण भारत में सत्ता संरचना के निर्धारण में प्रभुत्वशील जाति एक महत्वपूर्ण घटक थी। सभी प्रभुत्वशील जातियाँ अनुष्ठानिक (Ceremonial) रूप से श्रेष्ठ नहीं थी बल्कि प्रभुत्व भूमि स्वामित्व, राजनैतिक शक्ति, संख्यात्मक शक्ति आदि से जुड़ा हुआ था। पश्चिमी एवं उत्तरी भारत के कुछ क्षेत्रों में यह देखने में आता है कि प्रभुत्वशील कृषक जातियों के पास भूमि स्वामित्व व राजनैतिक शक्ति भी थी।

बाजार की अर्थव्यवस्था के उदय के साथ जाति मुक्त व्यवसायों के प्रारम्भ तथा जाति समूहों के सक्रिय होने आदि कारणों से जातियों की पारंपरिक राजनैतिक भूमिका में ह्रास हुआ है। फिर भी, हम जाति को राजनैतिक रूप से महत्वपूर्ण पाते हैं। स्वतंत्रता के पश्चात् अधिकांश स्थानों पर अछूतों की निम्न जातियाँ, स्थानीय प्रभुत्वशील उच्च जाति के ठाकुरों के विरोध में एकजुट हो गईं। ठाकुर (राजपूत) जमींदार पारम्परिक न्यायकर्ता थे तथा निम्न जातियों के भूतपूर्व मालिक थे। अत: जाति, जो कि एक विभाजक थी, इन नई परिस्थितियों में अपने आपको एकता के कारक के रूप में ढाल लिया। ये जातिगत गठबंधन, केवल राजनैतिक लाभ के लिए ही नहीं, अपितु भौतिक कल्याण व सामाजिक प्रस्थिति (Social Status) के लिए भी स्थापित हुए। अत: भारतीय समाज की गतिशीलता वास्तविक रूप में जातिगत परिवर्तनों के साथ-साथ चली है। परिवर्तन की शक्तियों से अनुकूलन की विशेषता, पहले भी जाति का महत्त्वपूर्ण लक्षण रही है। पहले की तरह आज भी परिवर्तन का यह विन्यास इस व्यवस्था की निरंतरता का एक प्रमुख तत्व है।

जाति व्यवस्था की निरन्तरता के कारक
(Factors for the Continuity of the Caste System)

जाति व्यवस्था में निरंतरता के कारणों की चर्चा दो संदर्भों में की जा सकती हैं-

1. अनुकूलन के संदर्भ में, तथा
2. जाति व्यवस्था के समकालीन प्रकार्यों के संदर्भ में।

1. अनुकूलन के संदर्भ में (In terms of adaptation)

पणिक्कर ने कहा है कि-"जाति रबर के बने ऐसे तंबू के रूप में है जो सभी समूहों का समावेश अपने अंदर कर लेता है।"

इस संदर्भ में यदि भारत में जाति व्यवस्था पर विचार करें तो इसमें अनुकूलन की अद्‌भुत क्षमता दृष्टिगत होती है। अनुकूलन की यह क्षमता जाति व्यवस्था का ऐतिहासिक लक्षण रहा है और इसने बौद्ध, जैन, इस्लाम धर्मों, संस्कृतिकरण और आधुनिकीकरण जैसी तमाम परिवर्तनकारी शक्तियों के साथ अनुकूलन किया है और अपने परिवर्तित स्वरूप के साथ अभी भी विद्यमान है।

2. समकालीन प्रकार्यों के संदर्भ में (In the context of Contemporary Functions)

जाति व्यवस्था के समकालीन प्रकार्य भी इसकी निरंतरता के लिए उत्तरदायी हैं, जैसे-

1. जाति सामाजिक गतिशीलता को संभव एवं व्यावहारिक बनाती है जो दो रूपों में स्पष्ट होता है प्रथम 'संस्कृतिकरण' के रूप में और द्वितीय शक्ति अर्जन के लिए आर्थिक एवं राजनीतिक संगठन के आधार के रूप में। संस्कृतिकरण द्वारा निम्न स्तर की जातियों ने उच्च स्तर की प्रभुजातियों की जीवनशैली का अनुसरण किया और जातीय संस्तरण (Caste Stratification) में अपनी उच्च स्थिति का दावा किया। ऐसे समूहों को जाति संस्तरण में उच्च स्थिति भी प्राप्त हुई। इस प्रकार इन समूहों को संतुष्ट करते हुए जाति ने अपनी निरन्तरता बनाये रखी। समकालीन भारत में जहाँ आर्थिक एवं राजनीतिक शक्ति अधिक महत्वपूर्ण है वहां जातियां संगठित होकर इनको प्राप्त करने का प्रयास कर रही हैं। जहाँ एक ओर अपने आर्थिक-सामाजिक तथा राजनीतिक हितों के साधन के लिये जाति दबाव समूह के रूप में कार्य कर रही है। वहीं, चुनाव में अपने प्रतिनिधियों को जिताने के लिए एक जाति के लोग एकताबद्ध हो रहे हैं।
2. लोकतांत्रिक व्यवस्था में 'जाति' राजनीतिक दलों द्वारा मतदाताओं को लामबंद करने हेतु आधार का काम करती है। आज चुनावी समीकरण में जाति के पक्ष को ध्यान में रखा जाता है। विभिन्न जातियाँ अपने हितों को देखते हुए संगठनों का निर्माण करती हैं और अपने सदस्यों को किसी विशेष पार्टी को मत देने के लिये प्रेरित करती हैं। जातियों की राजनीतिक भागीदारी प्राप्त करने

के इस तरीके ने जातीय चेतना (Caste Consciousness) को मजबूती प्रदान की है और जातियों को संगठित होने का नया आधार प्रदान किया है। लोकतंत्रीय व्यवस्था में अपनी जाति की भागीदारी सुनिश्चित कराने के प्रयास ने भी जाति को मजबूत बनाकर इसकी निरंतरता को बनाए रखने में सहायता प्रदान की है।

3. जातीय आधार पर निर्मित संगठनों द्वारा अनेक लोक कल्याणकारी कार्य किये जाते रहते हैं। उनके द्वारा किये जाने वाले यह कार्य एक तरफ तो उनकी जाति के लोगों को सामाजिक सुरक्षा प्रदान करते हैं तो वहीं दूसरी तरफ उनमें अपनी जाति के प्रति विश्वास की भावना पैदा कर जाति को मजबूत बनाते हैं। जाति के यह कल्याणकारी कार्य, राज्य द्वारा प्रायोजित कल्याणकारी कार्यों के विकल्प के रूप में होते हैं जो केवल अपनी जाति के लिए होते हैं और इस प्रकार ये जातीय समूह में 'हम की भावना' को मजबूत बनाते हैं और जाति की निरंतरता में सहायक होते हैं। अपनी जाति के सदस्यों के लिये छात्रावास, अस्पताल एवं धर्मार्थ संस्थाएं बनाकर संगठन अपनी जाति की निरंतरता बनाये हुए हैं।

4. व्यक्ति द्वारा अपनी स्वार्थ सिद्धि हेतु जातिवाद की सहायता लेना उसके लिये लाभकारी होता है। राजनीतिक या आर्थिक स्वार्थों की सिद्धि के लिये कुछ व्यक्ति कभी-कभी अपनी जाति को आधार बनाते हैं और अपने समूह के लोगों में जातीय भावना पैदा करते हैं। व्यक्ति जातीयता के आधार पर अपनी जाति को संगठित कर दबाव समूह (Pressure Group) के रूप में उसका प्रयोग करते हैं और अपने व्यक्तिगत हितों को पूरा करते हैं। इस प्रकार के प्रयास जातिवाद की भावना पैदा करते हैं। इसकी प्रतिक्रिया में अन्य जातियां भी संगठित होती हैं और जाति मजबूत होती है और इस प्रकार जाति निरंतरता बनी हुई है।

5. वैश्वीकरण और संचार क्रांति के दौर में जाति व्यक्ति के समक्ष पहचान के संकट (Identity Crisis) का समाधान प्रस्तुत करती है। पहचान के संकट का सामना कर रहा व्यक्ति वैश्विक भीड़ में खो जाने के भय से अपने नृजातीय मूल (Ethnic root) की तलाश करता है। जाति व्यवस्था अपने सदस्यों को एक सुरक्षित पहचान देती है जिसे जीवनपर्यन्त कोई शक्ति नहीं बदल सकती। अपनी पहचान को सुरक्षित रखने की यह मानसिकता भी जाति को मजबूत करते हुए इसको निरंतरता प्रदान कर रही है।

मूल्यांकन (Evoluation)

तमाम परिवर्तनों के बावजूद समकालीन भारत में जाति प्रथा अपने अनुकूलन की अद्भुत क्षमता एवं समकालीन प्रकार्यों (Contemporary Function) के कारण अपनी निरंतरता को बनाए हुए है। आज भी भारत के ग्रामीण समाजों में व्यक्ति की पहचान में उनकी जाति की भूमिका महत्वपूर्ण बनी हुई है। आर्थिक एवं राजनीतिक शक्ति की प्राप्ति की होड़ में विभिन्न जातियों में सावयवी एकता (Organic Unity) (परंपरागत जजमानी व्यवस्था के रूप में पाई जाने वाली एकता) की जगह प्रतिस्पर्धात्मक एकता (Competitive Unity) का विकास हुआ है। शहरों में भी अपने स्वार्थ सिद्धि हेतु जातिवाद एक प्रमुख क्रियाविधिकी के रूप में क्रियाशील है। मध्य बिहार एवं उत्तर प्रदेश में हाल के वर्षों में हुए जातीय दंगे, नरसंहार तथा पश्चिम उत्तर प्रदेश में अंतर्विवाह करने वाले जोड़ों की नृशंस हत्याएं जाति की मजबूत होती प्रवृत्ति को दर्शाते हैं। आज राजनीतिक शक्ति प्राप्त करने की प्रवृत्ति ने एक साधन के रूप में जाति के महत्व को काफी बढ़ा दिया है।

अत: निष्कर्ष है कि आज तमाम परिवर्तनों के बावजूद जाति अपनी निरंतरता को बनाये हुए है अर्थात् जाति एक साथ कमजोर (कुछ क्षेत्रों में होने वाले परिवर्तन के संबंध में) और मजबूत (कुछ क्षेत्रों में विद्यमान निरंतरता के संबंध में) दोनों हुई है।

प्रभुजाति की अवधारणा
(Concept of Dominant Caste)

जाति प्रधान भारतीय समाज में ग्रामीण शक्ति संरचना के विश्लेषण के क्रम में श्रीनिवास ने प्रभुजाति की अवधारणा को प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार जाति के लक्षणों से अधिक महत्वपूर्ण जातियों के आसपास उभरने वाले संबंधों की संरचना है और इन संबंधों में प्रभुत्व रखने वाली जाति को 'प्रभुजाति' कहा जाता है जिनके पास गांव की शक्ति का केंद्रीकरण होता है और गांव की अन्य जातियां उनके प्रभाव में होती हैं।

श्रीनिवास का मानना है कि परिवर्तनशील भारतीय ग्रामीण समाज की शक्ति संरचना (Power Structure) में किसी जाति का प्रभुत्व केवल कर्मकांडीय प्रस्थिति (Ritual Status) पर निर्भर नहीं करता है बल्कि सत्ता, संपदा आदि भी इसके प्रमुख निर्धारक तत्व हो गये हैं। इस संदर्भ में उन्होंने प्रभुजाति की प्रभुत्वशीलता को निर्धारित करने वाले प्रमुख तीन कारकों की चर्चा की है-

1. संख्यात्मक बहुलता अर्थात् उसकी संख्या आसपास की अन्य जातीय समूहों से अधिक हो।
2. भू-स्वामित्व अथवा आर्थिक संपन्नता अर्थात् उस जाति के पास अन्य जातियों की अपेक्षा अधिक भूमि पर अधिकार हो और आय के अन्य स्रोत भी अधिक हों।
3. राजनीतिक शक्ति अर्थात् उस जाति के सदस्यों के पास राजनीतिक पहुँच हो।

भारत के ग्रामीण समुदाय में उपरोक्त तीनों शक्ति रखने वाली जाति प्रभुजाति होती है। **श्रीनिवास** के अनुसार आज किसी भी जाति की कर्मकांडीय प्रस्थिति उसके प्रभुत्वशीलता के निर्धारण हेतु महत्वपूर्ण आधार नहीं रह गयी है। फिर भी अपेक्षाकृत उच्च कर्मकांडीय प्रस्थिति

किसी जाति को प्रभुजाति बनने में सहयोग देती है। श्रीनिवास ने इस तथ्य की पुष्टि हेतु रामपुरा गाँव के अपने अध्ययन का उदाहरण दिया है जहाँ ब्राम्हण, किसान एवं अस्पृश्य सहित अनेक (ओक्कालिंगा-किसान) जातियाँ रहती हैं। ओक्कालिंगा की कर्मकांडीय प्रस्थिति ब्राम्हणों से निम्न है, परंतु गाँव की लगभग 80% भूमि का स्वामित्व ओक्कालिंगा के पास है, ओक्कालिंगा संख्या में भी अधिक हैं और ग्रामीण मामलों में राजनीतिक प्रभाव भी रखते हैं फलस्वरूप निम्न कर्मकांडीय प्रस्थिति के बावजूद ओक्कालिंगा रामपुरा की प्रभुजाति है।

नवीन परिवर्तनों के संदर्भ में श्रीनिवास ने अपने बाद के लेखनों में यह स्वीकार किया है कि भारत में प्रभुजाति के अब कई अन्य निर्धारक कारक भी हो गए हैं (जैसे- पश्चिमी शिक्षा, आरक्षण की व्यवस्था, प्रशासन में निम्न जाति के लोगों की उच्च पदों पर नौकरियाँ और आय के अन्य नगरीय स्रोत आदि)। स्वतंत्रता के बाद से वयस्क मताधिकार तथा पंचायती राज की शुरूआत ने निम्न जातियों विशेषत: हरिजनों में आत्म सम्मान एवं शक्ति की नवीन भावना का संचार किया है। इन जातियों को प्राप्त आरक्षण और इन जातियों के लिए निर्मित संगठन की भूमिका भी इनके प्रभुत्व के निर्धारण में महत्वपूर्ण हो गई है। साथ ही पुरातन एवं नवीन प्रभुजातियों के मध्य संघर्ष भी आज की महत्वपूर्ण घटना है। यद्यपि इन परिवर्तनों के बावजूद श्रीनिवास ने यह स्वीकार किया है कि अत्यधिक पिछड़े इलाकों में परंपरागत प्रभुजाति के प्रभुत्व को समाप्त करना एक कठिन कार्य है परंतु यह भी सत्य है कि उनके स्वरूप में परिवर्तन हो रहा है और पुरातन प्रभुजाति की प्रभुता का ह्रास हो रहा है।

इस प्रकार प्रभुजाति की प्रकृति में परिवर्तन और जातीय सोपान (Caste Hierarchy) में मध्य एवं निचले स्तर की जातियों का प्रभुजाति के रूप में उभार वर्तमान ग्रामीण भारत की महत्वपूर्ण घटना है और वैश्वीकरण एवं तकनीकी विकास के बावजूद ग्रामीण शक्ति संरचना में जाति एक महत्वपूर्ण घटक बनी हुई है। अत: वर्तमान ग्रामीण शक्ति संरचना के विश्लेषण में श्रीनिवास का यह विचार एक दृष्टिकोण प्रदान करता है और इस रूप में आज भी महत्वपूर्ण है।

जजमानी प्रणाली (Jajmani System)

जजमानी प्रणाली हिन्दू जातीय प्रणाली का सामाजिक-आर्थिक आधार रहा है और भारत में कृषिक सामाजिक संरचना का अंतर्निहित हिस्सा है। जजमानी प्रणाली नामक पद विलियम वाइजर की देन है।

जजमानी प्रणाली के अंतर्गत गाँव में हरेक जातीय समूह को अन्य जातियों के परिवारों को कुछ मानकीकृत सेवाएँ (Standardised Services) देनी होती हैं। आमतौर पर इस मुहावरे का प्रयोग भू-स्वामी उच्च जातियों और भूमिहीन सेवक जातियों के बीच माल और सेवाओं के लेनदेन के सूचक के रूप में किया जाता है। ये जातियाँ हमेशा ही एक व्यवसायिक परंपरा निभाने के कारण व्यवसायिक रूप से निपुण हो जाती हैं, इसलिए इन्हें कारीगर जातियों के रूप में भी जाना जाता है। लुहार, सुनार, बुनकर, तेली, मोची, नाई, धोबी, गायक जैसी कारीगर जातियाँ और व्यवसायिक निपुणता वाले अन्य कई समूह व खेतिहर मजदूरी करने वाले पारंपरिक भूमिहीन अछूत जातियों के लोग 'सेवक जातियों' में आते हैं। इन्हें कमीन, प्रजन और देश के विभिन्न हिस्सों में कई अन्य नामों से पुकारा जाता है। भू-स्वामी उच्च जातियों को मोटे तौर पर जजमान (संरक्षक) कहा जाता है। पीढ़ी दर पीढ़ी चलने वाले ये सेवा आधारित संबंध जजमानी-प्रजन संबंध कहलाते हैं।

जजमानी प्रथा बुनियादी तौर पर उत्पादन माल एवं सेवाओं के वितरण की कृषि आधारित प्रणाली है। जजमानी संबंधों के माध्यम से यह कारीगर जातियाँ भू-स्वामी प्रभुतासंपन्न जातियों के संपर्क में आती हैं। भू-स्वामी जातियाँ अपनी कारीगर अथवा सेवक जातियों के प्रति उच्चता एवं 'पालनहार' का सा रूख अपनाती हैं।

इस प्रणाली के अंतर्गत गाँव में रहने वाले हरेक जाति समूह को अन्य जातियों के परिवारों को एक निश्चित मानदंड के अनुसार सेवाएँ प्रदान करनी होती है। यह प्रणाली वितरणपरक व्यवस्था हैं जिसके अंतर्गत उच्च जातियों के भू-स्वामी परिवार जिन्हें जजमान कहा जाता है, उन्हें विभिन्न निम्न जातियों द्वारा सेवाएँ एवं उत्पाद उपलब्ध कराए जाते हैं। इस प्रकार यह प्रणाली भारतीय कृषि आधारित गाँव में श्रम के कार्यानुसार विभाजन को स्पष्ट करती है जिसमें भूमिका संबंधों और भुगतान की श्रृंखला बनाती है। यह व्यवस्था परंपरा के अनुसार ही चलती रही है और आपसी विश्वास तथा एक-दूसरे पर निर्भरता इसका सातत्य बनाए हुए है। इसलिए इसे भारतीय कृषिक व्यवस्था में जाति पर आधारित कार्यात्मक अंतरनिर्भरता (Functional Inter-dependence) की योजना भी कहा जा सकता है।

जजमानी रिश्ते अटूट होते हैं। जजमानी अधिकार को पिता से पुत्र के हाथ में जायदाद के हस्तांतरण का एक प्रकार भी माना जा सकता है। यह संबंध एक प्रकार से स्थानीय परंपराओं से ही अधिकतर संचालित होते हैं। कुल मिलाकर जजमानी प्रणाली में आधिपत्य, शोषण एवं संघर्ष प्रमुख तौर पर निहित हैं। भू-स्वामी प्रभुतासंपन्न संरक्षकों तथा उनकी सेवा करने वाले गरीब कारीगरों और भूमिहीन मजदूरों के बीच सत्ता के प्रयोग में भारी खाई विद्यमान रही हैं।

जजमानी प्रणाली की एक और महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि जजमानी संबंधों का संचालन हालांकि ग्रामीण स्तर पर ही होता है फिर भी अक्सर वे किसी एक गाँव तक ही सीमित नहीं रहते क्योंकि सभी गाँवों में सभी कारीगर जातियाँ नहीं होती इसलिए कारीगर जातियों की सेवाएँ अन्य गाँवों से भी अक्सर उधार ली जाती है। इसके अलावा सुनारों, लुहारों और बढ़ई जैसी कारीगर जातियों के लिए एक ही गाँव से पूरे साल रोजगार योग्य काम जुटाना संभव नहीं है। इसलिए ऐसी जातियाँ एक सीमित क्षेत्र में कई गाँवों की आवश्यकताओं की पूर्ति करती हैं। उपसंहार के रूप में यह कहा जा सकता है कि जजमानी प्रथा युगों पुरानी सामाजिक संस्था है जो भारतीय गांवों में प्रचलित अंतरजातीय तथा अंतरपारिवारिक सामाजिक-आर्थिक-राजनैतिक और

धार्मिक संबंधों को परिलक्षित करती है। यह भारत में कृषि के सामाजिक संगठन के सबसे महत्वपूर्ण अवयवों में शामिल है।

जजमानी प्रथा का पतन (Decline of Jajmani System)

भारतीय अर्थव्यवस्था के धीरे-धीरे हुए आधुनिकीकरण के समांतर जजमानी प्रथा का भी पतन हो रहा है लेकिन आजादी के बाद ही अवध में इस प्रथा का तेजी से पतन हुआ है। मोटे तौर पर जजमानी प्रथा के पतन को निम्नलिखित शीर्षकों में बताया जा सकता है।

1. सरकार (राज्य) की भूमिका
2. प्रौद्योगिकी अन्वेषणों और औद्योगीकरण की शुरूआत
3. दलितों और पिछड़ी जातियों की राजनैतिक लामबंदी

पारंपरिक रूप में जजमानी प्रथा पर चलने वाले गांवों की अर्थव्यवस्था प्रारंभिक स्तर पर गुजर-बसर की अर्थव्यवस्था थी, जिसका लक्ष्य स्थानीय आबादी की उपभोग संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति करना था। स्थानीय आत्मनिर्भरता और श्रम एवं पूंजी में ठहराव के कारण कृषि का व्यवसायीकरण और पूंजीवादी रूपांतरण नहीं हो पाया स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद जानबूझकर नियोजित ढंग से यह प्रयास किया गया कि ग्रामीण अर्थव्यवस्था को क्षेत्रीय एवं राष्ट्रीय मंडियों से जोड़ा जाये। इस कार्य को सुचारू बनाने के लिए सरकार ने यातायात एवं संचार श्रृंखलाओं के विस्तार के लिए बड़े पैमाने पर पूंजी निवेश किया। सरकार की नीतियों से ग्रामीण भारत में अर्थव्यवस्था का तेजी में मौद्रीकरण हुआ। बढ़ती हुई आबादी का पेट भरने के लिए सरकार की कार्यसूची में कृषि में उत्पादकता का सवंर्द्धन प्राथमिकता का विषय था।

स्वतंत्रता के तत्काल बाद अपनाए गए नियोजित विकास की प्रक्रिया द्वारा कृषि क्षेत्र में पूंजीवादी रूपांतरण (Capitalist Transformation) हुआ। इसके अलावा सरकार ने ऋण सुविधाएँ, प्रौद्योगिक जानकारी, खाद, सिंचाई और अधिक उपजाऊ बीज आदि उपलब्ध कराने की भी पहल की। इसके कारण भू-स्वामी वर्ग की मानसिकता में आमूलचूल परिवर्तन हुआ और बाजार की शक्तियों के आने के कारण उन्हें सदियों पुरानी जजमानी प्रथा को जिन्दा रखने के बजाय उन्हें बिक्री के लिए अधिक उत्पादन करने का प्रोत्साहन मिला। इससे भू-स्वामी वर्गों तथा खेतिहर मजदूरों एवं कारीगरों के बीच ठेके पर आधारित संबंधों को बढ़ावा मिला। पारंपरिक अनौपचारिक संबंधों की जगह औपचारिक ठेकेदारी दायित्वों के अनुरूप औपचारिक संबंधों की शुरूआत होने लगी।

प्रौद्योगिकी अन्वेषणों और औद्योगीकरण से एक स्थिति ऐसी आई कि जिसमें कार्यात्मक अंतरनिर्भरता की कोई संभावना ही नहीं बची। मशीनों से तैयार सामानों के बाजार पर छा जाने और दूर-दराज के ग्रामीण क्षेत्रों तक पहुँच जाने के कारण ग्रामीण कारीगरों को सीधे यंत्रों से स्पर्धा करने पर मजबूर होना पड़ा।

दाढ़ी बनाने के लिए सेफ्टी रेजर की विश्वसनीयता बढ़ने और उसके कारण उसका प्रयोग बढ़ने की वजह से अपने हाथ से दाढ़ी बनाने का रिवाज चल निकला और गांव के नाई का काम घट गया। स्टेनलेस स्टील के बर्तनों के आविष्कार से गांव के कुम्हार का महत्व घटा और गांव में बरमें यानि हैंडपंप लग जाने के कारण उच्च जातियों की कहारों (पानी खींचकर उसे घरों तक पहुँचाने वाले) पर निर्भरता कम हुई। इस सबके कारण अधिकतर कारीगर जातियाँ बेरोजगार हो गयीं। इनमें से कई जातियों ने बाजार का रूख किया अथवा अपनी सेवाएँ औपचारिक आर्थिक लेनदेन के अंतर्गत नकद भुगतान के बदले देनी शुरू कर दी। इसके साथ ही सेवक जातियों के नए उभरते शहरी केन्द्रों और औद्योगिक बस्तियों में पलायन का सिलसिला शुरू हो गया। गांव में छूट जाने वाले लोगों ने भू-स्वामी अभिजात की जमीनों पर दिहाड़ी मजदूरी अपना ली। इस प्रकार ग्रामीण अर्थव्यवस्था अब अधिकांश शहरी और राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था से एकीकृत होने लगी।

आजादी से पहले राष्ट्रवादी आंदोलन ने सामाजिक समानता के बारे में एक सैद्धांतिक और लगभग अर्द्धवैचारिक प्रतिबद्धता दिखाई दी थी। कमजोर वर्गो-दलित, आदिवासियों और पिछड़ी जातियों से समतामूलक (Egalitarian) और अन्याय और शोषण मुक्त नए समाज की स्थापना का वायदा किया गया था। उस दृष्टि से पिछड़ी जातियों के आंदोलनों ने भारत के दक्षिणी और पश्चिमी क्षेत्रों में अपना रंग जमा लिया था। संविधान के लागू हो जाने से सरकार उनके कल्याण और सशक्तिकरण के लिए प्रतिबद्ध हो गयी।

वर्तमान भारतीय समाज में एक अत्यंत स्थायी महत्व का परिवर्तन दलितों एवं अन्य पिछड़े वर्गों में अपनी पहचान की नई भावना का प्रस्फुटन है। भारतीय जनसंख्या के पिछड़े वर्गों का लोकतंत्र में अपनी हिस्सेदारी के लिए संघर्ष और देश के विभिन्न हिस्सों में उनकी राजनैतिक लामबंदी शोषणमूलक जजमानी प्रथा के लिए गंभीर चुनौती साबित हुई। जजमानी प्रभाव भू-स्वामी उच्च जातियों की पारंपरिक कृषि पर निर्भर अर्थव्यवस्था में उत्पादन के साधनों पर नियंत्रण के साथ उनके एकाधिकारवादी अधिकार पर आधारित थी। पिछड़े वर्गों द्वारा नए आत्मविश्वास और लोकतंत्र में हिस्सेदारी के लिए उनके संघर्ष में जजमानी प्रथा पतन के गर्त में जा रही है। इसके बावजूद इस तर्क में भी दम दिखाई दे रहा है कि कमजोर वर्गों द्वारा इस प्रकार प्राप्त किए गए अधिकारों का नई आर्थिक नीतियों और वैश्वीकरण से फिर हनन होने के आसार बन रहे हैं।

भारत में जाति व्यवस्था : समकालीन मुद्दे
(Caste System in India : Contemporary Issues)

भारत में अस्पृश्यता (Untouchability in India)

सोपान क्रम में विभाजित भारतीय हिंदू सामाजिक संगठन में सबसे निचले स्तर पर अवस्थित वह जाति जिन पर विभिन्न निर्योग्यताएँ एवं

प्रतिबंध (Disabilities and Restrictions) आरोपित कर सम्पूर्ण समाज से पृथक अमानवीय जीवन यापन हेतु विवश किया जाता रहा है, अस्पृश्य हैं।

इन जातियों को जन्मजात अपवित्र मानते हुए इनपर कई सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक प्रतिबंध लगाए गए। अस्पृश्य जातियों को गाँव के दक्षिण दिशा में निवास करने, मुख्य मार्ग से आवागमन न करने, प्रातः एवं सांयकाल घर से नहीं निकलने, सार्वजनिक कुँओं, तालाबों, जलाशयों आदि का प्रयोग नहीं करने, मंदिरों एवं अन्य सार्वजनिक स्थानों में प्रवेश नहीं करने तथा न्यायालय में दूर से अपनी बात कहने आदि के लिए बाध्य किया गया। इसके अतिरिक्त इन्हें पक्के ईंट के मकान में रहने, संस्कृत बोलने या सुनने, इस जाति की महिलाओं के आभूषण पहनने आदि पर प्रतिबंध लगा दिया गया। इस जाति पर सभी निर्योग्यताएँ कठोरता से लागू की जाती थी तथा इसके उल्लंघन पर इन्हें मृत्युदंड तक की सजा दी जाती थी।

अस्पृश्यता के उन्मूलन हेतु किए गए प्रयास (Effort Made to Eradicate Untouchability)

भारत में अस्पृश्यता के उन्मूलन हेतु लंबे समय से ही विभिन्न प्रयास किए जाते रहे हैं। मध्य काल में विभिन्न भक्ति एवं समाज सुधार आंदोलन इस काल के प्रमुख आंदोलन हैं। इसके अतिरिक्त संस्कृतिकरण, धर्मान्तरण तथा धर्मनिरपेक्षता के मूल्यों के प्रसार द्वारा भी अशपृश्यता के उन्मूलन हेतु व्यापक प्रयास किए गए।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत सरकार द्वारा एक समतामूलक आधुनिक समाज के निर्माण का लक्ष्य सामने रखा गया और इस लक्ष्य प्राप्ति की दिशा में अछूतों की प्रस्थिति में सुधार एवं अस्पृश्यता उन्मूलन हेतु कई महत्वपूर्ण प्रयास किए गए जिसे हम 2 भागों में बांटकर देख सकते हैं-

(i) *संवैधानिक एवं वैधानिक प्रयास (Constitutional and legislative efforts)* – स्वतंत्रता के पश्चात् भारतीय संविधान ने लोकतांत्रिक समाजवादी व्यवस्था का लक्ष्य रखा और इसके लिए स्वतंत्रता समानता व न्याय के मूल्यों को वरीयता दी। इन मूल्यों को पाने के लिए आवश्यक था कि भारतीय जाति व्यवस्था में व्याप्त असमानता और अस्पृश्यता जैसी सामाजिक कुरीतियों को समाप्त किया जाए। इसी संदर्भ में न्याय के लक्ष्यों को प्राप्त करने की दिशा में अस्पृश्यता उन्मूलन हेतु किए गये प्रमुख संवैधानिक प्रयास निम्न हैं:-

1. संविधान के द्वारा यह प्रावधान किया गया कि अनुच्छेद 341 (2) के तहत् संसद किसी भी जातीय समूह को अनुसूचित जाति की सूची में शामिल कर सकती है ताकि उनके कल्याण हेतु विशेष प्रावधान किये जा सकें।
2. अनुच्छेद 46 राज्य को निर्देश देता है कि वह पिछड़े वर्गों विशेषकर अनुसूचित जाति व जनजातियों के शैक्षिक एवं आर्थिक हितों की रक्षा करे एवं उन्हें सामाजिक अन्याय एवं सभी तरह के शोषण से बचाए।
3. अनुच्छेद 14 सभी नागरिकों को कानून के समक्ष समानता का अधिकार प्रदान करता है।
4. अनुच्छेद 15 द्वारा धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, या जन्म स्थान के आधार पर सामाजिक या शैक्षणिक भेदभाव को प्रतिबंधित किया गया है।
5. अनुच्छेद 17 अस्पृश्यता का अंत करता है और इस पर आधारित किसी भी आचरण को दण्डनीय घोषित करता है। बाद में अस्पृश्यता अपराध अधिनियम, 1955 और नागरिक सुरक्षा अधिकार अधिनियम, 1976 के तहत् इस कानून को और भी सख्त बनाया गया है।
6. अनुच्छेद 340 के अंतर्गत राष्ट्रपति द्वारा सामाजिक और शैक्षणिक रूप से पिछड़े वर्ग की समस्याओं की जांच के लिए आयोग गठित करने का प्रावधान किया गया है। अनुच्छेद 338 के अन्तर्गत अनुसूचित जातियों के हितों के रक्षार्थ अनुसूचित जाति तथा जनजाति राष्ट्रीय आयोग का गठन किया गया है जो इनके हितों के लिए कार्य करता है। अभी हाल में इस राष्ट्रीय आयोग को अनुसूचित जाति आयोग तथा अनुसूचित जनजाति आयोग के रूप में अलग-अलग कर दिया गया है।
7. अनुच्छेद 16, अनुच्छेद 330 एवं अनुच्छेद 332 के द्वारा अनुसूचित जातियों को अन्य जातियों के समकक्ष लाने के उद्देश्य से क्रमशः शासकीय नौकरियों में, लोकसभा में एवं विधानसभाओं में उनकी संख्या के अनुपात में आरक्षण का प्रावधान किया गया है।
8. यह आरक्षण केवल भर्ती में ही नहीं बल्कि उच्च पदों पर पदोन्नति, आयु सीमा में छूट, योग्यता स्तर में छूट, अनुभव में छूट आदि के रूपों में भी लागू किया गया है।
9. इनके लिये शैक्षणिक संस्थाओं में प्रवेश के लिए आरक्षण का प्रावधान एवं छात्रावासों में आरक्षण का प्रावधान किया गया है।
10. उपरोक्त के अलावा निम्न जाति के बच्चों के लिए कई अन्य सुविधाएँ भी प्रदान की गई हैं, जैसे-पुस्तकों का प्रावधान, दोपहर भोजन का प्रावधान, छात्रवृत्ति का प्रावधान, स्कूल यूनिफार्म, कोचिंग आदि का प्रावधान।

(ii) *विकास कार्यक्रमों के माध्यम से किए गए प्रयास (Efforts made through development programs)* – उपरोक्त संवैधानिक प्रयासों के अलावा इनके प्रस्थिति उन्नयन एवं विकास हेतु कई अन्य कार्यक्रम भी शुरू किए गए हैं जिनमें प्रमुख हैं

एकीकृत ग्राम विकास कार्यक्रम (IRDP), राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी, 20 सूत्री कार्यक्रम आदि।

6वीं योजना के तहत इस दिशा में एक विस्तृत रणनीति बनाई गई है जिसके 3 महत्वपूर्ण घटक हैं-

1. ***विशेष संघटक योजना (SCP)*** - केन्द्रीय सरकार और राज्य सरकारों के द्वारा अनुसूचित जातियों के विकास कार्यक्रमों के क्रियान्वयन का पर्यवेक्षण या देख-रेख करना।
2. ***विशेष केंद्रीय सहायता (SCA)*** - विभिन्न राज्यों के अनुसूचित जातियों के लिये विशेष संघटक योजना बनाना।
3. राज्यों में अनुसूचित जाति विकास निगम (SC DC) की स्थापना।

इन तीनों घटकों के संयुक्त प्रावधान में अनुसूचित जाति के विकास हेतु कई कार्यक्रम चलाए जाते रहे हैं।

उपरोक्त के अलावा स्वयंसेवी संगठनों एवं दलित साहित्यों द्वारा किए गए प्रयास भी इस दिशा में महत्वपूर्ण रहें हैं। निश्चित रूप से उपरोक्त प्रयासों ने भारतीय समाज में अस्पृश्यता जैसी हृदयविदारक घटना पर नियंत्रण स्थापित करने में काफी हद तक सफलता प्राप्त की है। परंतु आज भी कई ग्रामीण समाजों में व्याप्त रूढ़ियाँ हैं जिनके कारण अस्पृश्यता की भावना निरंतर जारी है। हाल ही में दक्षिण भारतीय राज्यों में निम्न जाति के लोगों को अस्पृश्य करार देने की घटना सामने आई है। यह जरूर है कि वैज्ञानिक मूल्यों, आधुनिक मूल्यों, तर्कवाद, शिक्षा, धर्मनिरपेक्षीकरण की प्रक्रिया आदि के प्रसार के फलस्वरूप आज अस्पृश्यता के इक्के-दुक्के मामले ही सामने आते हैं। धन के बढ़ते महत्त्व ने जन्मजात प्रस्थिति (Ascribed Status) के स्थान पर अर्जित प्रस्थिति (Achieved Status) के महत्त्व को स्थापित किया है। आज शिक्षा, प्रशिक्षण एवं कौशल विकास के मुक्त अवसरों की उपलब्धता के कारण निम्न जाति के लोग भी योग्यता अर्जित कर विभिन्न आर्थिक-राजनीतिक क्षेत्रों में उच्च स्थानों पर पहुँचने में सफल हो रहे हैं। परिणामत: इनकी सामाजिक प्रतिष्ठा में भी वृद्धि हुई है।

निष्कर्ष (Conclusion)

अस्पृश्यता की स्थिति में उपरोक्त सुधारों के बावजूद अभी काफी कुछ किया जाना बाकी है। अस्पृश्यता के पूर्णत: उन्मूलन के लिए यह आवश्यक है कि इससे संबंधित कानूनों को कठोरता से लागू किया जाए। साथ ही सरकार द्वारा इन जातियों के सामाजिक-आर्थिक उत्थान हेतु संबंधित कार्यक्रमों का दृढ़ इच्छाशक्ति एवं पारदर्शिता के साथ क्रियान्वयन किया जाना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त अस्पृश्य जातियों में जागरूकता के प्रसार के साथ-साथ आम लोगों में इन जातियों के प्रति संवेदनशीलता एवं मानवीयता की भावना का प्रसार किया जाना भी आवश्यक है।

अस्पृश्यता-नवीन तथ्य

नवम्बर, 2007 तक, अस्वच्छ व्यवसायों में कार्यरत व्यक्तियों के बच्चों को मैट्रिक-पूर्व छात्रवृत्ति की स्कीम के अंतर्गत 3.09 करोड़ रुपए की राशि जारी की गई है तथा अनुसूचित जाति के अनुमानत: लगभग 33,86 लाख विद्यार्थियों को मैट्रिक-पश्च छात्रवृत्ति योजना के तहत 458.98 करोड़ रुपए की राशि जारी की गई है। अनुसूचित जाति के विद्यार्थियों को एम.फिल और पी. एच. डी पाठ्यक्रमों में शिक्षा के लिए राजीव गांधी राष्ट्रीय फेलोशिप प्रदान की जाती है। अनुसूचित जातियों के लिए उच्च स्तर की शिक्षा की योजना का लक्ष्य चुने गए सुविख्यात संस्थानों में स्नातक और स्नातकोत्तर स्तर पर शिक्षा पाने के लिए पूरी वित्तीय सहायता मुहैया करा के अनुसूचित जाति से संबंधित विद्यार्थियों के बीच उच्च स्तरीय शिक्षा का बढ़ावा देना है। "नेशनल ओवरसीज स्कॉलरशिप स्कीम" अंतिम रूप से चयन किए गए अभ्यार्थियों को विदेशों में मास्टर स्तर के पाठ्यक्रमों के विनिर्दिष्ट विषयों में और इंजीनियरिंग, प्रौद्योगिकी और विज्ञान के विषयों में पी-एच.डी की उच्चतर शिक्षा प्राप्त करने के लिए वित्तीय सहायता मुहैया कराती है। राज्य सरकारों द्वारा अनुसूचित जातियों के कल्याण के लिए अनुसूचित जाति उप-आयोजना की तैयारी और कार्यान्वयन की गहन मॉनिटरींग की जाती है। ''राष्ट्रीय अनुसूचित जाति वित्त एवं विकास निगम'' गरीबी रेखा से नीचे रह रहे व्यक्तियों को ऋण सुविधाएं मुहैया कराता है।

छुआछूत की प्रथा को समाप्त करने तथा अनूसूचित जाति के प्रति बड़ी संख्या में अपराधों और नृंशसता की घटनाओं को रोकने के लिए 'नागरिक अधिकारों का संरक्षण अधिनियम, 1995' और 'अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति अधिनियम, 1989' के कारगर कार्यान्वयन के माध्यम से प्रयास किए जाते हैं।

भारत में जातिवाद (Casteism in India)

जाति भारतीय समाज की मुख्य घटक रही है परंपरागत भारतीय समाज में जातियाँ एक सामाजिक इकाई के रूप में कार्य करती रही हैं, जिससे उसके सदस्यों में सामूहिक चेतना की प्रवृत्ति का पाया जाना स्वाभाविक है, किन्तु वर्तमान में यह चेतना स्वहित समूह की चेतना एवं अन्य समूहों के प्रति ईर्ष्या, द्वेष के रूप में प्रकट होकर सामाजिक समस्या का रूप धारण कर रही है।

भारत में जातिवाद वह सीमित एवं संकीर्ण भावना है जिसके तहत प्रत्येक कार्य स्वजाति के हित को ध्यान में रख कर किये जाते हैं। वर्तमान में यह जातीय निष्ठा सामुदायिक एवं राजनीतिक शोषण के रूप में परिलक्षित हो रही है। जातिवाद के तहत उच्च पदों पर आसीन सदस्य नियुक्ति एवं प्रोन्नति के मामले में अथवा व्यवहार में अपनी जाति अथवा उपजाति के लोगों को वरीयता देते हैं तथा यह वरीयता अन्य जातियों के हित की कीमतों पर होती है।

भारत में जातिवाद के स्वरूप (Forms of Casteism in India)

भारत मे जातिवाद के स्वरूप को तीन स्तरों में बांट कर देखा जा सकता है।

1. प्रशासन में
2. राजनीति में
3. समाज में

भारत में जातिवाद प्रशासनिक या अधिकारिक स्तर पर व्यापक रूप में मौजूद है। उच्च पदों पर पहुँचनें पर प्रतिष्ठित अधिकारियों की नियुक्ति के संबंधो में, अथवा प्रोन्नति के मामले में स्वजाति को वरीयता देने लगते हैं। कुछ अधिकारी पद ग्रहण करते समय ही तय कर लेते हैं कि वे अपनी जाति के सदस्यों को अधिक महत्व देंगे। यह प्रवृत्ति कार्यालयों अथवा शिक्षण संस्थाओं में भी विराजमान है।

जातिवाद का सर्वाधिक व्यापक एवं विघटनकारी स्वरूप राजनीति में दिखाई देता है। कुछ जातियाँ सामूहिक रूप से संगठित होकर राजनीतिक प्रणाली को प्रभावित कर रही हैं। राजनीतिक दल भी संख्या बल के आधार पर विभिन्न जाति के सदस्य को विशिष्ट क्षेत्र से चुनाव में उम्मीदवार बनाते हैं तथा वह उम्मीदवार चुनाव जीतने पर विशिष्ट जाति का ख्याल रखता है। इसके अलावा शीर्ष पद पर बैठे राजनीतिक नेता अपने जातियों के सदस्यों को महत्वपूर्ण पदों पर नियुक्त करते हैं और अन्य जातियों के प्रति भेदभाव करते हैं।

समाजिक स्तर पर जातिवाद भारत में बहुत पहले से विराजमान हैं। इसके तहत विभिन्न जाति के सदस्य केवल अपने समूह मे विवाह करते हैं। खान-पान का संबंध रखते हैं, इसके अतिरिक्त स्वजाति के सदस्यों से अपने सुख दु:ख की भागीदारी करते हैं और उनसे मिलकर शांति एवं प्रसन्नता अनुभव करते हैं। साथ ही साथ वे समाज के अन्य जाति या सदस्यों को अपने से निम्न समझते हैं तथा स्वजाति केन्द्रीयता की भावना रखते हैं।

भारत में जातिवाद के कारण
(Reasons for Casteism in India)

भारत की जाति व्यवस्था में जातिवादी मानसिकता की प्रवृत्ति ऊँच-नीच की भावना से आरंभ हुई, किन्तु वर्तमान में गतिशीलता के विभिन्न अवसरों नें जातिवाद की भावना को बढ़ा दिया है जिसके कारकों पर निम्न रूप से चर्चा की जा सकती है:-

1. ***जाति के प्रति भावनात्मक लगाव (Emotional attachment to Caste)***- जाति एक बंद व्यवस्था (Closed System) एवं अन्तर्विवाही समूह (Endogamous Group) है। जन्म के बाद व्यक्ति परिवार के सदस्यों के बाद सर्वाधिक अन्त:क्रिया (Interaction) जाति समूह से करता है। जातीय संस्कृति एवं मूल्यों के आत्मसातीकरण (Assimilation) से अन्त: समूहों का निर्माण होता है। इस प्रकार स्वसमूह चेतना (Self group Consciousness) पैदा हो जाती है। इस स्तर पर व्यक्ति स्व जाति के सदस्यों को अपना तथा अन्य जातियों को पराया समझने लगता है। यदि समाजिक अंत:क्रिया (Social Interaction) के दौरान उसे अन्य जातियों के सदस्यों के प्रति कटुअनुभव हो तो वह अन्य जाति के प्रति कटुता की भावना भी रखने लगता है। ऐसी स्थिति में अवसर मिलने पर वह अपनी जाति के हितों को ध्यान में रखता है तथा अन्य को तिरस्कार की दृष्टि से देखता है।
2. ***ब्रिटिश नीतियाँ एवं सामाजिक सुधार (British Policies and Social Reforms)***- भारत में अंग्रेजों ने अपने शासन को मजबूत बनाने के लिए विभिन्न जातियों में दूरी बढ़ाने का प्रयास किया। दलितों को हिन्दू समाज से अलग समूह के रूप में पहचान स्थापित करने का प्रयास किया गया। जिससे राष्ट्रीय आंदोलन कमजोर किया जा सके। साथ ही विभिन्न जातियों को दी गयी सुविधा से जातीय प्रतिस्पर्धा का विकास हुआ। कुछ दलित नेताओं ने भी सुधारवादी कार्यक्रमों में उच्च जातियों के विशेषाधिकारों को चुनौती दी जिससे जातीय द्वेष एवं जातीयता की भावना प्रबल हुयी। इसी संदर्भ में गांधी जी के हरिजन उत्थान कार्यक्रम का भी विरोध किया गया। अम्बेडकर जैसे नेताओं ने दलित जातियों की समानता हेतु हिन्दू धर्म को अस्वीकार किया और बहुत से दलितों ने बौद्ध धर्म अपना लिया। परन्तु जाति के लचीलेपन के कारण वह जातीय सोपान (Caste hierarchy) से ही सम्बद्ध रहे और अन्य जातियों की प्रतिस्पर्धात्मक भावना को उग्र किया। ब्रिटिश नीतियों एवं सुधार कार्यक्रमों के प्रभाव से भी भारत में विभिन्न जातियों में दूरी व प्रतिस्पर्धा की भावना में वृद्धि हुयी और अपनी जाति के प्रति लगाव को मजबूत किया जिससे जातिवाद की भावना में भी वृद्धि हुयी।
3. ***जजमानी प्रथा की समाप्ति (End of Jajmani System)***- जजमानी व्यवस्था समाज में परंपरागत श्रम विभाजन की व्यवस्था थी जिसके तहत विभिन्न जातियों के सामाजिक आर्थिक संबंध होते थे। इस संबंध के कारण आपस में द्वन्द्व या ईर्ष्या भाव उत्पन्न नहीं होता था। इस अन्तर्निभरता के कारण जातिवादी भावना के अवसर कम थे किन्तु जजमानी व्यवस्था के टूटने एवं जातीय व्यवसायों के समाप्त होने से जातियाँ स्वतंत्र एवं वैयक्तिक ढंग से अपना विकास करने लगी । विकास की प्रक्रिया के तहत इन जातियों में प्रतिस्पर्धा की भावना उत्पन्न हुई तथा स्वजाति हित सर्वोपरि हो गया।
4. ***संरक्षी विभेदीकरण की नीति (Policy of Protective Discrimination)***- भारतीय संविधान में पिछड़ी, दलित जातियों की प्रस्थिति को ऊँचा उठाने तथा उनकी निम्न स्थिति को सुधारने के लिए आरक्षण की व्यवस्था की गई है, जिसके तहत नौकरियों और संवैधानिक संस्थाओं में उनके लिए कुछ स्थान आरक्षित किए गए हैं। इसके अतिरिक्त इनके लिए विशेष रूप से कुछ योजनाएँ, चलाई गई हैं। जिससे ये जातियां अपने हितों के प्रति चेतन हों गई है तथा अपनी जातियों के प्रति एकता का भाव प्रकट कर रही हैं। इसके अतिरिक्त जो जातियाँ

आरक्षण व्यवस्था के बाहर हैं उनके अन्दर असन्तोष उत्पन्न हो गया है। वे समझने लगी हैं कि उनके हित की कीमत पर आरक्षण की व्यवस्था की गई है। अत: उनके मन में आरक्षी जातियों के प्रति ईर्ष्या की और अपनी जाति के प्रति लगाव की भावना उत्पन्न हो गई है। अपनी जातियों की प्रस्थिति को ऊँचा उठाने के लिए वे भी प्रयास करने लगे हैं। क्योकि वे उसे प्रभु जाति (Dominant Caste) बनकर अपनी जाति प्रस्थिति (Caste Status) को बरकरार रखना चाहते हैं जो कि जातिवाद के रूप में प्रकट होता है।

5. ***जातीय संगठन (Caste Organization)***– विभिन्न जातीय संगठन भी परोक्ष रूप से जातिवाद को प्रोत्साहित कर रहे हैं। ये संगठन जातिवाद को मनोवैज्ञानिक आधार प्रदान करते हैं। हरित क्रांति के बाद पिछड़ी जातियों की आर्थिक स्थिति मजबूत होने के कारण उनके अन्दर स्वहित चेतना का विकास हुआ तथा उन्होंने स्वहित की रक्षा के लिए जातीय संगठन बना लिए। धीरे–धीरे अधिकांश जातियों ने भी ऐसा करना शुरू किया। इन संगठनों का उद्देश्य अपनी जाति को एकीकृत करना, समाज में अपनी जाति के प्रभाव को बढ़ाकर दबाव समूह के रूप में विकसित करना है। जातीय संगठन जाति सम्मेलन आयोजित करवाते हैं स्वजाति से संबंधित पत्रिका, लेख का प्रकाशन करतें हैं। इनके कार्य व्यवहार जाति निष्ठा को बढ़ावा देते हैं तथा जातिवाद के लिए आधार तैयार करते हैं।

6. ***यातायात एवं संचार सेवाएँ (Transport and Communication Services)***– आधुनिक संचार सेवाओं और यातायात के साधनों का विस्तार होने के कारण अपनी जाति के सदस्यों से सम्पर्क करने के लिए दूरी कोई समस्या नही रही। अब विभिन्न जातियों के सदस्य आपस में आसानी से सम्पर्क कर सकते हैं। कुल मिलाकर राष्ट्रीय स्तर पर जाति संगठनों का बनना तथा उनके सदस्यों के बीच तालमेल बनाना यातायात एवं संचार साधनों की उपलब्धता के कारण सहज हो गया है।

7. ***संस्कृतिकरण (Sanskritization)***– संस्कृतिकरण की प्रक्रिया द्वारा निम्न जातियाँ उच्च जातियों के कार्मकाण्ड, रीतिरिवाज, मूल्य, विचारधाराओं को ग्रहण करती हैं। ऐसी स्थिति में उच्च जातियाँ इनसे ईर्ष्या करती हैं। अत: जातीयश्रेष्ठता की भावना के कारण जातिवाद उत्पन्न हो रहा है क्योंकि संस्कृतिकरण करने वाली जातियाँ ऐसी स्थिति में लामबंद हो जाती हैं और जातीय निष्ठा को बनाए रखने की कोशिश करती हैं।

8. ***राजनीतिक कारण (Political Reasons)***– भारतीय राजनीति में जातितत्व एक निर्णायक पहलू के रूप में प्रकट हुआ है। प्रत्येक राजनीतिक दल अपना चुनावी समीकरण जाति संख्या के आधार पर तय करते है। इसका संबंध वोट बैंक से है। ग्राम पंचायत चुनाव से लेकर लोकसभा के चुनाव तक प्रत्येक राजनीतिक दल अपने उम्मीदवारों का चयन जाति संख्या के आधार पर तय करते हैं। वस्तुत: जातिवाद राजनीति के प्रत्येक स्तर पर है। क्योंकि विशेष जातियों का ध्यान न रखने पर राजनीतिक दलों के वोट वैंक पर विपरीत प्रभाव पड़ सकता है। इसीलिए चुनाव जीतने के बाद नेता जाति के हितों का ध्यान रखता है तथा अपनी सरकार बनने पर विशेष जाति के सदस्यों को प्रमुख पद देते हैं।

जातिवाद के परिणाम (Consequences of Casteism)

भारतीय समाज में जातिवाद कई समस्याओं को जन्म दे रहा है जिसे निम्न रूप में देखा जा सकता है:–

1. ***सामाजिक तनाव (Social Stress)***– भारत में जातिवादी प्रवृत्ति के बढ़ने के कारण विभिन्न जातियों के बीच सामाजिक दूरी बढ़ गई है। यद्यपि यह दूरी पूर्व की दूरी से भिन्न है जो कि निर्योग्यता के कारण नहीं बल्कि योग्यता के कारण है। विभिन्न जातियाँ अपने हितो के प्रति सचेत होती हैं तो दूसरी जातियों को लगता है कि उनके हित प्रभावित हो रहे हैं। जातीय सम्मेलनों में केवल विशेष जाति के शामिल होने से अन्य जातियों को लगता है कि उनके प्रति जहर घोला जा रहा है। इस कारण जातीय तनाव बढ़ रहे हैं जो कि कभी–कभी संघर्ष का रूप भी ले लेते हैं। यह जातीय संघर्ष चुनावों के दौरान अक्सर दिखाई देता है।

2. ***शोषण (Exploitation)***– जातिवादी मानसिकता के कारण एक जाति अन्य जातियों के बीच अपना प्रभुत्व स्थापित करती है। इसके पश्चात उनका शोषण भी करने लगती है। जिससे अन्य जाति के भीतर असुरक्षा की भावना जन्म लेती है और शोषण के विपरीत प्रतिक्रिया भी करने लगती है।

3. ***राजनीतिक एवं सामाजिक तनाव लोकतांत्रिक प्रक्रिया में बाधा (Political and Social Tension ugly in the Democratic Process)***– राजनीति में जातिवाद का प्रयोग होने से विशेष जाति को ही राजनीतिक लाभ मिलते हैं। अन्य जातियां उपेक्षित रह जाती हैं। इससे विभिन्न जातियों के बीच तनाव उत्पन्न होता है इसके अलावा राजनीति का जातिकेन्द्रित होना लोकतांत्रिक प्रक्रिया में बाधा उत्पन्न करता है।

4. ***राष्ट्रीय एकता एवं अखण्डता में बाधा (Hindrance to National Integrity)***– जातिवाद के कारण विभिन्न जतियों के बीच तनाव एवं संघर्ष होता है और राष्ट्रीय एकता में बाधा उत्पन्न होती है। चूँकि जातियाँ अब राष्ट्रीय स्तर पर लामबंद हो गई हैं। इसमें संचार साधनों की भूमिका प्रमुख है। अत: जातीय तनाव एक क्षेत्र में होने पर देश के अन्य क्षेत्रों में आसानी से फैल जाता है और क्षेत्रीय समस्या का राष्ट्रीयकरण हो जाता है। इसके अतिरिक्त जातियाँ राजनीतिक लाभ प्राप्त करने के

लिए कभी-कभी हिंसात्मक आंदोलन पर भी उतर आती हैं और राष्ट्रीय एकता, अखण्डता एवं विकास प्रक्रिया बाधित होती है। गुर्जर आन्दोलन इसका उदाहरण है।

भारत में राजनीति में जातियों के प्रवेश से जाति का राजनीतिकरण हो रहा है। अत: राजनीति में जातीय मुद्दे ही महत्वपूर्ण हो गए हैं तथा अन्य राष्ट्रीय हित के मुद्दे पीछे छूट गए हैं। अत: राष्ट्रीय एकता, अखण्डता तथा हित को चोट पहुँच रही है।

5. ***भ्रष्टाचार (Corruption)***- जातिवाद, प्रशासनिक, राजनीतिक भ्रष्टाचार का प्रमुख कारण बन गया है। प्रशासनिक अधिकारी नियुक्तयों के मामले में जातीय हित को ध्यान में रखते हैं जो कि भ्रष्टाचार का प्रमुख कारण बनता है। राजनीतिक स्तर पर जातीय हित को ध्यान रखने पर भी भ्रष्टाचार को बढ़ावा मिलता है तथा यह स्वयं भ्रष्टाचार का एक रूप है।

जातिवाद को दूर करने के उपाय (Ways to Eliminate Casteism)

भारत में जातिवाद की समस्या के समाधान के लिए संवैधानिक, कानूनी एवं विकासात्मक उपाय किए गऐ हैं। संविधान में जाति सूचक शब्दों का प्रयोग बंद कर दिया गया है इसके अलावा कानूनी कार्यवाही और विभिन्न मुकद्मों की सुनवाई के दौरान वादी एवं प्रतिवादी का केवल नाम ही प्रयोग किया जाता है और उनकी जाति का उल्लेख नहीं किया जाता। जातिवाद को समाप्त करने एवं विभिन्न जातीय समूहों के बीच अंत:क्रिया (Interaction) बढ़ाने के क्रम में अंतरजातीय विवाहों (Intercaste Marriage) को प्रोत्साहित किया जा रहा है। हिन्दू विवाह अधिनियम के तहत विभिन्न जातियों के बीच विवाह को मान्यता दी गई है। संविधान में व्यवसायिक निर्योग्यता को समाप्त कर दिया गया है। अब प्रत्येक जाति अपनी क्षमता एवं रूचि के अनुरूप व्यवसाय का चयन कर सकती है।

भारतीय संविधान सभी प्रकार की असमानता को प्रतिबन्धित करते हुये सभी नागरिकों को चाहे वह किसी भी जाति के हों समानता का अधिकार देता है और अस्पृश्यता जैसे जातीय निर्योग्यताओं को प्रतिबन्धित कर जातीय समरसता को प्रोत्साहित करता है।

निम्न एवं पिछड़ी जातियों के उत्थान एवं उनके प्रति भेद भाव को कम करने के लिए उनके सामाजिक एवं आर्थिक विकास की व्यवस्था के क्रम में उन्हें शिक्षण संस्थान एवं सरकारी नौकरियों में आरक्षण दिया गया है। इसके अलावा इनके लिए अलग से छात्रवृत्ति दी जाती है और रोजगार कार्यक्रम भी चलाए जा रहे हैं। राजनीति में इनके पर्याप्त प्रतिनिधित्व के लिए स्थानीय निकायों तथा संसद एवं राज्य विधान सभाओं में अनुसूचित जातियों के लिए स्थान आरक्षित किए गए हैं।

विभिन्न कानूनी उपायों के साथ ही जातिवाद दूर करने के सामाजिक प्रयास भी होते रहे हैं। आरम्भिक समाज सुधारकों ने जातीय समानता पर बल देकर जाति में व्याप्त असमानता को कम करने का प्रयास किया है। आज बहुत सारे गैर सरकारी संगठन एवं स्वयं सेवी संगठन जातिवाद के विरुद्ध व्यापक प्रचार अभियान चला रहे हैं। आज की आर्थिक प्रणाली विभिन्न जातियों को नजदीक लाकर जातिवाद को दूर कर रही है साथ ही आधुनिक शिक्षा प्राप्त युवा वर्ग भी जातिवाद के प्रति बहुत कठोर नहीं है और वह जातीय प्रतिबन्धों को मान्यता नहीं देता। प्रेम विवाह भी अंतर्जातीय विवाहों को प्रोत्साहित कर जातिवाद के उन्मूलन में सहायक रहा है।

मूल्यांकन (Evaluation)

उपरोक्त तथ्यों के आधार हम देखते हैं कि जातिवाद समकालीन भारतीय समाज की प्रमुख सामाजिक समस्या है। इसके निवारण के लिए सरकारी एवं गैर सरकारी स्तर पर प्रयास किए जा रहे हैं और उन प्रयासों का काफी हद तक सकारात्मक प्रभाव पड़ा है परिणामत: जातिवाद में कमी आई है। संवैधानिक उपायों के तहत व्यवसायिक निर्योग्यता की समाप्ति, अवसर की समता आदि उपायों से विभिन्न जातियों के लोग विभिन्न व्यवसाय बिना किसी भेदभाव के करते देखे जा सकते हैं। उच्च पदों के लिए साक्षात्कार के दौरान जातीय चिन्हों के न प्रयोग होने से जाति पर आधारित भेदभाव की संभावना कम हुई है। हिन्दू विवाह अधिनियम से विभिन्न जातियों के बीच विवाह से जातिवाद की गहनता में कमी आ रही है क्योंकि अर्न्तजातीय विवाह बढ़े हैं। संरक्षी विभेदीकरण (Protective Discrimination) की नीति के तहत निम्न एवं दुर्बल जातियों का सशक्तीकरण हो रहा है तथा भविष्य में जातीय शोषण एवं जातिवाद में कमी की संभावना बढ़ रही है। इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतीय समाज में जातिवाद की समस्या काफी हद तक कमजोर हो रही है किन्तु यह समस्या अभी भी समाज में बनी ही नहीं हुई है बल्कि नए रूप में आ रही है। यद्यपि अश्पृश्यता तथा व्यवसायिक निर्योग्यता की समाप्ति संवैधानिक स्तर पर की गई है पर व्यवहार में अभी भी जातीय शोषण कभी कभी समाज में दिखाई पड़ता है संरक्षी विभेदीकरण की नीति के तहत निम्न जातियाँ सशक्त हुई हैं, किन्तु उनमें एक नए प्रकार की जातीय चेतना उत्पन्न हो रही है तथा वे अपना संगठन बनाने लगी हैं तथा अन्य उच्च जातियों के प्रति ईर्ष्या एवं जातिवाद की भावना से ग्रसित हो रही हैं। इसी क्रम में उच्च जातियाँ भी इनसे ईर्ष्या करने लगी हैं वर्तमान में राजनीति जाति पर आधारित हो गयी है तथा वहाँ जातिवाद बढ़ता हुआ दिखाई दे रहा है। विभिन्न जातीय संगठन इसे बढ़ाने में मददगार साबित हो रहे हैं। उपरोक्त कमियों के आलोक में निम्न सुझाव दिये जा सकते हैं:-

1. जातीय संगठन जातिवाद को बढ़ाने में प्रमुख भूमिका निभा रहे हैं तथा जातीय निष्ठा का भावात्मक एवं राजनीतिक शोषण करते हुए

राजनीतिक लाभ उठा रहे हैं। जातिवाद की समस्या के समाधान के लिए इन जातीय संगठनों पर रोक लगानी चाहिए अथवा इनके उन व्यवहारों पर नियंत्रण लगाना चाहिए जो जातिवाद को बढ़ावा देते हैं।

2. जातिवाद को समाप्त करने के लिए अन्तर्जातीय विवाहों को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए। जिससे विभिन्न जातियों के बीच सामाजिक अंत:क्रिया में वृद्धि हो और सजातीय हितों के प्रति चेतना में कमी आए। इससे जातिवाद की गहनता में कमी आएगी।
3. पिछड़े जातियों की सामाजिक, आर्थिक दशा में सुधार के उपाय करने चाहिए। विकास की प्रक्रिया में शामिल होने पर उनके भीतर जातीय संकीर्णता जन्म नहीं लेगी और जातिवाद की सघनता में कमी आएगी।
4. जातिवादी प्रवृत्ति अशिक्षित एवं अतार्किक संकीर्ण मानसिकता के कारण उत्पन्न होती है। अत: शिक्षा में ऐसे तत्वों को शामिल करना चाहिए जिससे जातिवादी मूल्यों को ठेस पहुँचे। इसके अतिरिक्त जातिवादी प्रवृत्ति के उन्मूलन के लिए विभिन्न प्रचार माध्यमों द्वारा जनमत तैयार करना आवश्यक है।
5. संचार साधनों और गैर सरकारी संगठनों को भी जातिवाद के उन्मूलन हेतु प्रोत्साहित करना चाहिए जिससे वे जातिवाद के विरूद्ध आधार स्तर पर जागरूकता का विकास कर सकें और राष्ट्रीय समानता व एकता की भावना का प्रचार करते हुए युवा मानसिकता को जातिवाद के विरोध में संगठित कर सकें।

भारत में जाति एवं राजनीति
(Caste and Politics in India)

जाति भारत की एक प्रमुख विशेषता है जो सोपान पर आधारित ऊँच एवं नीच के क्रम में विद्यमान रही है। जाति ने भारतीय समाज के लगभग सभी पक्षों को प्रभावित किया है। इन पक्षों में राजनीति एक प्रमुख पक्ष रहा है।

राजनीति में जाति की भूमिका
(Role of Caste in Politics)

जातिवाद भारत की एक प्रमुख प्रचलित विचारधारा है जिसकी मान्यता है कि जाति सामुदायिक संगठन (Community Organization) का एक मात्र आधार है। इसकी मान्यता है कि एक जाति के लोगों के हित एक जैसे होते हैं तथा अन्य जातियों के हितों से उसका कोई मेल नहीं होता। निश्चित रूप से जाति भारतीय सामाजिक जीवन का एक महत्त्वपूर्ण पहलू है और भारतीय सामाजिक जीवन के विभिन्न क्षेत्रों के साथ-साथ इसने राजनीति को भी कई रूपों में प्रभावित किया है। भारतीय राजनीति में जाति की भूमिका को निम्न रूपों में देखा जा सकता है:–

1. विभिन्न चुनावी क्षेत्रों में राजनीतिक दलों द्वारा जातीय समीकरण के आधार पर अपना उम्मीदवार तय किया जाता है।
2. सरकार गठन के समय विभिन्न जातीय समूहों को उचित प्रतिनिधित्व प्रदान करने का प्रयास किया जाता है।
3. जातीय राजनीति की शुरूआत ने कई राजनीतिक दलों के प्रति आम जनता में यह भाव उत्पन्न किया है कि अमुक दल किसी जाति विशेष का प्रतिनिधित्व करता है।
4. कई राजनीतिक दलों द्वारा चुनावों के समय वोटों की लामबंदी हेतु विभिन्न जातियों को उकसाने का प्रयास किया जाता है।

जाति में राजनीति की भूमिका
(Role of Politics in Caste)

राजनीति में जाति की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। पर, इसका तात्पर्य यह नहीं है कि जाति और राजनीति के बीच सिर्फ एक तरफा संबंध होता है। राजनीति भी जातियों को राजनीति के अखाड़े में लाकर जाति व्यवस्था और जातिगत पहचान को प्रभावित करती है। इस तरह, सिर्फ राजनीति ही जातिग्रस्त नहीं होती बल्कि जाति भी राजनीतिग्रस्त हो जाती है। ऐसी स्थिति में यह अनेक रूप लेती है जैसे:–

1. प्रत्येक जाति खुद को बड़ा बनाना चाहती है। इसलिए पहले वह अपने समूह की जिन उपजातियों को छोटा या नीचा बताकर अपने से बाहर रखना चाहती थी, अब उन्हें एक साथ लाकर संख्या बल प्राप्त करने की कोशिश करती है।
2. चूंकि एक जाति केवल अपनी संख्या बल से सत्ता पर कब्जा नहीं कर सकती, इसलिए वह ज्यादा राजनीतिक ताकत पाने के लिए दूसरी जातियों या समुदायों को साथ लेने की कोशिश करती है और इस तरह उनके बीच संवाद और मोल-तोल होता है।
3. समकालीन राजनीति में नए किस्म की जातिगत गोलबंदी भी हुई है, जैसे 'अगड़ा' और 'पिछड़ा'।
4. सार्वजनिक वयस्क मताधिकार तथा एक व्यक्ति एक वोट की अवधारणा ने सभी मतदाताओं के वोटों को समान महत्त्व प्रदान कर निम्न जातियों में राजनीतिक चेतना के विकास को संभव बनाया है।
5. चुनावी लाभ हेतु जातियों को राजनीतिक दलों द्वारा उकसाये जाने की घटना कभी-कभी जातीय संघर्ष का कारण बन जातिगत समूहों को नकारात्मक रूप से प्रभावित करती है।

इस प्रकार भारत में जाति एवं राजनीति के मध्य दोआयामी संबंध परिलक्षित होते हैं, जहाँ दोनों परस्पर एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं। साथ ही ये प्रभाव कई स्तरों पर सकारात्मक हैं तो कई स्तरों पर नकारात्मक भी हैं। विभिन्न जातियों में एकता एवं सुदृढ़ता का

विकास, निम्न जातियों में राजनीतिक चेतना की वृद्धि तथा जातिगत गतिशीलता की दृष्टि से यह लाभकारी प्रतीत होता है। वहीं जातीय संघर्ष एवं तनाव के रूप में यह नकारात्मक भी है। अत: आवश्यक है कि भारत में जाति एवं राजनीति दोनों को सही दिशा देते हुए जाति के राजनीतिकरण तथा राजनीति के जातिकरण की स्थिति से बाहर निकलकर राष्ट्रीय एवं विकासात्मक मुद्दों के आधार पर राजनीति को प्रोत्साहित किया जाए।

भारत में समानता एवं जाति आधारित आरक्षण
(Equality and Caste based Reservation in India)

एक आधुनिक मूल्य के रूप में समानता का अर्थ मानव मात्र के बीच किसी भी प्रकार के विभेद के अभाव से है। समानता के अंतर्गत सभी व्यक्तियों के लिये अवसरों पर समान अधिकार उपलब्ध कराने का विचार निहित है।

भारत में प्राचीनकाल से ही विभिन्न जातियों की विद्यमानता रही है तथा वर्ण मॉडल के तहत ये जातियाँ विभिन्न स्तरों पर अवस्थित रहीं हैं। जातिगत सोपान पर आधारित इस व्यवस्था में उच्च तथा निम्न जातियों के मध्य असमानता रही है तथा निचले स्तर पर अवस्थित जातियों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति निम्न बनी रही है। उच्च जातियों को बहुत से सामाजिक विशेषाधिकार प्राप्त थे जिससे उनकी प्रतिष्ठा बहुत ऊंची थी और साथ ही समाज के संसाधनों और अवसरों पर उनका नियंत्रण था। निम्न जातियों पर कई निर्योग्यताएं थोपते हुए, उन्हें विकास के सभी अवसरों से वंचित कर दिया गया था। उच्च जातियों द्वारा निम्न जातियों का लगातार शोषण होता रहा और उन पर तरह-तरह के अत्याचार किए जाते रहे हैं। जिससे इनकी स्थिति में लगातार गिरावट होती रही और ब्रिटिश काल में निम्न जातियाँ एक अत्यंत कमजोर और उपेक्षित वर्ग के रूप में देखी जाने लगी।

भारत ने औपनिवेशिक शासन से मुक्ति के पश्चात् एक लोकतंत्रात्मक समाजवादी राष्ट्र के निर्माण का लक्ष्य रखा। वर्षों से समाज के निचले पायदान पर अवस्थित तथा शोषित वर्ग को सामाजिक न्याय के माध्यम से समाज में उचित स्थान सुनिश्चित कराना इसका महत्त्वपूर्ण उद्देश्य था। अत: यह आवश्यक था कि सभी लोगों को जीवन के सभी क्षेत्रों में समान अवसर उपलब्ध कराते हुए दुर्बल वर्गों हेतु विशेष व्यवस्था की जाए ताकि हम एक आधुनिक समतामूलक भारत निर्माण का लक्ष्य प्राप्त कर सकें। सामाजिक समानता एवं सामाजिक न्याय की इसी आवश्यकता को ध्यान में रखकर विभिन्न वर्गों एवं जातियों के उत्थान हेतु विभिन्न रूपों में प्रयास किए गए।

भारतीय संविधान विभिन्न अनुच्छेदों के माध्यम से सामाजिक समानता के लक्ष्य की प्राप्ति हेतु उपबंध करता है। इन्हें दो भागों में बांटकर देखा जा सकता है। पहला भाग अवसरों की औपचारिक समानता से संबंधित है। इसके अंतर्गत संविधान जाति, लिंग, जन्मस्थान, धर्म आदि के आधार पर सभी को समान अवसर उपलब्ध कराता है। संविधान की उद्देशिका में वर्णित 'प्रतिष्ठा एवं अवसर की समानता' तथा 'सामाजिक न्याय' जैसे शब्दों के माध्यम से सामाजिक असंतुलन दूर कर सभी को समान अवसर की उपलब्धता की प्रतिबद्धता व्यक्त की गई है। संविधान के अनुच्छेद 14, 15 एवं 16 के द्वारा सभी व्यक्तियों को जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में समानता के अवसर उपलब्ध कराए गए हैं। साथ ही अनुच्छेद 17 के तहत अस्पृश्यता को समाप्त करने का प्रावधान किया गया है।

इसका दूसरा भाग संरक्षणात्मक भेदभाव (Protective Discrimination) की नीति से संबंधित है। भारत में लम्बे समय से शोषण एवं असमानता के शिकार समूहों को एक विशेष श्रेणी में श्रेणीबद्ध कर उन्हें विशेष कल्याणकारी सुविधाएँ उपलब्ध कराने का प्रावधान किया गया है। इन वर्गों को आरक्षण के माध्यम से सामाजिक जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में अन्य वर्गों के समकक्ष लाने का प्रयास किया गया है। इसके तहत इनके लिए विभिन्न शिक्षण संस्थानों, नौकरियों तथा संघीय व राज्य विधान मंडलों में सीटों का आरक्षण किया गया है। अनुच्छेद 330, 332 तथा 335 इसी से संबंधित है। अनुच्छेद 46 के द्वारा राज्य को यह स्पष्ट निर्देश दिया गया है कि वह दुर्बल वर्ग के सभी व्यक्तियों के आर्थिक एवं शैक्षणिक हितों का संवर्द्धन करे तथा उन्हें सभी प्रकार के अन्याय एवं शोषण से बचाने का प्रयास करे।

सरकार द्वारा इसके अतिरिक्त विभिन्न योजनागत प्रयासों के माध्यम से सामाजिक समानता स्थापित करने का प्रयास किया गया है। विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं के निर्माण में समाज के दुर्बल वर्ग के हितों को ध्यान में रखकर कार्यक्रमों का निर्माण किया जाता है, ताकि इन वर्गों का सामाजिक-आर्थिक उत्थान सम्भव हो और यह वर्ग समतापूर्ण सामाजिक जीवन व्यतीत कर सके।

निश्चित तौर पर उपरोक्त प्रयासों के परिणामस्वरूप सदियों से निम्न स्तर का जीवन-यापन कर रहे एवं सामाजिक असमानता के शिकार वर्गों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति में अपेक्षित सुधार हुआ है। जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में उच्च प्रस्थितियों को प्राप्त करने के उपरांत इनकी सामाजिक प्रतिष्ठा में भी वृद्धि हुई है। इनकी स्थिति में इस सकारात्मक परिवर्तन के लिए उपरोक्त प्रयासों के अतिरिक्त कई अन्य तत्व भी भागीदार रहे हैं जिनमें संचार साधनों का विकास, वैज्ञानिक एवं तार्किक दृष्टिकोण का विकास, शिक्षा का प्रसार, आधुनिक मूल्यों का प्रसार आदि प्रमुख रहे हैं। परंतु अभी भी हम एक समानतापूर्ण एवं न्याययुक्त समाज के निर्माण के लक्ष्य की प्राप्ति से दूर हैं।

अत: आवश्यक है कि सामाजिक समानता एवं सामाजिक न्याय की स्थापना के लक्ष्य की प्राप्ति हेतु उपरोक्त प्रयासों को निरंतर जारी रखा जाए। सरकार के अतिरिक्त आम जनता के स्तर पर भी इसके लिए प्रयास किए जाने की आवश्यकता है। साथ ही यह भी

आवश्यक है कि समाज के दुर्बल वर्गों को अपने अधिकारों के प्रति जागरूक किया जाए।

जाति आधारित आरक्षण के पक्ष में तर्क (Arguments in favour of Caste based Reservation)

भारत में जाति के आधार पर आरक्षण के पक्ष में निम्नांकित तर्क दिए जाते हैं:–

1. ये संविधान की अनिवार्य आवश्यकता (Mandatory Requirement) की पूर्ति करते हैं जिसमें समाज के उन वर्गों को संतुष्ट करना है जिनमें कई दशकों से अन्दर ही अन्दर असंतोष उत्पन्न रहा था।
2. हमारा यह नैतिक एवं सामाजिक कर्त्तव्य है कि यह सुनिश्चित करें कि उत्पीड़ित और दमित (suppressed) व्यक्तियों और धनाढ्य (affluent) व्यक्तियों में समाज में समता हो। शोषित व्यक्तियों में विश्वास की भावना भरी जाने की आवश्यकता है।
3. राष्ट्र की अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और पिछड़े वर्ग की 52% जनसंख्या का कुल 4.0% मात्र प्रथम श्रेणी सरकारी और राजकीय क्षेत्र में प्रतिनिधित्व है। यह कमजोर वर्गों के साथ नितांत अन्याय है जिसको ठीक करने की आवश्यकता है।
4. आरक्षण विरोधियों का एक तर्क योग्यता के प्रश्न पर आधारित है। इनका मानना है कि योग्यता उच्च जातियों में ही निवास करती है, परन्तु भारतीयों के विरूद्ध अंग्रेजों के ऐसे ही तर्क को हम पूर्व में ही खारिज कर चुके हैं तथा बिना अवसर प्रदान किए योग्यता पर प्रश्न चिह्न उठाना उचित नहीं है।

जाति आधारित आरक्षण के विरोध में तर्क (Arguments against Caste based Reservation)

भारत में जाति आधारित आरक्षण की कई आधारों पर तीखी आलोचना हुई है। इसके विरूद्ध पांच प्रमुख तर्क दिए गए हैं:-

1. 'पिछड़ेपन की परिभाषा केवल जाति के आधार पर की गयी है। इससे घृणास्पद जाति संबंधी पूर्वाग्रह और पक्षपात जो (जाति) व्यवस्था में प्रचलित है बने रहेंगे। कोई भी विशेष प्रावधान समस्त निर्धन व्यक्तियों के लिए बगैर जाति का ध्यान किए होना चाहिए और केवल आर्थिक मानदंडों पर आधारित होना चाहिए। इसके अतिरिक्त दूसरी पिछड़ी जातियों/वर्गों का पता लगाने के लिए केवल 'जाति' के एक मापदण्ड का उपयोग बहुल (multiple) मापदण्डों जैसे धर्म, आय, व्यवसाय और किसी मोहल्ले में मकान (जिन पर कई विद्वानों ने बल दिया है) के महत्व को कम करता है।
2. यद्यपि 'जाति' की परिभाषा करने के लिए बहुत प्रयत्न किए गए, 'वर्ग' की कोई परिभाषा नहीं दी गयी और समाजशास्त्रीय दृष्टि से जाति और वर्ग दो पृथक श्रेणियाँ है। इसलिए मंडल रिपोर्ट ने अधिक से अधिक 'अन्य पिछड़ी जातियों' का और न कि 'अन्य पिछड़े वर्गों' का पता लगया जिसकी आवश्कता थी।
3. अन्य पिछड़ी जातियां/वर्गों की पहचान करने का मापदण्ड अनियमित, ऊटपटांग और राजनीति से प्रेरित है। यह विशुद्ध वैज्ञानिक विधि पर आधारित नहीं है। मंडल कमीशन को जाति/वर्ग के सामाजिक, शैक्षिक, और आर्थिक पिछड़ेपन को ज्ञात करने के लिए जो ग्यारह सूचक अपनाए इनमें अच्छे सूचकों की विशेषताओं का अभाव है। उदाहरणार्थ, सामाजिक सूचक जो अल्प आयु में विवाह के मापदण्ड से संबंधित हैं किसी विशेष जाति या वर्ग में ही नहीं पाया जाता, अपितु यह एक अत्यन्त पुरानी सामाजिक बुराई है जो साधारणतया सभी जातियों और वर्गों में पायी जाती है। इसलिए इसको जातियों और वर्गों में एक दूसरे में भेद प्रदर्शित करने के लिए सूचक के रूप में काम में नहीं लिया जाना चाहिए था। इसी प्रकार श्रम में स्त्रियों की भागीदारी वाले सामाजिक सूचक को एक आर्थिक सूचक माना जाना चाहिए क्योंकि स्त्रियों को अपनी पारिवारिक आय बढ़ाने के लिए काम करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त ग्रामीण महिलाओं में अपने परिवार के खेती के कार्यों में सहायता करने की एक आम प्रवृत्ति होती है और यह किसी विशेष जाति अथवा वर्ग से सम्बन्धित नहीं है।

इस प्रकार एक व्यक्ति को 'शैक्षिक रूप से पिछड़ा' माना जाता था यदि उसके पिता और दादा ने प्राथमिक स्तर से आगे अध्ययन नहीं किया है। उसको 'सामाजिक दृष्टि से पिछड़ा' माना जाता था यदि (हिन्दू होने की अवस्था में) वह तीन द्विज वर्णों में नहीं आता था, यानि कि वह ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य नहीं था, और/या (गैर-हिन्दू होने की अवस्था में) वह उन हिन्दू जातियों में धर्मान्तरित (convert) था जिन्हें सामाजिक रूप से पिछड़ा हुआ परिभाषित किया हुआ है या उसके पिता की आय निर्धनता रेखा से नीचे थी। क्या ये विस्तृत जांच-पड़तालें वास्तव में की गयी थीं? प्रमाण इसे नहीं दर्शाता है।

अधिकतम निरुत्साह करने वाला भाग आर्थिक सूचकों का चयन है जहां प्रति व्यक्ति पारिवारिक आय को बिल्कुल ही छोड़ दिया गया है। परिवारिक सम्पत्ति और उपभोक्ता ऋण उनके व्यय को बतलाते हैं और यह इस पर निर्भर करता है कि उनके परिवार बड़े या छोटे हैं या वे सामाजिक परंपराओं को अधिक निभाते हैं और अक्सर ऋण लेते रहते हैं।

अन्त में, वह आर्थिक सूचक जिसमें पानी के स्रोत पर विचार किया गया है एक बहिर्जात (exogenous) कारक से सम्बन्धित है, न कि किसी विशेष जाति या वर्ग से। इस प्रकार जबकि जातियों/वर्गों के पिछड़ेपन की पहचान सही सूचकों पर आधिरित नहीं है तो आरक्षण को बढ़ाने के प्रयत्नों को स्वीकृति नहीं मिल सकती।

4. 'पिछड़े' वर्ग की परिभाषा और पहचान करना अवैज्ञानिक है। मंडल आयोग ने 3,742 वर्गों को 'पिछड़ा' माना, जबकि कालेलकर समिति ने लगभग 2000 वर्गों को। इससे प्रकट होता है कि या तो समिति ने सही पहचान नहीं की या लाभ उठाने के उद्देश्य से दूसरी जातियों की एक बड़ी संख्या ने बाद में अपने को पिछड़ी जातियों में वर्गीकृत कराने के लिए संघर्ष किया।

5. जातियों के वर्गीकरण का जनसंख्या प्रक्षेपण (projection) 1931 की जनगणना के आंकड़ों के उपयोग पर आधारित था। 1931 और 1990 के बीच औद्योगीकरण, नगरीकरण, शैक्षिक विकास, प्रवृजन और गतिशीलता में तेज वृद्धि के कारण कई परिवर्तन आये हैं। इसलिए मंडल आयोग द्वारा 1980 में अपनाया गया पुरानी जनगणना का आधार, अपनाये गये मानदण्डों का एक विकृत चित्र प्रस्तुत करता है। स्वतंत्रता के पश्चात् किये गये भूमि सुधारों ने विभिन्न जातियों को सामाजिक और शैक्षिक स्थिति में बहुत परिवर्तन कर दिया है और वे ग्रामीण अभिजन का एक महत्वपूर्ण अंग बन गए।

6. दूसरा गलत अनुमान जो मंडल अयोग ने लगाया वह यह था कि गैर-हिन्दुओं में अन्य पिछड़ी जातियों/वर्गों का वही अनुपात था जो हिन्दुओं में था। गैर-हिन्दू अन्य पिछड़ी जाति/वर्गों का अनुपात कुल जनसंख्या का 8.40% माना गया था या उनकी वास्तविक जनसंख्या का 52.0%। 8.40% और 52.0% की दोनों संख्याएं मनमाने ढंग से ली गयी थीं। यह इस रिपोर्ट की पद्धतिशास्त्रीय एवं आधारभूत त्रुटि है।

7. सामाजिक-शैक्षणिक क्षेत्र के सर्वेक्षण के लिए प्रतिचयन प्रणाली अत्यंत त्रुटिपूर्ण थी उसमें प्रत्येक जिले से दो गांवों और एक शहरी ब्लॉक का चयन करना था। ऐसा प्रतिदर्श जो केवल 1.0% जनसंख्या को ही सम्मिलित करता हो, अत्यन्त संदेहास्पद है।

8. पिछड़ेपन के मानदण्डों को निर्धारित करते समय, आर्थिक मानदण्डों को दिया गया महत्व बहुत अपार्याप्त था। जातियों/वर्गों के वर्गीकरण के लिए मंडल आयोग द्वारा निर्धारित किए गये 22 अंकों में से कवेल चार अंक आर्थिक मानदण्डों को दिए गए। इससे यह स्पष्ट होता है कि एक वर्ग के 'पिछड़ेपन' को निर्धारित करते समय उसकी आर्थिक स्थिति को अधिक महत्व नहीं दिया गया।

9. भारतीय संविधान ने 'पिछड़े वर्ग' की परिभाषा नहीं की है, परन्तु उसमें 'पिछड़े वर्गों की स्थितियों के अन्वेषण के लिए एक आयोग की नियुक्ति का प्रावधान है। वह इसको अनिवार्य नहीं बनाता कि सरकार आयोग से पिछड़े वर्गों की पहचान करने को कहे। मंडल अयोग के अध्यक्ष ने जो स्वयं एक पिछड़ी जाति के सदस्य थे और जो अपने राजनीतिक जीवन में पक्षपातपूर्ण वक्तव्य देने के लिए प्रसिद्ध रहे, पिछड़ी जातियों/वर्गों को पहचानने के लिए जो सूचक काम में लिए और उन्हें अंक प्रदान किये उसमें उनकी भूमिका पक्षपातपूर्ण रही। चूंकि गहन अन्वेषण और सर्वेक्षण नहीं किया गया और सही मानदण्डों का प्रयोग नहीं किया गया इसलिए जातियों/वर्गों के चयन का मंडल आयोग का आदेश नहीं माना जा सकता। स्वयं आयोग ने स्वीकार किया था कि वर्गों को सामाजिक और शैक्षिक रूप में सूचीबद्ध कुछ मनमाने ढंग से किया गया है और उसमें समर्थनीय दृष्टिकोण के गुण के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है।

10. जनसंख्या विकास की स्थिर दर का अनुमान कैसे लगाया गया और प्रतिशतता कैसे अपनायी गयी? एक दम से 27.0% कैसे निर्धारित की गयी? सरकार से आरक्षण की समग्रता पर विचार करने की आशा की जाती है जिसमें अनुसूचित जातियाँ, अनुसूचित जनजातियाँ, विकलांग व्यक्ति, भूतपूर्व सैनिक, विस्थापित व्यक्ति और दूसरी विशेष श्रेणियाँ सम्मिलित हैं। इन सबको जब मंडल आयोग की सिफारिश किए हुए 27.0% से जोड़ देते हैं तो आरक्षण 59.0% से भी अधिक हो जाता है। बची हुई प्रतिशतता इतनी कम रह जाती है कि इस अनुभाग के विद्यार्थी और युवाओं को प्रतिक्रिया व्यक्त करने और आन्दोलन चलाने के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं रह जाता। अत: आरक्षण लाभकर रोजगार प्राप्त करने में रूकावट सिद्ध होता है।

11. मंडल आयोग की रिपोर्ट को दस वर्षों तक कोई महत्व नहीं दिया गया। जब किसी रिपोर्ट पर इतने समय बाद विचार किया जाता है तो उसका अद्यतन बनाना चाहिए और परिवर्तित आवश्यकताओं और उसमें कमियों के बारे में उसका परीक्षण होना चाहिए। फिर यह भी आकलन होना चाहिए कि उसे स्वीकृत करने के क्या परिणाम होंगे। यह एक निश्चित समय में किया जाता है। जिस वी.पी. सिंह सरकार ने मंडल आयोग की रिपोर्ट की स्वीकृति की घोषणा की, उसने इस प्रक्रिया को पूरा करने की चिन्ता ही नहीं की जिसके फलस्वरूप उसमें कमियों के कारण हिंसा और आंदोलन हुए।

12. संविधान में यह व्यवस्था दी गयी है कि एक वर्ग जो राज्य की सेवाओं में पर्याप्त प्रतिनिधत्व रखता है, को 'पिछड़ा' वर्गीकृत नहीं किया जा सकता। यह कार्य सरल नहीं है क्योंकि इस पहलू पर सांख्यकीय आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं, केवल भ्रांति उत्पन्न करने वाले आंकड़ों का एक पुंज (सेट) है जिसका आंकलन कुछ राज्यों के पिछड़े वर्गों की सूचियों के आधार पर किया गया है।

13. मंडल आयोग की रिपोर्ट के क्रियान्वयन का एक परिणाम यह हुआ कि चूंकि मंडल आयोग रिपोर्ट ने 27.0% आरक्षण को प्रत्येक पिछड़ी जाति के कोटा के रूप में विभाजित नहीं किया है, इसमें 27.0% के आरक्षण का अधिकांश भाग उन थोड़ी सी जातियों द्वारा हथिया लिया जाएगा जो पिछड़ी जातियों में प्रबल हैं। इन थोड़ी प्रबल जातियों में भी कुछ ही परिवार ऐसे होंगे जो

कि अपने पिछड़े भाईयों की कीमत पर समृद्ध बनेंगे। अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए आरक्षण नीतियों के पूर्व में हुए क्रियान्वयन से यह अनुभव हो चुका है। मंडल आयोग रिपोर्ट में इसकी कोई सीमा नहीं है कि एक परिवार के कितने सदस्य आरक्षण का लाभ उठा सकते हैं और न ही उसमें कोई आर्थिक मापदण्ड है जो कि सम्बन्धित जाति के सबसे अधिक समृद्ध व्यक्ति को आरक्षण कोटा से लाभ उठाने से वंचित करें।

जाति आधारित जनगणना (Caste based Census)

29 जून, 2011 को बहुप्रतीक्षित जाति आधारित जनगणना की शुरूआत त्रिपुरा के हाजेमारा/हेजामारा के जनजातीय गांव संखोला से हुई। 1931 की आखिरी जनगणना के बाद यह पहली जाति आधारित जनगणना है, दूसरे शब्दों में यह आजादी के बाद पहली जाति आधारित जनगणना है। यहां उल्लेखनीय है कि सरकार का यह तीसरा मौका है जब किसी बड़े कार्यक्रम की शुरूआत किसी आदिवासी क्षेत्र से हुई है। पहले यूनिक आइडेंटिफिकेशन नम्बर की शुरूआत महाराष्ट्र के नंदूरवार जिले के हेभली गांव से तथा राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन की शुरूआत राजस्थान के बांसवाड़ा (आदिवासी क्षेत्र) से की गई।

जनगणना राज्य सरकारों द्वारा कराई जाएगी एवं ग्राम पंचायतों की मदद ली जाएगी। ग्रामीण बी.पी.एल. जनसंख्या के आंकड़ों को अंतिम रूप देने से पहले ग्राम सभाओं के सामने पेश किया जाएगा, ताकि वे अपना ऐतराज यदि हो तो दर्ज करा सकें। इसका अनुमोदन ग्राम सभा द्वारा किया जाएगा।

सकारात्मक प्रभाव (Positive Impact)

इस जनगणना से जातियों की स्पष्ट संख्या प्राप्त होगी, जिससे केंद्र प्रायोजित कल्याणकारी योजनाओं का उचित कार्यान्वयन हो सकेगा। साथ ही विभिन्न समुदायों की पूर्व संख्या स्पष्ट होने से, उनके विकास हेतु विशेष कल्याणकारी कार्यक्रमों का कार्यान्वयन करने में यह सहायक सिद्ध होगी। यह जनगणना आरक्षण के संदर्भ में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करेगी।

नकारात्मक प्रभाव (Negative Impact)

इस जनगणना से कई नकारात्मक परिणाम भी उत्पन्न हो सकते हैं। इससे समाजिक विद्वेष की भावना का विकास होगा। पिछड़ा वर्ग का फायदा उठाने के लिए जाति बदलकर दर्ज करवाने की सम्भावना बढ़ जाएगी। इसके अतिरिक्त जाति आधारित राजनीति को भी बल मिलेगा।

मूल्यांकन (Evaluation)

आजादी के बाद की पहली चिरप्रतिक्षित, बहुउद्देशीय और विवादस्पद जाति आधारित जनगणना सम्पन्न हो चुकी है। प्रथमतः इस जनगणना का उद्देश्य निर्धनता के नीचे के लोगों (BPL) की ठीक-ठीक पहचान कर उनके कल्याणार्थ विभिन्न योजनाओं व प्रावधानों के तहत उनके हितों की रक्षा करना है। निश्चित रूप से भारत जैसे राष्ट्र, जहां की लगभग एक-चौथाई जनसंख्या गरीबी में गुजर-बसर करती हो, के लिए यह एक महत्वपूर्ण कार्यक्रम साबित होगा। तदोपरांत भारत के नियोजन कार्यक्रमों में भी सहुलियत होगी और देश में व्याप्त आर्थिक असमानता की बड़ी खाई को पाटने में कुछ हद तक यह जनगणना मददगार साबित होगी।

लेकिन भारत जैसे जनाधिक्य वाले राष्ट्र और इसके तुरंत पूर्व हुई क्रमिक दसवर्षीय जनगणना, (15वीं जनगणना, 2011), जाति आधारित जनगणना के विभिन्न उद्देश्यों के प्राप्ति की ओर भी इशारा करती है। जातिगत जनगणना प्रारंभ होने से पूर्व भारत की संसद, राजनीतिज्ञों और समाज में जो विवादास्पद बहस और चर्चाएं हुईं, वह जगजाहिर है। तथा दो-दो जनगणना में होने वाले खर्चों के औचित्य-अनौचित्य पर भी प्रश्न चिह्न समाज में बहस का कारण बनी है।

साथ ही इस जनगणना के दौरान सही-सही निर्धन लोगों की पहचान के विभिन्न पक्षों को ध्यान में रखना जैसे-मोटरवाहन, क्रेडिट कार्डधारक, पक्के मकान, रेफ्रीजिरेटर, टेलिफोन आदि की उपलब्धता-अनुपलधता की सही जानकारी मुश्किल प्रतीत होती है।

बावजूद इसके जातिगत जनगणना एक महत्वाकांक्षी कार्यक्रम है और लोकतांत्रिक देश में ऐसे कार्यक्रमों की आलोचना करना सही प्रतीत नहीं होता है। जहाँ एक ओर इस कार्यक्रम से सरकारी नियोजन प्रणाली व प्रावधानों के संचालन में गति आएगी तो वही दूसरी ओर उसके दूरगामी सुप्रभाव भी परिलक्षित होंगे।

भारत में जाति संघर्ष (Caste Conflict in India)

जाति द्वन्द या जाति-संघर्ष (Cast Conflict) वर्तमान भारतीय परिप्रेक्ष्य में एक गम्भीर समस्या या परिघटना के रूप में अभिव्यक्त हुआ है। इसका तात्पर्य विभिन्न जातियों या जातीय समूहों के बीच संघर्ष के उस प्रारूप से है, जिसमें वे सामाजिक या सामूहिक हितों का त्याग कर अपनी जातिगत हितों की पूर्ति के लिए एक-दूसरे के विरुद्ध संघर्षशील होते हैं। यह संघर्ष वैचारिक अथवा हिंसात्मक दोनों ही रूपों में अभिव्यक्त होता है, किन्तु इसकी हिंसात्मक प्रकृति ही सामाजिक जीवन के लिए ज्यादा खतरनाक होती है, जैसा कि हम झारखण्ड, बिहार तथा उत्तर प्रदेश जैसे राज्यों में उच्च और निम्न जातियों के बीच के संघर्षो में देख सकते हैं।

उल्लेखनीय है कि जाति व्यवस्था हमारी भारतीय सामाजिक व्यवस्था की एक अत्यन्त ही महत्वपूर्ण विशिष्टता है। प्रारम्भ से ही भारतीय समाज को धर्म, कर्म अथवा व्यवस्था की दृष्टि से जाति व्यवस्थागत सोपानिक रूप में स्तरीकृत (Stratified) किया गया है। इस सोपानिक व्यवस्था (Hierarchical System) में ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य द्विज जातियों के रूप में प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय स्थान

पर अवस्थित हैं तथा पिछड़ी व निम्न जातियों को 'शूद्र' के रूप में निम्नतम सामाजिक पायदान पर रखा गया है। चूंकि हमारी पारम्परिक सामाजिक व्यवस्था में धर्म तथा सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्यों द्वारा इस व्यवस्था को वैधता प्रदान की गयी थी, इसलिए यह एक सर्वमान्य व्यवस्था के रूप में चली आ रही थी और औपनिवेशिक काल के पूर्व तक हमारे समाज में जाति-द्वंद या जाति-संघर्ष जैसी कोई चीज दृष्टिगत नहीं हुई।

औपनिवेशिक काल के दरम्यान पश्चिमी सामाजिक व्यवस्था तथा मूल्यों से सम्पर्क, शिक्षा, संचार, औद्योगीकरण, तकनीकीकरण, नगरीकरण आदि के विकास तथा स्वतंत्रता, समानता और मौलिक अधिकारों के प्रति वैश्विक जागरूकता ने हमारी सामाजिक व्यवस्था के निम्न सोपानों पर स्थित जातियों को प्रभावित किया। परिणामतः वे अपनी सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक प्रस्थिति (Political Status) में उर्ध्वमुखी गतिशीलता (Upward Mobility) के प्रति जागरूक हुए और उन्हें समाज की उच्च जातियों द्वारा अपने शोषण का एहसास हुआ जिसकी परिणति क्रमशः जाति संघर्ष के रूप में अभिव्यक्त हुई।

जाति संघर्ष के कारण (Reasons for Caste Conflict)

भारत में जाति द्वंद विभिन्न कारकों का समेकित परिणाम रहा है, जिन्हें निम्नांकित रूप में स्पष्ट किया जा सकता है-

1. ***जाति व्यवस्था में निहित शोषण व कुरीतियाँ (Exploitation and evils inherent in Caste System) –*** हमारी परम्परागत जातिगत सोपानिक सामाजिक व्यवस्था पवित्रता तथा अपवित्रता जैसी धारणाओं पर आधारित रही है जिसमें धीरे-धीरे अस्पृश्यता, छुआछूत, भेदभाव आदि कुरीतियां प्रवेश करती चली गईं। परिणामतः जहां इन्होंने उच्च वर्गों को अपनी उच्च सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक प्रस्थिति को बनाए रखने में मदद की, वहीं निम्न तथा पिछड़ी जातियों का उच्च जातियों द्वारा शोषण को सामाजिक वैधता प्रदान की। जैसे ही अन्य कारकों ने पिछड़ी अथवा शोषित जातियों में जागरूकता पैदा की; वे अपने शोषण के विरुद्ध एकजुट होकर खड़े हो गए।

2. ***मूल्य व्यवस्था में परिवर्तन (Change in Value System) –*** परम्परागत सोपानिक व्यवस्था को परम्परागत धार्मिक, सामाजिक व सांस्कृतिक मूल्यों के द्वारा वैध ठहराया गया था। चूंकि निम्न पायदान पर अवस्थित जातियां उक्त मूल्यों से सहमत थीं। अतः विरोध या शोषण का कोई कारण उन्हें नहीं दिखाई पड़ता था। किन्तु, आधुनिक पश्चिमी मूल्यों के सम्पर्क ने उन्हें प्रभावित किया और फिर उन्हें अपनी सामाजिक व्यवस्था में निहित मूल्यों के शोषणकारी तथा विभेदकारी (Exploitative and Discriminatory) होने का आभास हुआ। फलतः वे अपने परम्परागत मूल्यों को त्यागकर आधुनिक मूल्यों को आत्मसात करने लगे और परम्परागत व्यवस्था के उच्च पदस्थ जातियों से उनका संघर्ष प्रारम्भ हो गया।

3. ***सामाजिक गतिशीलता की सम्भावना (Potential for Social Mobility) –*** आधुनिक मूल्यों के प्रसार ने लोकतांत्रिक, राजनीतिक व्यवस्था एवं योग्यता आधारित आर्थिक व्यवस्था में सामाजिक-आर्थिक रूप से निम्न पायदान पर अवस्थित जातियों को इस बात का एहसास दिलाया कि वे समाज में अपनी सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक प्रस्थिति में उर्ध्वाधर गतिशीलता लाकर अपनी प्रस्थिति में सुधार ला सकते हैं। चूंकि उच्च जातियां उनके इस उद्देश्य में सबसे बड़ी बाधक थीं फलतः दोनों के बीच संघर्ष स्वाभाविक हो गया।

4. ***संविधान द्वारा मौलिक अधिकारों की प्रत्याभूति (Fundamental Rights guaranteed by the Constitution) –*** स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् हमारा संविधान सभी व्यक्तियों को समानता तथा नागरिकों को समानता, स्वतंत्रता जैसे मौलिक अधिकारों की समान प्रत्याभूति करता है, साथ ही इन मौलिक अधिकारों के उल्लंघन के विरुद्ध संवैधानिक उपचारों का अधिकार प्रदान किए हैं। ये संवैधानिक प्रावधान जहाँ एक ओर निम्न जातियों के विकास और उर्ध्वाधर गतिशीलता में सहायक हुए हैं वहीं ये जातियाँ समाज की शोषक जातियों के विरुद्ध लामबंद और संघर्ष के लिए प्रेरित हुई है।

5. ***राजनीतिक दलों द्वारा स्वार्थ सिद्धि का प्रयास (Efforts to achieve self-interest by Political Parties) –*** भारत की बहुदलीय व्यवस्था में वोटों की राजनीति कई तथ्यों पर आधारित है, जिनमें जाति एक महत्वपूर्ण आधार के रूप में सामने आई है। परिणाम यह है कि भारत में सभी प्रमुख राजनीतिक दल चाहे वह कांग्रेस, सपा, बसपा, राजद या फिर लोजपा हो- सभी मुस्लिम, यादव, कुर्मी, लोध तथा अन्य पिछड़ी जातियों को आधार बनाकर वोटों की जातिगत लामबंदी कर रहे हैं। परिणामतः जहां इन जातियों में राजनीतिक सहभागिता तथा महत्व का एहसास बढ़ा है, वे संदर्भ समूह, दबाव समूह के रूप में लामबंद हुए हैं, उनमें सामाजिक समता प्राप्त करने की प्रेरणा आई है, वहीं उनमें जातिगत विद्वेष भी उत्पन्न हुआ है जो जाति-संघर्ष या द्वंद के रूप में प्रतिफलित होता रहा है।

6. ***जातीय संगठनों की भूमिका (Role of Caste Organization) –*** वर्तमान समय में प्रायः सभी जातियों के राष्ट्रीय या राज्य स्तरीय संगठन, क्रियाशील हैं, चाहे वह अखिल भारतीय ब्राह्मण महासभा हो या यादवों, कुर्मियों, भूमिहारों, राजपूतों या अन्य जातियों के संगठन। ये संगठन विभिन्न राजनीतिक दलों के साथ जुड़कर अन्य दूसरी जातियों के विरुद्ध न केवल वैचारिक दृष्टि

से वरन् कभी-कभी हिंसात्मक रूपों में संघर्षशील होते रहते हैं। बिहार के सेनारी, बारा, छत्तीसगढ़ के दंतेवाड़ा नरसंहार तथा राजस्थान के मीणा-गुर्जर संघर्ष इसके कुछ प्रमुख उदाहरण के रूप में देखे जा सकते हैं।

अत: निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि भारत में जाति-संघर्ष विभिन्न कारकों का समेकित परिणाम है, जो अपने जातिगत स्वार्थों की सिद्धि हेतु क्रियाशील हैं।

मूल्यांकन (Evaluation)

स्पष्ट है कि व्यवस्था में आंतरिक संघर्ष किसी भी समाज के लिए सकारात्मक परिणाम उत्पन्न नहीं करता है, यह सिर्फ और सिर्फ त्रासदी का ही सूचक है। इसके परिणामों को हम सेनारी काण्ड, बाराकाण्ड, छत्तीसगढ़ और झारखण्ड की नक्सली हिंसा और राजस्थान के मीणा-गुर्जर संघर्ष के रूप में देख सकते हैं। यद्यपि आधुनिक मूल्यों के प्रभाव व प्रसार से निश्चित रूप से निम्न सोपानिक प्रस्थितियों में रहने वाली जातियों का सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक विकास हुआ है। जातिगत संगठन आज दबाव समूह के रूप में विकसित होकर सरकार के साथ सामूहिक सौदेबाजी करने में सक्षम हुए हैं। क्षेत्रीय पार्टियों से जुड़ने के कारण उन्हें निश्चित ही पर्याप्त राजनीतिक प्रतिनिधित्व का मौका मिला है तथापि जाति-संघर्ष जो जाति उन्नयन का दूसरा व नकारात्मक पक्ष है, वह जातिवाद, नक्सलवाद जैसे विघटनात्मक तत्वों को ही मजबूत कर रहा है, जो अन्तत: राष्ट्र की एकता व अखण्डता के लिए समस्या बनते हैं। इस समस्या के आलोक में निम्न सुझाव अपेक्षित हैं–

1. जातीय असंतोष एवं द्वन्द्व की समाप्ति के लिए आवश्यक है की विभिन्न जातियों के बीच दूरी एवं वैमनस्य को समाप्त करने के उपाय किये जाएं इसके लिए अंतरजातीय विवाहों के प्रोत्साहन को सकारात्मक प्रयास माना जा सकता है।
2. जातीय संगठनों के विघटनात्मक कार्यकलापों पर प्रतिबंध लगाया जाय
3. जातिवादी तथा विभिन्न जातियों में वैमनस्य फैलाने वाली राजनीतिक गतिविधियों पर रोक लगाई जाय।

प्रत्येक जाति को यह अधिकार है कि वह अपना सर्वोन्मुखी विकास करे और उसे सभी सम्यक अवसर भी उपलब्ध होने चाहिए, किन्तु वह किसी अन्य जाति को नुकसान पहुँचाकर नहीं, वरन् संवैधानिक तरीके से और सरकार को भी इस दिशा में सकारात्मक कदम उठाने की जरूरत है।

भारत में जाति व्यवस्था : संभावित प्रश्न

1. जाति व्यवस्था की निरंतरता के स्वरूपों पर चर्चा कीजिये।
2. समकालीन समाज में जाति व्यवस्था कहां तक उपयोगी है? विवेचना कीजिये।
3. जाति एवं राजनीति के मध्य सह-सम्बन्धों को स्पष्ट कीजिये।
4. जाति ने यदि राजनीति हेतु आधार तैयार किया है तो राजनीति ने जाति को नवजीवन प्रदान किया है। स्पष्ट कीजिये।
5. जाति व्यवस्था भारतीय लोकतंत्र हेतु बाधक है या साधक, स्पष्ट कीजिये।
6. भारत में अस्पृश्यता उन्मूलन हेतु किए गए प्रयासों की समीक्षा कीजिये और इस दिशा में अपने सुझाव दीजिये।
7. भारतीय समाज पर जातिवाद के प्रभावों की समीक्षा कीजिये और इसे दूर करने हेतु उपाय सुझाइए।
8. समकालीन भारत में जाति एक-साथ कमजोर एवं मजबूत दोनों हुई है। स्पष्ट कीजिए।
9. हाल के वर्षों में हरियाणा, तमिलनाडु एवं पश्चिम बंगाल आदि में जाति पंचायतों द्वारा परम्परा के संरक्षण के नाम पर दिए गए निर्णयों ने भारतीय लोकतंत्र के समक्ष प्रश्न चिह्न खड़ा किया है। चर्चा कीजिए।
10. खाप पंचायत एवं प्रतिष्ठा हत्या की समकालीन प्रासंगिकता पर चर्चा कीजिये।
11. भारतीय राजनीति में जातिवाद पर टिप्पणी लिखिए।
12. जाति आधारित जनगणना के लाभों की चर्चा कीजिए।
13. 'भूमि जातियाँ पैदा करती है, मशीन वर्ग बनाती है।' स्पष्ट कीजिये।
14. 'राजनीति में जाति' एवं 'जाति में राजनीति' पर टिप्पणी कीजिये।
15. समकालीन भारत में जाति व्यवस्था निरन्तरता एवं परिवर्तन को परिलक्षित करती है। इस निरन्तरता एवं परिवर्तन के कारणों की चर्चा कीजिये।

✪✪✪✪✪

4 भारत में विवाह (Marriage in India)

विवाह को एक सार्वभौमिक संस्था के रूप में देखा जाता है। दुनिया के लगभग सभी समाजों में यौन सम्बन्धों के नियमन हेतु कुछ संस्थागत नियम पाये जाते हैं जो विवाह के रूप में दो विषमलिंगियों के बीच (आधुनिक संदर्भ में समलिंगियों के बीच भी) समाज द्वारा मान्यता प्राप्त सम्बन्धों को स्थापित करते हैं। यह संबंध कानून तथा रीति-रिवाजों द्वारा परिभाषित तथा मान्य है। इस संबंध की परिभाषा में न केवल यौन संबंधी व्यवस्था को निर्देशित किया गया है वरन् उन बातों को भी सम्मिलित किया जाता है जो श्रम-विभाजन (Work Division) के अतिरिक्त कर्त्तव्य और विशेषाधिकार से भी संबंधित हैं। विवाह द्वारा उत्पन्न बच्चे विवाहित जोड़ी के वैध बच्चे माने जाते हैं। उत्तराधिकार और वंशक्रम का निर्धारण इसी वैधता द्वारा होता है। अत: विवाह यौन संतुष्टि के साथ ही परिवार की निरंतरता बनाए रखने की एक निश्चित सांस्कृतिक क्रियाविधि है।

भारत के हिन्दुओं में विवाह को एक सामाजिक तथा धार्मिक कर्त्तव्य माना जाता है। इसके तीन उद्देश्य धर्म (कर्त्तव्य), प्रजा (प्रजनन) और रति (यौन सुख) माने गए हैं। अत: कहा जा सकता है कि समाज तथा व्यक्ति दोनों ही दृष्टिकोणों से विवाह महत्वपूर्ण है। विवाह की महत्ता इस बात में भी निहित है कि इससे संतान उत्पन्न होती है। हिन्दुओं में पुत्र प्राप्ति को महत्वपूर्ण माना जाता है क्योंकि वंश का नाम पुत्र से ही चलता है और धार्मिक अनुष्ठानों, विशेषकर श्राद्ध-कर्म जैसे अनुष्ठान जो स्वर्गवासी पूर्वजों की संतुष्टि के लिए किए जाते हैं, में पुत्र की भूमिका अनिवार्य होती है। हिन्दू व्यवस्था में विवाह द्वारा पुरुष गृहस्थ के रूप में आता है। बिना विवाह के पुरुष और महिला दोनों ही अधूरे समझे जाते हैं।

भारत में अन्य समुदायों में भी विवाह को एक अनिवार्य दायित्व माना जाता है। मुस्लिम धर्म में विवाह को ''सुन्नाह'' (दायित्व) माना गया है। जिसे प्रत्येक मुसलमान को पूरा करना आवश्यक है। ईसाई धर्म विवाह को जीवन के लिए महत्वपूर्ण मानता है तथा पति-पत्नी के परस्पर संबंधों तथा एक दूसरे के प्रति कर्त्तव्यों पर जोर देता है। विवाह के महत्व का इस बात से भी पता लगता है कि बहुत कम पुरुष और महिलाएँ ही अविवाहित पाए जाते हैं। भारत में महिलाओं की स्थिति पर एक कमेटी की रिपोर्ट के अनुसार भारत में केवल 0.5% महिलाएँ ही अविवाहित हैं।

भारत में विवाह के प्रकार (Types of Marriage in India)

सामान्यत: भारत में विवाह के दो प्रकार अर्थात् एकल विवाह (Monogamy) और बहुविवाह (Polygamy) पाए जाते हैं। बहुविवाह के दो प्रकार हैं, 1. बहुपत्नी (एक पुरुष का एक समय में कई स्त्रियों के साथ विवाह) और 2. बहुपति (एक महिला का एक समय में कई पुरुषों के साथ विवाह)। हिन्दुओं के प्राचीन ग्रंथों में हमें आठ प्रकार के विवाहों का संदर्भ मिलता है:-

1. ***ब्रह्म विवाह–*** हिन्दू विवाह में यह विवाह सबसे उत्तम समझा जाता है। शास्त्रों के अनुसार इस विवाह में वर को बुलाकर अपनी सामर्थ्य के अनुसार अलंकारों से अलंकृत करके कन्यादान कर दिया जाता है। इस विवाह से उत्पन्न पुत्र इक्कीस पीढ़ियों को पवित्र करने वाला होता है।
2. ***दैव विवाह–*** इस विवाह में अच्छे कार्य में लगे पुरोहित को अलंकृत करके कन्या दी जाती है। हिन्दू मान्यताओं के अनुसार यह विवाह भी श्रेष्ठ कोटि के विवाहों में आता है। इस विवाह का यज्ञ के साथ सरोकार होता है। आज की सामाजिक व्यवस्था में दैव विवाह समाप्त हो गये हैं।
3. ***आर्ष विवाह–*** इस विवाह में कन्या का पिता विवाह के इच्छुक ऋषि से एक जोड़ा बैल और एक गाय लेकर उसके साथ अपनी पुत्री का विवाह कर देता है। आज न तो ऋषि हैं और न ही ऐसे कन्या के पिता। लेकिन इस प्रकार का विवाह बताता है कि प्राचीन काल में ऋषि भी अपना जीवनयापन कृषि के माध्यम से करते थे।
4. ***प्रजापत्य विवाह–*** इस विवाह में कन्या का पिता वर को कन्या दान करता है और कहता है, "तुम दोनों एक साथ मिलकर आजीवन धर्म का आचरण करो।" ऐसे विवाह से उत्पन्न संतान अपने वंश की बारह पीढ़ियों को पवित्र कर देती है, यह विवाह भी आज कल प्रचलित नहीं है।
5. ***असुर विवाह–*** विवाह के इस प्रकार में वधू मूल्य स्वीकार किया जाता है। गौतम का कहना है कि जब कन्या के विवाह के बदले में धन लिया जाता है तो यह एक प्रकार से कन्या को बेचना हुआ। इस विवाह की प्रतिष्ठा नहीं है।
6. ***गंधर्व विवाह–*** ऐतिहासिक दृष्टि से इस प्रकार का विवाह सुन्दर गंधर्वों और कामुक किन्नरियों में होता था। यह विवाह, वस्तुत: प्रेम विवाह था। आजकल यह विवाह अपवाद रूप में नई पीढ़ी में देखने को मिलता है।
7. ***राक्षस विवाह–*** युद्ध में स्त्री का हरण करके जब उससे विवाह किया जाता था तो वह राक्षस विवाह कहलाता था। आजकल

KGS IAS

इस तरह के न तो युद्ध होते हैं और न विवाह। विवाह का यह स्वरूप भी ओझल हो गया है।

8. ***पैशाच विवाह–*** यह विवाह घृणित विवाह है। किसी भी सोयी हुई, घबराई हुई, मदिरा पान की हुई या सड़क चलती लड़की के साथ बलपूर्वक कुकृत्य करके, जब उसके साथ विवाह कर लिया जाता है तो यह पैशाच विवाह कहलाता है। हिन्दू मान्यता के अनुसार यह विवाह निकृष्ट और अधर्म का पोषक है।

विवाह के ये सब स्वरूप एक तरह के विवाह के मानदण्ड हैं। द्विज जातियों में सामान्यतया दैव और प्रजापत्य विवाह प्रचलित हैं। विवाहों के ये स्वरूप जैसा शास्त्रकारों ने कहा है, वैसा आज नहीं है। समय के अनुसार इनमें परिवर्तन आया है। हमारी समझ में ये स्वरूप केवल शास्त्रकारों के मानस को बताते हैं वास्तविक जीवन में विवाह के इन स्वरूपों में परिवर्तन कर लिया जाता है।

हिन्दू विवाह : एक धार्मिक संस्कार
(Hindu Marriage : As a Sacrament)

अन्य नृजातीय समूहों (Racial Groups) की तरह हिन्दू विवाह एक समझौता या धार्मिक कर्तव्य नहीं है, बल्कि इसे धार्मिक संस्कार (Religious Culture) के रूप में स्वीकार किया गया है।

हिन्दू विवाह को एक धार्मिक संस्कार के रूप में स्थापित करने के लिए इसके निम्न पक्ष महत्वपूर्ण हैं–

1. हिन्दू विवाह का प्रमुख आधार धर्म है, जैसे–
   (a) पत्नी के साथ पंचमहायज्ञ करना आवश्यक माना गया है।
   (b) बिना पत्नी के कोई भी धार्मिक कार्य सम्भव नहीं है।
   (c) मोक्ष प्राप्ति हेतु संतानोत्पत्ति आवश्यक है।
   (d) विवाह अनेक धार्मिक संस्कारों में एक आवश्यक संस्कार है।
2. हिन्दू विवाह ईश्वर इच्छित बंधन एवं जन्म-जन्मांतर का संबंध माना जाता है जिसे कभी तोड़ा नहीं जाता।
3. ऋणों से उऋण होने तथा मोक्ष प्राप्ति हेतु विवाह आवश्यक है क्योंकि–
   (a) विवाह गृहस्थ आश्रम में प्रवेश हेतु आवश्यक शर्त है और गृहस्थ आश्रम में ही विभिन्न यज्ञों के माध्यम से उऋण होना सम्भव है।
   (b) बिना विवाह के वानप्रस्थ आश्रम और सन्यास आश्रम के कर्तव्य को पूरा नहीं किया जा सकता।
   (c) धर्मशास्त्रों के अनुसार बिना विवाह के मोक्ष संभव नहीं है।
4. इसके अन्तर्गत धार्मिक नियमों एवं कृत्यों की प्रधानता होती है, जैसे-पाणिग्रहण, मंत्रोच्चारण, पुरोहित आदि।

मूल्यांकन (Evaluation)

स्पष्ट है कि हिन्दू विवाह एक धार्मिक संस्कार है। परन्तु आधुनिकीकरण के वर्तमान दौर में हिन्दू विवाह की धार्मिक प्रवृत्ति में परिवर्तन हुआ है। आज विवाह धार्मिक कृत्यों की पूर्ति हेतु नहीं किया जाता। वरन् मुख्य रूप से मित्रता, आनन्द एवं सहयोग हेतु किया जाता है। तलाक को संवैधानिक एवं सामाजिक मान्यता मिल जाने के कारण हिन्दू विवाह बंधन अब अटूट नहीं रह गया है।

उपरोक्त परिवर्तनों के बावजूद परस्पर विश्वास तथा जीवन साथी के बीच प्रतिबद्धता पहले भी विवाह का मूल तत्व (Basic Element) था और आज भी है। वर्तमान में विभिन्न कारणों से धार्मिक प्रभाव में कमी अवश्य हुई है, परन्तु अभी भी विवाह का एक धार्मिक संस्कार के रूप में महत्व बना हुआ है। आज भी विवाह संस्कार, हिन्दू सामाजिक संगठन का एक महत्वपूर्ण पक्ष है और अधिकांश विवाह धार्मिक रीति-रिवाजों के अनुसार ही सम्पन्न किए जाते हैं। प्रेम विवाह, को-लिविंग या समलैंगिक विवाहों की चर्चाएं विवाह के धार्मिक पक्ष पर प्रश्न चिन्ह लगाती हैं, परन्तु यह सीमित परिघटना है। सामान्य रूप से विवाह का धार्मिक पक्ष आज भी महत्वपूर्ण है और जब तक विवाह केवल यौन सन्तुष्टि के उद्देश्य हेतु ही नहीं किया जायेगा बल्कि साथ रहने तथा संतान प्राप्ति के लिए भी किया जायेगा यह धार्मिक संस्कार के रूप में बना रहेगा, भले ही इसके धार्मिक पक्षों का आधुनिकीकरण हो जाए।

हिन्दू विवाह सम्बन्धी नियम व निषेध
(Rules and Prohibitions Regarding Hindu Marriage)

भारत में हिन्दू विवाह सम्बन्धी निषेधों में अन्तर्विवाह (Endogamy) और बहिर्विवाह (External Marriage) सम्बन्धी निषेध प्रचलित हैं जिन्हें कुछ क्षेत्रीय भिन्नताओं के साथ देखा जा सकता है।

अन्तर्विवाह के अन्तर्गत जाति अन्तर्विवाह का प्रचलन है और जाति से बाहर विवाह को निषिद्ध किया गया है। परम्परागत रूप से प्रजातीय भिन्नता बनाए रखने, जैन व बौद्ध धर्म के प्रभाव एवं मुस्लिमों से रक्षा के लिए तथा जन्म को अधिक महत्व दिये जाने कारण जातीय अन्तर्विवाह (Caste Intermarriage) प्रचलित हुआ है। परन्तु, वर्तमान में जातीय समूहों के प्रति प्रेम, जातीय एकता बनाए रखने की इच्छा, प्रथानुगत दबाव, पहचान को बनाए रखना, जीवनसाथी के चुनाव में माता-पिता की भूमिका और दहेज प्रथा इसका प्रमुख कारण हैं।

बहिर्विवाह सम्बन्धी निषेधों में गोत्र, प्रवर, पिण्ड, टोटम और ग्राम बहिर्विवाह का प्रचलन देखा जाता है। इसके अन्तर्गत हिन्दुओं में समान गोत्र, प्रवर या पिण्ड के सदस्यों के बीच विवाह वर्जित है। हिन्दू गोत्र व्यवस्था में यह माना जाता है कि एक गोत्र के सभी

लोग एक ही ऋषि पूर्वज की संतान होने के कारण आपस में रक्त सम्बन्धी हैं। प्रवर का तात्पर्य यज्ञ कराने वाले ऋषि से सम्बन्धित लोग जो धर्म के आधार पर भ्रातृक बंधन में बंध जाते हैं। धर्मशास्त्रों के अनुसार पिता की तरफ से सात पीढ़ियों और माता की तरफ से पांच पीढ़ियों के लोग सपिण्ड माने जाते हैं। इन सभी में भाई-बहन या रक्त सम्बन्ध होने के कारण इनके बीच विवाह को निषेधित किया गया है। हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 द्वारा सगोत्र एवं सप्रवर बहिर्विवाह निषेध को हटाकर केवल सपिण्ड बहिर्विवाह को मान्यता दी गयी है। जनजातियों में समान टोटम समूह के बीच तथा गांव के भीतर विवाह निषिद्ध किया गया है क्योंकि इनके बीच आपसी सम्बन्धों को भाई-बहन का सम्बन्ध स्वीकार किया जाता है।

अनुलोम विवाह (Hypergamy)

अनुलोम विवाह अंग्रेजी के शब्द 'हाइपरगेमी' का हिन्दी रूपान्तरण है। हाइपर का अर्थ है ऊपर और गेमी का अर्थ है विवाह करना। हाइपरगेमी का पूर्ण अर्थ है-ऊपर विवाह करना। अगर वर वधू से उच्च सामाजिक श्रेणी, वर्ण, जाति, वर्ग अथवा कुल का है तो ऐसा विवाह अनुलोम विवाह या कुलीन विवाह कहलाता है। इस तरह के विवाह प्राचीन भारत में मान्य एवं प्रचलित थे।

मनु तथा **याज्ञवल्क्य** ने ब्राह्मण को चार (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र), क्षत्रिय को तीन (क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र), वैश्य को दो (वैश्य और शूद्र) और शूद्र को एक (केवल अपने शूद्र) वर्ण में विवाह करने की अनुमति की बात कही है। शूद्र वर्ण की लड़की से द्विजों के विवाह को निम्न कोटि का माना जाता था। जैसे-जैसे वर्ण विभिन्न जातियों और उपजातियों में विभाजित होते गए तथा अन्तर्विवाह की प्रथा फैलती गई वैसे-वैसे अनुलोम विवाह की प्रथा भी समाप्त होती गई।

प्रतिलोम विवाह (Hypogamy)

प्रतिलोम विवाह वह विवाह है, जिसमें वधु उच्च श्रेणी, वर्ण, वर्ग, जाति, कुल या वंश की होती है तथा वधू की तुलना में वर निम्न श्रेणी, वर्ण, वर्ग, जाति, कुल या वंश का होता है। इस प्रकार एक निम्न वर्ण के व्यक्ति का उच्च वर्ण की स्त्री के साथ विवाह प्रतिलोम विवाह कहलाता है। ब्राह्मण लड़की का विवाह क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र लड़के से, क्षत्रिय लड़की का विवाह वैश्य या शूद्र लड़के से तथा वैश्य लड़की का विवाह शूद्र लड़के से होना प्रतिलोम विवाह कहलाता है। प्राचीन भारत में ऐसे विवाह मान्यता प्राप्त नहीं थे।

विवाह सम्बन्धी उपरोक्त निषेधों में मुख्यत: जाति अन्तर्विवाह ने सामाजिक सम्बन्धों के दायरे को संकीर्ण बनाकर असमानतामूलक समाज को पुष्ट कर तथा आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में बाधक के रूप में क्रियाशील होकर सामाजिक प्रगति को अवरुद्ध किया है।

मूल्यांकन (Evolution)

लोकतांत्रिक राजनैतिक व्यवस्था, आधुनिकीकरण, वैश्वीकरण आदि के कारण आज अन्तर्विवाह और बहिर्विवाह सम्बन्धी नियम कमजोर हुए हैं। भारत सरकार ने सगोत्र बहिर्विवाह और प्रवर बहिर्विवाह को अमान्य करते हुए केवल पिता की ओर से 5 तथा माता की ओर से 3 पीढ़ियों के बीच सपिण्ड बहिर्विवाह को ही मान्यता प्रदान की है, (हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955)। फलत: सम्पूर्ण भारत में व्यवहार में सपिण्ड बहिर्विवाह और कुछ हद तक गोत्र बहिर्विवाह और ग्राम बहिर्विवाह ही प्रचलित हैं। अन्तर्जातीय विवाह की घटनाएँ सामने आने लगी हैं और इसको सरकार के द्वारा प्रोत्साहित भी किया जा रहा है, परन्तु अभी भी अधिकांश हिन्दू विवाह जातीय अन्तर्विवाह के नियमों के आधार पर ही होता है। अत: निष्कर्ष है कि वर्तमान भारत में हिन्दू विवाह सम्बन्धी निषेध से जुड़े कुछ नियम कमजोर पड़े हैं तो कुछ अभी भी जारी हैं।

हिन्दू विवाह में आधुनिक परिवर्तन (Modern Changes in Hindu Marriage)

आधुनिकीकरण और वैश्वीकरण के वर्तमान दौर में हिन्दू विवाह के कमोबेश सभी पक्षों में हो रहे परिवर्तन महत्वपूर्ण व विचारणीय हैं जिन्हें निम्न बिन्दुओं के अन्तर्गत देखा जा सकता है-

1. विवाह से सम्बन्धित धार्मिक कर्तव्यों के पालन के संदर्भ में कमी आई है।
2. पुत्र प्राप्ति के पारम्परिक दृष्टिकोण के संदर्भ में बदलाव आया है।
3. यौन-तुष्टि से सम्बन्धित विचारों के संदर्भ में परिवर्तन देखा जा रहा है।
4. बच्चों के पालन-पोषण के संदर्भ में भी लोगों के दृष्टिकोण परिवर्तित हो रहे हैं।

तार्किक व वैज्ञानिक दृष्टिकोण के प्रसार के कारण आज धर्म के प्रभाव में ह्रास हुआ है, फलत: विवाह अब धार्मिक कर्तव्य (Religious duty) के पालन हेतु नहीं वरन् आनंद एवं सहयोग के लिए किया जाता है। आज पुत्र और पुत्री दोनों को समान महत्व देने के कारण पुत्र-प्राप्ति विवाह का प्रमुख उद्देश्य नहीं रह गया है। आज एक ऐसा वर्ग भी उत्पन्न हो रहा है जो सन्तानोत्पत्ति को भी आवश्यक नहीं मानता। बहुलता में देखा जाए तो यौन तुष्टि विवाह का मुख्य उद्देश्य अभी भी है। परन्तु कॉल गर्ल, विवाह पूर्व यौन संबंध, को-लिविंग आदि के प्रचलन ने विवाह के इस उद्देश्य की प्रमुखता को भी कमजोर किया है। नर्सरी, किंडर-गार्डेन, किड्स केयर सेंटर, आया आदि की विद्यमानता ने आज बच्चों के पालन-पोषण सम्बन्धी पक्ष को कमजोर किया है।

आज अन्तर्जातीय विवाह और प्रेम विवाह की घटनाएं नगरीय समाज में देखी जाने लगी हैं। शहरों में आया आधुनिक खुलापन और पश्चिमी प्रभावों ने विवाह पूर्व यौन सम्बन्धों तथा सहजीवन के प्रचलन को संभव बनाया है। स्वीडन, नॉर्वे आदि पश्चिमी देशों की तर्ज पर यहाँ भी समलैंगिक विवाह को मान्यता प्रदान करने की मांग उठने लगी है तथा कलकत्ता के एक स्वयं सेवी संगठन द्वारा इस प्रकार के विवाह को वैध बनाने की मांग की गयी है। आधुनिक शिक्षा और जागरुकता के कारण बाल विवाह की ओर झुकाव कम हुआ है तथा विवाह की आयु में वृद्धि, स्वावलंबी होने तक विवाह का विरोध, दम्पति के स्वास्थ्य की रक्षा, स्वस्थ संतान तथा योग्य जीवनसाथी के चयन में सुविधा जैसी बातें विवाह के विलम्ब के लिए उत्तरदायी हैं। आज विधवा पुनर्विवाह की संख्या बढ़ी है हालांकि अभी भी इनकी संख्या कम है। स्त्रियों के व्यक्तित्व के विकास हेतु, अनैतिक व्यभिचार रोकने हेतु, उनके बच्चों को अनाथ होने से बचाने हेतु तथा उनको समानता एवं न्याय दिलाने हेतु आज विधवा विवाह को सामाजिक और नैतिक दोनों दृष्टिकोण से आवश्यक समझा जाने लगा है।

आज विवाह को आजीवन बंधन मानने की प्रवृत्ति कमजोर हुई है। विवाह-विच्छेद को कानून व समाज द्वारा मान्यता मिल जाने से विवाह का स्थायित्व दुष्प्रभावित हुआ है और तलाक दर में वृद्धि हुई है। आज अन्तर्विवाह और बहिर्विवाह के नियम कमजोर हुए हैं तथा जीवनसाथी के चुनाव में माता-पिता की भूमिका घटी है। आज विवाह सम्बन्धी रीति-रिवाजों और रस्मों का आधुनिकीकरण हो रहा है। इसमें इंटरनेट, अखबारों व संचार के अन्य साधनों का प्रयोग किया जा रहा है तथा आज शादी के पहले भी लड़कियाँ, लड़कों से मिल रही हैं। पश्चिमी समाज के डेटिंग के तर्ज पर विवाह से पूर्व मिलकर अपने जीवनसाथी की उपयुक्तता जाँचने के प्रवृत्ति बढ़ रही है।

हिन्दू विवाह में परिवर्तन के कारण (Causes for Change in Hindu Marriage)

विवाह रूपी संस्था में हो रहे ये आधुनिक परिवर्तन (Modern Change) कई कारकों के संयुक्त परिणाम हैं। जिन्हें निम्न बिन्दुओं के अन्तर्गत स्पष्ट किया जा सकता है-

1. आधुनिक शिक्षा एवं पाश्चात्य संस्कृति के प्रसार से विवाह सम्बन्धी पारम्परिक मान्यताएं कमजोर हुई हैं, साथ ही विवाह के धार्मिक एवं सांस्कारिक महत्व में कमी आई है।
2. नगरीकरण एवं औद्योगीकरण में वृद्धि के साथ लोगों की स्वायत्तता (Autonomy) व आर्थिक निर्भरता में वृद्धि हुई है।
3. वैधानिक प्रावधानों के कारण विवाह सम्बन्धी निषेधों में कमी आई है और जीवनसाथी के चुनाव का क्षेत्र विस्तृत हुआ है।
4. आधुनिकीकरण, वैश्वीकरण व संचार क्रांति ने उपयुक्त जीवन साथी को खोजना सहज बनाया है।
5. महिलावादी आंदोलनों (Feminist Movements) ने महिलाओं को अपनी पहचान एवं स्वतंत्रता हेतु प्रेरित किया है।

मूल्यांकन (Evaluation)

स्पष्ट है भारत में हिन्दू विवाह के सभी पक्षों में परिवर्तन हुआ है, लेकिन इन परिवर्तनों में समरूपता (Similarity) नहीं है। कोई पक्ष अधिक परिवर्तित हुआ है तो कोई कम। साथ ही इसमें अधिकांश परिवर्तन शहरों में ही परिलक्षित (Reflected) होते हैं और गांवों में कम मात्रा में दिखाई पड़ते हैं। जातीय या वर्गीय आधार पर भी अंतर देखा जा सकता है। साथ ही इन परिवर्तनों से यह भी स्पष्ट होता है कि जहाँ भारतीय जनमानस में परम्परा से जुड़े रहने की प्रवृत्ति है वहीं वे परम्परा में अनुकूलनकारी परिवर्तन (Adaptive Change) की इच्छा भी रखते हैं। सती प्रथा का उन्मूलन हो जाना अथवा विधवा-विवाह को वैधानिक प्रयासों के बावजूद उसे पूर्ण सामाजिक मान्यता प्राप्त न होना इस तथ्य की पुष्टि करता है। निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि भारत में विवाह को कई कारकों ने प्रभावित किया है। यह एक अनुकूलनकारी प्रक्रिया (Adaptive Process) के रूप में ही क्रियाशील है, साथ ही यह अपने परम्परागत तत्वों की निरंतरता को भी बनाये रखने का प्रयास कर रहा है, जिसको आज विवाह में अनुष्ठानिक रीति-रिवाजों की विद्यमानता तथा जाति अन्तर्विवाह के नियमों के रूप में देखा जा सकता है।

भारत में अन्तर्जातीय विवाह (Inter Caste Marriage in India)

सभी समाजों में विवाह से सम्बन्धित कुछ नियम पाये जाते हैं। अन्तर्विवाह हिन्दू विवाह से सम्बन्धित प्रमुख नियम है, जहाँ प्रत्येक हिन्दू से अपनी ही जाति में विवाह करने की अपेक्षा की जाती है। परन्तु आधुनिकीकरण के इस दौर में अन्तर्विवाही नियमों का उल्लघंन और अन्तर्जातीय विवाह एक नवीन घटना के रूप में दृष्टिगत हुआ है। जिसने हिन्दू समाज में समायोजन की समस्या को उत्पन्न किया है। यद्यपि हिन्दुओं में अनुलोम विवाह के रूप में प्राचीन काल से ही अन्तर्जातीय विवाह देखने को मिलते हैं। तथापि, ब्राह्मण काल से लेकर आधुनिक हिन्दू समाज मुख्यतः अन्तर्विवाही ही रहा है। पहली बार 1872 के अधिनियम द्वारा 'अपना कोई धर्म नहीं' की घोषणा द्वारा अन्तर्जातीय विवाह को संभव बनाने का प्रयास किया गया, जिसे हिन्दू विवाह वैधकरण अधिनियम, 1949 द्वारा पुष्ट कर दिया गया।

अन्तर्जातीय विवाह को प्रोत्साहित करने वाले कारक (Factors to Encouraging Inter Caste Marriage)

ब्रिटिश शासन की दो शताब्दियों के दौरान अनेक ऐसे कारक भारतीय समाज में क्रियाशील हुए जिनके प्रभाव के फलस्वरूप अन्तर्विवाह के प्रतिबन्ध धीरे-धीरे दुर्बल होने लगे और हमारा झुकाव अन्तर्जातीय

विवाह के प्रति दिन-प्रतिदिन बढ़ता गया। इसके लिये कई कारक संयुक्त रूप से उत्तरदायी माने जाते हैं-

1. पाश्चात्य शिक्षा के कारण सामाजिक मूल्यों में क्रांतिकारी परिवर्तन आया है। साथ ही भारत में एक सांस्कृतिक समानता (Cultural Equality) उत्पन्न हो सकी है। जिससे विभिन्न जातीय समूह एक-दूसरे के बहुत निकट आ गये और अन्तर्जातीय विवाह के अनुकूल वातावरण का निर्माण हुआ।
2. छापेखाने तथा यातायात और संचार के साधनों में उन्नति से भी विभिन्न समुदाय, धर्म और जाति के लोग एक-दूसरे के निकट आ गए, क्योंकि इसने सामाजिक गतिशीलता (Social Mobility) बढ़ाने में मदद की।
3. प्रिटिंग प्रेस, परिवहन एवं संचार साधनों में उन्नति के साथ विभिन्न देशों में प्रजातन्त्रवाद का ज्ञान और शिक्षा के विस्तार के कारण उत्पन्न समानता की भावना ने जात-पात के आधार पर ऊँच-नीच की भावनाओं को कमजोर बनाया।
4. औद्योगीकरण के साथ नगरों का भी विकास हुआ, जहाँ प्रायः सभी जातियाँ और प्रान्त के लोग साथ-साथ मिलकर रहने और काम करने लगे। ऐसी परिस्थिति में एक-दूसरे के प्रति सहनशीलता तथा धर्म और जाति के प्रति निरपेक्षता बढ़ती गई, इससे अन्तर्जातीय विवाह को काफी प्रोत्साहन मिला।
5. भारतीय स्वतंत्रता हेतु राष्ट्रीय आंदोलन ने भी अन्तर्जातीय विवाह को प्रोत्साहित किया। राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेने और एक साथ जेल जाने से विभिन्न जातियों में एक भावना की जागृति हुई। यह अन्तर्जातीय विवाह को प्रोत्साहित करने में सहायक सिद्ध हुई है।
6. महिलाओं में शिक्षा का विकास और उनको पुरुषों के समान राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक अधिकार और स्वतन्त्रता प्राप्त होने के साथ-साथ जात-पात के आधार पर उनके ऊपर लगाए हुए विवाह- सम्बन्धी प्रतिबन्ध धीरे-धीरे निर्बल होते जा रहे हैं।
7. वैज्ञानिक ज्ञान के बढ़ने के साथ ही यह बात स्पष्ट हो गई कि कोई भी जाति या प्रजाति (Caste) आज शुद्ध नहीं है और उनमें ऊँच-नीच का भेदभाव मनुष्य की रचना है। जिसका कि कोई भी वैज्ञानिक आधार नहीं है।
8. भारत में अत्यधिक दहेज के कारण लड़कियों और लड़कों के विवाह नहीं हो पा रहे हैं। ऐसी परिस्थिति में युवक और युवतियों को अपने विवाह सम्बन्ध में निर्णय करने का अवसर मिल जाता है और माता-पिता दहेज बचाने के लिये स्वयं अन्तर्जातीय विवाह करने को तैयार हो जाते हैं।
9. स्त्रियों और पुरुषों को समान अधिकार मिलना, शिक्षा का विस्तार, सामाजिक गतिशीलता का बढ़ना, सह-शिक्षा, नारी और पुरुष को एक साथ कारखाने आदि में काम करने की सुविधा आदि के कारण प्रेम-विवाह का प्रचलन भी दिन-प्रतिदिन बढ़ता चला जा रहा है।
10. ब्रह्म समाज और आर्य समाज ने धार्मिक आधार पर समाज सुधार का जो आन्दोलन चलाया उससे जात-पात और छुआछूत पर ही कुठाराघात नहीं हुआ बल्कि स्त्रियों की दशा सुधारने का उनका प्रयास परोक्ष रूप से अन्तर्जातीय विवाह के पक्ष में सहायक बना।
11. विभिन्न कानूनों द्वारा भी अन्तर्जातीय विवाह को बढ़ावा मिला है। 1872 में विशेष विवाह अधिनियम पास हुआ और 1923 में संशोधित हुआ। जिससे अन्तर्जातीय विवाह की वैधानिक अड़चनें दूर हो गईं और सभी हिन्दू, बौद्ध, सिक्ख और जैनों में अन्तर्जातीय विवाह वैध हो गए। हिन्दू-विवाह वैधकरण अधिनियम, 1949 में पास हुआ। इसके अनुसार, इस अधिनियम के पहले और बाद में विभिन्न धर्मों, जातियों, उपजातियों और सम्प्रदायों के व्यक्तियों में होने वाले विवाहों को मान्यता दे दी गई। यह भारत के समस्त हिन्दुओं पर, जिनमें सिक्ख और जैन भी सम्मिलित हैं, लागू होता है।

उपर्युक्त कारणों से आज हिन्दू-विवाह का परम्परागत स्वरूप (Traditional Form) विघटित हो रहा है और अन्तर्जातीय विवाह के अनुकूल वातावरण की सृष्टि हो रही है।

अन्तर्जातीय विवाह से लाभ
(Benefits of Inter Caste Marriage)

अन्तर्जातीय विवाहों के निम्नलिखित लाभ हैं जैसे-

1. अन्तर्जातीय विवाह के द्वारा जीवन-साथी के चुनाव का क्षेत्र विस्तृत हो जाता है और योग्य जीवन-साथी के चुनने में काफी सरलता होती है।
2. दहेज प्रथा को रोकने या समाप्त करने के लिये भी अन्तर्जातीय विवाहों की वृद्धि आवश्यक है। इस प्रथा का महत्व मुख्यतः उस समाज में होता है जहाँ जीवन साथी का चुनाव क्षेत्र सीमित या जहाँ उचित वरों की अत्यधिक कमी के कारण, उनको प्राप्त करने के लिये लड़कियों के अभिभावकों में प्रतियोगिता होती रहती है।
3. बहुत ही सीमित समूह के अन्दर ही विवाह करने से वंशानुक्रमण (Inheritance) के गुण दिन-प्रतिदिन घटते जाते हैं और अच्छी संतानों की संख्या कम होती जाती है। अन्तर्जातीय विवाहों के होने से नए और उत्तम वाहकाणुओं का आयात बाहरी परिवारों से सम्भव हो जाता है जिससे उत्तम सन्तान उत्पन्न होने लगती है।
4. अन्तर्जातीय विवाह के प्रचलित होने से जीवन-साथी चुनने का क्षेत्र बढ़ जायेगा और दहेज-प्रथा भी समाप्त हो जायेगी। इसके

फलस्वरूप बाल-विवाह और विधवा-विवाह से सम्बन्धित समस्याएँ स्वत: हल हो जायेंगी।

5. विभिन्न विद्वान जातिवाद की समस्या को हल करने में अन्तर्जातीय विवाह को प्रोत्साहित करने पर बल देते हैं। अगर विभिन्न जाति के लड़कों और लड़कियों को अन्तर्जातीय विवाह के द्वारा एक-दूसरे के निकट आने का अवसर दिया जायेगा तो जाति-प्रथा उपेक्षित होगी और जातिवाद के विरोध में आवाज उठने लगेगी।
6. आज भारत असंख्य समूहों में विभाजित है। इन समूहों में कोई एक सामान्य आधार नहीं है जिसके बल पर वे एक-दूसरे के निकट आ सकें। अन्तर्जातीय विवाह इन समूहों को एक साथ लाने का आधार दे सकता है।
7. अन्तर्जातीय विवाह से बाल विवाह बहुत घट जायेंगे और जनसंख्या की समस्या का एक स्वाभाविक हल मिल सकेगा।

भारत में विवाह-विच्छेद की समस्या
(Problem of Divorce in India)

विवाह-विच्छेद वैवाहिक सम्बन्धों का वैधानिक अंत है, यद्यपि यह अंत अदालत के हस्तक्षेप के बिना भी संभव होता है। परम्परागत हिन्दू समाज में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया के तहत हमारे यहाँ विवाह-विच्छेद को कानूनी अधिकार के रूप में मान्यता दी गयी है। इस घटना के भारतीय समाज पर सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों तरह के प्रभाव परिलक्षित होते हैं। एक तरफ इसने विवाह-विच्छेद की दर में वृद्धि कर पारिवारिक विघटन (Family Dissolution) एवं बच्चों के पालन-पोषण की समस्या को उत्पन्न किया है तो वहीं दूसरी तरफ स्त्रियों को विवाह-विच्छेद की स्वतंत्रता देकर उनकी प्रस्थिति (Status) में सुधार किया है।

भारत में विवाह-विच्छेद की दर में वृद्धि की इस घटना के लिए कई कारणों को उत्तरदायी ठहराया जा सकता है; जैसे-

1. आधुनिक मूल्यों (स्वतंत्रता, समानता, सामाजिक न्याय, धर्मनिरपेक्षता) का प्रसार।
2. आधुनिक शिक्षा का प्रसार।
3. औद्योगीकरण एवं नगरीकरण।
4. वैधानिक व्यवस्था।
5. स्त्रियों की पुरुषों पर निर्भरता में कमी।
6. विवाह एवं परिवार के प्रकार्यों (Function) को पूरा करने वाले नवीन वैकल्पिक संस्थाओं का उद्भव।
7. उपभोक्तावादी संस्कृति का प्रसार।

भारत में विवाह-विच्छेद की इस बढ़ती प्रवृत्ति ने आज विवाह-विच्छेद के अधिकार के संदर्भ में एक विवाद को उत्पन्न किया है। जिसके पक्ष और विपक्ष में तर्क देकर निम्नलिखित प्रतिक्रिया व्यक्त की जाती है।

विवाह-विच्छेद विरोधियों का मानना है कि विवाह-विच्छेद अनुचित है और इसका अधिकार नहीं मिलना चाहिए। उन्होंने अपने समर्थन में निम्नलिखित तर्क दिये हैं-

1. विवाह-विच्छेद हिन्दू धर्म के विरुद्ध है क्योंकि विवाह-विच्छेद का अधिकार विवाह के संस्कारिक महत्व को समाप्त कर देता है।
2. विवाह-विच्छेद के पश्चात् अलग हुये लोग यौन तुष्टि के लिये अन्य विकल्पों का प्रयोग करते हैं फलत: अनैतिकता (Immorality) को प्रोत्साहन मिलता है।
3. विवाह-विच्छेद से पति-पत्नी अलग हो जाते हैं और बच्चे उनमें से किसी एक के पास रहने लगते हैं। यह स्थिति पारिवारिक विघटन को जन्म देती है।
4. हिन्दू समाज में स्त्रियाँ सामान्यत: पुरुषों पर निर्भर रहती हैं अत: विवाह-विच्छेद स्त्रियों के समक्ष आर्थिक समस्याओं को उत्पन्न करता है।
5. इससे बच्चों के पालन पोषण की समस्या उत्पन्न होती है क्योंकि विवाह-विच्छेद के बाद उनको पूरा परिवार नहीं मिल पाता है।

दूसरी ओर विवाह-विच्छेद के समर्थकों के अनुसार विवाह-विच्छेद उचित है और इसका अधिकार मिलना चाहिए। इन लोगों ने अपने समर्थन में निम्न तर्क दिए हैं-

1. विवाह-विच्छेद के अधिकार से स्त्रियों की प्रस्थिति में सुधार होता है और उनको पुरुषों की तरह समानता एवं स्वतंत्रता के अधिकार प्राप्त होते हैं।
2. विवाह-विच्छेद द्वारा दु:खी वैवाहिक जीवन का समापन होता है।
3. विवाह-विच्छेद समानता के सिद्धांत पर आधारित है।
4. विवाह-विच्छेद हिन्दू विवाह के नियमों में सन्तुलन उत्पन्न करता है।
5. विवाह-विच्छेद गतिशील समाज (Dynamic Society) की आवश्यकता को पूरा करता है।

मूल्यांकन (Evaluation)

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि विवाह-विच्छेद की दर में वृद्धि, विवाह एवं परिवार से सम्बन्धित एक नवीन वैश्विक घटना है, जो कई कारकों का संयुक्त परिणाम रहा है। यद्यपि स्वतंत्रता, समानता, सामाजिक न्याय के संदर्भ में स्त्रियों की परिस्थिति में सुधार हेतु विवाह-विच्छेद का कानूनी प्रावधान किया गया है तथा इसे एक आधुनिक समस्या के रूप में देखा जा रहा है, जिसने कई प्रकार के दुष्परिणामों को उत्पन्न किया है। यह सही है कि कानून द्वारा प्रदान किए गए इस विवाह-विच्छेद के अधिकार को अनुचित नहीं ठहराया जा सकता है और समतामूलक समाज की स्थापना हेतु

Dr. S.S. Pandey

इसे और प्रोत्साहित किया जाना चाहिए, परन्तु यह भी तथ्य है कि विवाह-विच्छेद की बढ़ती दर और इसके दुष्परिणामों के कारण इस दिशा में कुछ सर्तकता बरतने की आवश्यकता है; जैसे-

1. विवाह-विच्छेद की अनुमति अदालत द्वारा गंभीर परिस्थितियों में ही देनी चाहिए।
2. विवाह-विच्छेद की अनुमति देते समय स्त्रियों की आर्थिक समस्या को ध्यान में रखना चाहिए।
3. बच्चों के पालन-पोषण की समुचित व्यवस्था की जानी चाहिए।
4. दंपत्ति को आपस में समतामूलक व्यवहार करते हुए तथा पारस्परिक सहयोग बनाए रखते हुए छोटे-छोटे विवादों से बचने का प्रयास करना चाहिए।
5. विवाह-विच्छेद के पक्ष में जनमत तैयार किया जाना चाहिए।

भारत में समलैंगिकता (Homosexuality in India)

हाल के वर्षों में समलैंगिकता का मुद्दा भारत सहित अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर वाद-विवाद के ज्वलंत मुद्दे के रूप में काफी चर्चित रहा है। समलैंगिकता का आशय समान लिंग के प्रति भावनात्मक व शारीरिक आकर्षण से है। यह समान लिंगियों में पायी जाने वाली लैंगिक आकर्षण प्रवृत्ति का परिचायक है। जो पुरुष-पुरुष या नारी-नारी के मध्य पाया जाता है। किसी पुरुष द्वारा अन्य पुरुष/पुरुषों के प्रति लैंगिक आकर्षण के सन्दर्भ में ऐसे पुरुषों को 'गे' तथा किसी महिला द्वारा अन्य महिला/महिलाओं के प्रति लैंगिक आकर्षण के सन्दर्भ में ऐसी महिला को 'लेस्बियन' कहा जाता है।

यद्यपि लैंगिक आकर्षण प्राणी की एक मूल प्रवृत्ति रही है, परन्तु विपरित लिंगी के प्रति आकर्षण को ही सामान्य स्वीकृति दुनिया के अधिकांश समाजों में ऐतिहासिक रूप से प्रचलित रही है, तथापि प्राचीन काल से ही समलैंगिक प्रवृत्ति के व्यक्तियों की विद्यमानता कमोवेश प्राय: हर काल में रही है। समलैंगिकता की चर्चा क्लासिकल ग्रीक-रोमन सभ्यता के साथ-साथ भारत के कई प्राचीन ग्रंथों में भी रही है। पुनर्जागरण (Renaissance) के दौरान इटली के कई सम्पन्न नगर जो कि समान लिंगियों के यौन सम्बन्धों के प्रचलित केन्द्र थे, में भी इस तरह के कई दृष्टांत पाये गये हैं। यद्यपि इसे सामाजिक रूप से कभी भी स्वीकृति नहीं मिली। फिर भी छुपे तौर पर कुछ एक उदाहरण प्राय: हर काल में मिले हैं। 13वीं शताब्दी के मध्य तक यूरोप के अधिकांश भागों में तो समलैंगिकता के लिए मृत्यु दण्ड का प्रावधान किया गया था।

हाल में अमेरिकी सेना में समलैंगिकों की बहाली के साथ तथा यूरोप के कई राष्ट्रों तथा अमेरिका के कई राज्यों में समलैंगिक विवाह को कानूनी स्वीकृति तथा वैध घोषित किये जाने के पश्चात् यह मुद्दा पूरे विश्व के समक्ष चर्चा का विषय बना है कि- क्या यह जायज है? इसी विमर्श को आगे बढ़ाते हुए इंग्लैंड ने भी समलैंगिक विवाह को स्वीकृति प्रदान कर दी है।

समलैंगिकता का मूल कारण तो प्राकृतिक है, परन्तु इसका सर्वाधिक दुष्परिणाम विवाह नामक संस्था के समक्ष चुनौती के रूप में उपस्थित हुआ है। कई वैज्ञानिक अध्ययनों में समलैंगिक रिश्तों के परिणामस्वरूप यौन सम्बन्धी बीमारियों यथा एड्स, गोनोरिया, सिफलिस तथा अन्य जैविक समस्याओं की पुष्टि की गयी है।

हाल के कुछ वर्षों में समलैंगिकता को लेकर एक आश्चर्यजनक उत्साही प्रवृत्ति देखने को मिल रही है। जिसके समर्थन में कई गैर-सरकारी संगठनों सहित तमाम समुदाय व कुछ उदार कहे जाने वाले व्यक्ति खड़े हो रहे हैं। समलैंगिकों के हितों के पक्ष में आवाज बुलंद करने वाली 'नाज फाउंडेशन' नामक संस्था तो बाकायदा समलैंगिकों के अधिकारों और समलैंगिकता को अपराध की श्रेणी से बाहर करवाने के लिए कानूनी लड़ाई लड़ रही है।

नाज फाउंडेशन की याचिका पर वर्ष 2010 में दिल्ली उच्च न्यायालय का फैसला आया कि यदि दो वयस्क आपसी सहमति से समलैंगिक रिश्ता बनाते हैं तो यह सेक्शन 377 आईपीसी के अन्तर्गत अपराध नहीं होगा। इस फैसले के बाद समलैंगिकता के समर्थकों ने जिस तरह का उन्माद, जश्न और उत्सव पूरे देश में मनाया, गे-प्राइड परेडें निकाली, वह कई बातों पर सोचने के लिए विवश करता है। समलैंगिकता के विरोधियों की चिंता यह है कि समलैंगिकता को जिस तरह रूमानी अंदाज में पेश किया जा रहा है, उससे कहीं जिसे विकार के रूप में लिया जाना चाहिए, उसे समाज सहज रूप में न ले बैठे, अन्यथा भविष्य में समाज में कई बीमारियाँ और कई समस्याएं खड़ी हो सकती हैं। उल्लेखनीय है किसी विषय को मुद्दा बनाने से लोगों में उसको जानने-समझने का कौतूहल एवं उत्सुकता बढ़ती है, जो कि उस बात का प्रचार करती है।

समलैंगिकता के विरोधी मानते हैं कि 'समलैंगिक व्यभिचार' (Homosexual Adultery) मूल रूप से उन व्यक्तियों से संबंधित होता है जिन्होंने मनोरंजन और विलास की सारी हदें पार कर ली हों, ऐसे लोगों को किसी भी कीमत पर कुछ नया करने को चाहिए, यही कारण है कि विदेशी संस्कृति में समलैंगिक व्यवहार आम चलन में मौजूद है। समलैंगिकता पश्चिमी रीति-रिवाजों में इस तरह समाहित है कि वहाँ पर इसे सहज रूप से स्वीकार किया जाने लगा है। पश्चिमी देशों के तमाम राष्ट्राध्यक्ष, नौकरशाह, अभिनेता, अभिनेत्रियों सहित व्यापार जगत की बड़ी हस्तियाँ समलैंगिकता नामक उन्मुक्त पाश्विक व्यभिचार में लिप्त पायी जाती हैं। किन्तु भारत के सन्दर्भ में ऐसी स्थिति की कल्पना करना भी भयावह और खतरनाक है।

उपरोक्त चर्चा को देखते हुए समलैंगिकता को अपराध की श्रेणी में रखने या इसे केवल मानसिक विकृति और बीमारी के रूप में परिभाषित कर सुधारात्मक या दंडात्मक कार्यवाही के औचित्य पर विचार विमर्श आवश्यक है ताकि इस सन्दर्भ में समाज को सही दिशा दी जा सके।

भारतीय दण्ड संहिता की धारा 377 प्रकृति विरुद्ध काम तृष्णा (समलैंगिकता) को घोर अपराध की श्रेणी में रखती है और इसके लिए कठोर दण्ड का प्रावधान करती है। किन्तु दिल्ली उच्च न्यायालय ने सहमति के आधार पर स्थापित समलैंगिक संबंधों को कानूनी मान्यता देकर तथा सरकार को आई.पी.सी. की धारा 377 में आवश्यक संशोधन का निर्देश देकर समलैंगिकता संबंधी विवाद को हवा दे दी।

वस्तुत: समलैंगिकता संबंधी इस विवाद की जड़ों को कानून एवं नैतिकता के अन्तर्विरोध में आसानी से देखा जा सकता है। इस विवाद के संबंध में England में 1958 में Wool Findal कमिटी ने अपनी रिपोर्ट में इस बात का उल्लेख किया था कि जब तक किसी समस्या के प्रति समाज आक्रोशित नहीं होता, उसके विरुद्ध कानून बनाकर उक्त समस्या को अपराध घोषित करना उचित नहीं है। क्योंकि ऐसे कानून सामाजिक स्वीकृति (Social Acceptance) प्राप्त नहीं कर पाते हैं।

जहाँ तक समलैंगिकता का भारतीय संदर्भ का प्रश्न है तो प्रारम्भ से ही इसे अनैतिक क्रिया के रूप में देखा जाता रहा है और चूंकि समलैंगिकता के प्रति वैश्विक दृष्टिकोण में लगातार परिवर्तन हो रहे हैं, प्रभावस्वरूप भारत में भी इसके समर्थकों की संख्या में वृद्धि हो रही है। किन्तु यह भी उल्लेखनीय है कि आज भी भारत में समलैंगिकता के समर्थकों की संख्या नगण्य है। जहाँ तक सरकार द्वारा धारा 377 में आवश्यक संशोधन के सन्दर्भ में न्यायालय का पक्ष है वह भी महत्वपूर्ण है कि इस धारा का प्रयोग अधिकतर लोगों को अनावश्यक रूप से परेशान करने हेतु किया गया है। अत: यह इस धारा में संशोधन आवश्यक है। हाल में सर्वोच्च न्यायालय ने समलैंगिकता को भारतीय दंड संहिता की धारा 377 के दायरे बाहर करके इसको मान्यता दे दी है। परन्तु इस संदर्भ में जरूरी है कि इसके पक्ष में जनमत का भी निर्माण किया जाय।

भारत में विवाह : संभावित प्रश्न
(Marriage in India : Possible Questions)

1. समलैंगिकता क्या है? क्या यह उपयुक्त है? इसके दुष्परिणामों की चर्चा कीजिए।
2. समलैंगिकता ने विवाह जैसी संस्था पर प्रश्न-चिह्न खड़ा किया है। चर्चा करें।
3. सरोगेसी क्या है? क्या इसे व्यापक स्वीकृति मिलनी चाहिए? अपने विचार प्रस्तुत करें।
4. भारत में विवाह कानून में हुए नवीन परिवर्तनों ने जहां एक तरफ भारतीय महिलाओं को सशक्त किया है तो दूसरी तरफ विवाह-विच्छेद की दर में वृद्धि की सम्भावना को पुष्ट करके महिलाओं के समक्ष नवीन चुनौती भी प्रस्तुत की है। चर्चा कीजिए।
5. भारत में अंतर्जातीय विवाह की नवीन प्रकृति पर चर्चा करें।
6. भारत में 'लिव-इन-रिलेशनशिप' की बढ़ती प्रवृत्ति ने भारतीय संस्कृति में विखंडन को संभव बनाया है। चर्चा करें।

✪✪✪✪✪

Dr. S.S. Pandey

5

भारत में परिवार
(Family in India)

भारत एक बहुलक समाज है जहाँ कई धर्म, जनजाति, जाति एवं सांस्कृतिक समूह (Cultural Group) साथ-साथ रहते हैं और इन सभी समूहों में परिवार की प्रकृति एवं स्वरूप में कुछ न कुछ भिन्नताएँ पायी जाती हैं। बावजूद इसके भारत में सामान्यत: परिवार से तात्पर्य संयुक्त परिवार से है। संयुक्त परिवार व्यक्तियों का एक ऐसा समूह है जो वैवाहिक, रक्त एवं गोद लिए गए सम्बन्धों से जुड़े होते हैं। इसमें तीन से अधिक पीढ़ी के सदस्य एक साथ और एक छत के नीचे रहते हैं। एक सामान्य रसोई में भोजन करते हैं, सामान्य सम्पत्ति के स्वामी होते हैं, एक ही कुल देवता की पूजा करते हैं और पारस्परिक कर्तव्य तथा भावनात्मक एकता से आबद्ध होते हैं।

संयुक्त परिवार की विशेषताएँ (Characteristics of Joint Family)

संयुक्त परिवार की अवधारणा को समझने के लिए आवश्यक है कि इस अवधारणा की विशेषताओं का अध्ययन किया जाए जो निम्नानुसार हैं-

1. संयुक्त परिवार के लिए सामान्य निवास प्रमुख लक्षण है। जिसके अनुसार संयुक्त परिवार के सभी सदस्य एक मकान में साथ-साथ रहते हैं।
2. सामान्य रसोई अर्थात् संयुक्त परिवार के सभी सदस्य एक चूल्हे पर बना भोजन खाते हैं।
3. सामान्य सम्पत्ति अर्थात् एक पूर्वज की सन्तानें सामान्य रूप से सम्पति विरासत (Heritage) में प्राप्त करती है। संयुक्त परिवार के सदस्यों की आय एक स्थान पर एकत्र की जाती है तथा वहाँ से सबकी आवश्यकताएँ पूरी की जाती हैं।
4. अनेक पर्वो-उत्सवों में परम्परागत संयुक्त परिवार के सभी सदस्य साथ-साथ भाग लेते हैं। परिवार के अनेक सदस्य शिक्षा, नौकरी, व्यापार आदि के कारण मूल निवास से बाहर रहते हैं लेकिन वे परिवार की पूजा व अन्य अवसरों पर सम्मिलित होते हैं।
5. संयुक्त परिवार व्यक्तियों का एक ऐसा समूह है जिसके सदस्य परस्पर विशिष्ट रक्त, विवाह अथवा गोद-सम्बन्धों से सम्बन्धित होते हैं।
6. संयुक्त परिवार बन्धुत्व से सम्बन्धित व्यक्तियों का संकलन है जो एक धर्म को मानने वाले हैं। समाज संयुक्त परिवार के सदस्यों को सामाजिक और धार्मिक कार्यों के सन्दर्भ में एक इकाई मानता है।
7. परिवार के मुखिया की स्थिति संबंधित समाज की प्रथा और परम्परा (Custom and Tradition) निश्चित करती है। परिवार का सबसे बड़ा पुरुष मुखिया, पुरोहित, न्यायाधीश आदि जैसी भूमिकाएँ संयुक्त परिवार के स्तर पर निभाता है।
8. परम्परागत संयुक्त परिवार बड़ा परिवार होता है। जिसमें तीन या तीन से अधिक पीढ़ी के व्यक्ति साथ-साथ रहते हैं। इसमें एक पीढ़ी में कई विवाहित भाई अपनी पत्नियों के साथ-साथ रहते हैं।
9. एकाकी या नाभिक परिवार की तुलना में संयुक्त परिवार अधिक स्थायी होते हैं। संयुक्त परिवार तीन या इससे अधिक पीढ़ी की संयुक्तता वाला होता है। अनेक सदस्य साथ-साथ रहते हैं। उनमें 'हम' की भावना या सामूहिक दृष्टिकोण (Collective Approach) 'एक के लिए सब और एक सबके लिए' वाली भावना पाई जाती है।

संयुक्त परिवार में होने वाले आधुनिक परिवर्तन (Modern Changes in Joint Family)

संयुक्त परिवार भारतीय समाज की केन्द्रीय संस्था और परिवार का प्रमुख स्वरूप रहा है। जो आधुनिकीकरण और संचार क्रांति के वर्तमान दौर में परिवर्तन की ओर क्रियाशील है। संयुक्त परिवार में होने वाले इन परिवर्तनों को निम्न बिंदुओं के अन्तर्गत देखा जा सकता है-

संरचना में परिवर्तन (Change in Structure)

1. औद्योगीकरण, नगरीकरण, आधुनिकीकरण एवं मूल्य व्यवस्था के प्रसार आदि के कारण नवस्थानीय आवास में वृद्धि हुई है। जिसके कारण आज संयुक्त परिवार आकार में छोटे होते जा रहे हैं। सहविवाही एवं सहभोजी (Co-marriage and Commensal) इकाई के रूप में उसके अधिकांश सदस्य अपने एकाकी परिवार के साथ अपने रोजगार के क्षेत्रों में रहने लगे हैं।
2. स्वतंत्रता एवं समानता के मूल्यों के प्रसार आदि के कारण परिवार के मुखिया की सत्ता विकेंद्रीकृत हुई है तथा युवाओं एवं कमाने वाले व्यक्तियों की तरफ सत्ता हस्तातंरित हुई है।
3. पारिवारिक निर्णय प्रक्रिया में परिवार के अन्य सदस्यों की सहभागिता (Involvement) में वृद्धि हुई है। यहाँ तक कि बच्चों से भी महत्वपूर्ण विषयों पर राय ली जाती है।

Dr. S.S. Pandey

KGS IAS

4. स्वतंत्रता एवं समानता के मूल्य, आधुनिक शिक्षा एवं औद्योगीकरण के कारण स्त्रियों में आर्थिक आत्मनिर्भरता बढ़ी है और परिवार में उनकी प्रस्थिति में सुधार हुआ है।
5. अवसरों एवं पुरस्कारों का वितरण अब व्यक्ति की परिवार की सदस्यता के आधार पर नहीं बल्कि उसके गुणों से निश्चित होने लगे हैं।
6. संरचना में परिवर्तन के साथ-साथ प्रकार्यात्मक संयुक्तता (Functional Connectivity) का विस्तार क्षेत्र सीमित हो गया है।

अन्त:पारिवारिक सम्बन्धों में परिवर्तन (Changes in Inter-Family Relations)

1. आज बच्चों पर परम्परागत संयुक्त परिवार के कठोर नियंत्रण लचीले हो गए हैं तथा माता-पिता एवं बच्चों के सम्बन्ध समानतायुक्त एवं मित्रवत हुए हैं। सत्ता सम्बन्ध कुल पिता से बच्चों के पिता की ओर हस्तांतरित हो रहे हैं। आज परिवार के सभी सदस्यों को पारिवारिक समस्याओं पर विचार करने की स्वतंत्रता मिल रही है।
2. आज बच्चों द्वारा माता-पिता के निर्णयों का विरोध प्रारंभ हो गया है।
3. पति-पत्नी के बीच निकटता में वृद्धि हुई है और इनके बीच समानतायुक्त और मित्रवत् सम्बन्ध विकसित हुए हैं, बावजूद इसके आज बहुत से वैसे भी परिवार विकसित हुए हैं जहाँ पत्नी की सत्ता प्रमुख है। किन्तु, अधिकांश परिवारों में निर्णय प्रक्रिया में पुरुषों का वर्चस्व बना हुआ है।
4. आज परिवार में सास-बहू के मध्य सम्बन्ध भी परिवर्तित हुए हैं जहाँ सास की सत्ता में कमी आई है, वहीं बहुओं की स्वतंत्रता में वृद्धि हुई है।

प्रकार्यों में परिवर्तन (Change in Functions)

1. आज संयुक्त परिवार में पीढ़ी की गहराई कम होने तथा बच्चों द्वारा अधिकांश समय घर से बाहर बिताने आदि के कारण शिक्षा तथा संस्कृति के हस्तांतरण सम्बन्धी संयुक्त परिवार की भूमिका कमजोर हुई है।
2. आज धार्मिक कार्यों में परिवर्तन हुआ है और कठोर धर्म-विधियां अब लचीली हो गयी हैं।
3. उपभोक्तावादी संस्कृति के प्रसार एवं बढ़ते व्यक्तिवाद के कारण संयुक्त परिवार के आर्थिक प्रकार्यों (Economic Functions) में भी परिवर्तन देखा जा रहा है। अब परिवार के सदस्य अपनी कमाई मुख्यत: अपने पत्नी एवं बच्चों पर खर्च करते हैं तथा अन्य नातेदारों के प्रति उनकी भूमिका निरन्तर कम होती जा रही है।
4. आज इसके मनोरंजनात्मक प्रकार्यों को भी अन्य आधुनिक संस्थाओं यथा टीवी, सिनेमा आदि द्वारा ले लिया गया है।
5. आज इसके सामाजिक एवं आर्थिक सुरक्षा सम्बन्धी कार्य लोक कल्याणकारी राज्यों द्वारा अपने हाथ में ले लिया गया है।

अन्य नवीन परिवर्तन (Other New Changes)

आज विघटित परिवारों की संख्या बढ़ी है अर्थात् पुत्र अपने माता-पिता से अलग रहना पसंद करते हैं यद्यपि वे उनके प्रति परम्परागत दायित्वों (Traditional Obligation) का निर्वाह करते रहते हैं। आज शहरों में जहाँ पति-पत्नी दोनों कमाने वाले हैं, बच्चों के पालन-पोषण आदि आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु निकट सम्बन्धियों को साथ रखते हैं। वहीं कुछ दम्पति ऐसे भी हैं जो निकट सम्बन्धियों के स्थान पर नौकरानी या आया से अपना काम चलाना पसंद करते हैं। अब माता-पिता भी अपने बेटों से एक ही शहर में अलग-अलग रहते पाये जा रहे हैं और अपने भविष्य के लिए पृथक व्यवस्था करना शुरू कर दिया है। अब द्विपक्षीय नातेदारी को भी मान्यता मिल रही है और बेटियाँ भी माता-पिता की देखभाल करने लगी हैं।

स्पष्टत: इस तथ्य से इंकार नहीं किया जा सकता है कि भारत में आधुनिकता की प्रवृत्ति ने भारतीय संयुक्त परिवार में व्यापक परिवर्तन को सम्भव बनाया है जिसमें भौतिक पृथक्करण प्रमुख है। तथापि, यह भी सत्य है कि भौतिक पृथक्करण की प्रमुखता, संयुक्तता की भावना की समाप्ति का सूचक नहीं हो सकता। वर्तमान संयुक्त परिवार से पृथक हो जाने के पश्चात् भी इसके सदस्यों में एक-दूसरे के प्रति सहयोग और कर्तव्य की भावना यथावत बनी हुई है। परंतु, इसका दूसरा पहलू यह भी है कि आज संयुक्त परिवार की संयुक्तता की मात्रा पहले की अपेक्षा कम हुई है। अत: निष्कर्ष के तौर पर हम कह सकते हैं कि भारतीय संयुक्त परिवार में परिवर्तन अवश्य हुआ है लेकिन संयुक्तता का केन्द्रीय तत्व कुछ कम ही सही किंतु अभी भी बना हुआ है। हमारे समाज में प्रकार्यात्मक (Functional) प्रकार का संयुक्त परिवार तब तक बना रहेगा, जब तक यह सांस्कृतिक आदर्श बना रहेगा कि "एक पुरुष को अपने माता-पिता एवं अल्पायु के भाई-बहन की देखभाल करनी चाहिए।"

संयुक्त परिवार में परिवर्तन के कारक (Causes of Change in Joint Family)

1. परम्परागत कृषक संयुक्त परिवार उत्पादन और उपभोग की इकाई था। औद्योगीकरण के कारण वह परिवर्तित होकर केवल उपभोग की इकाई बन गया। इससे नाभिक परिवारों (Nuclear Family) का प्रतिशत बढ़ने लगा। औद्योगिक केन्द्रों पर उत्पादन के कारण ग्रामों के कुटीर उद्योग समाप्त हो गए। ग्रामीण व्यक्ति शहरों में प्रवासित हुए और परम्परागत व्यवसाय छोड़कर कल-कारखानों में काम करने लगे। वस्तु-विनिमय (Barter) का स्थान नकद

मुद्रा विनिमय ने ले लिया। इससे संयुक्त परिवार की सामान्य सम्पत्ति की विशेषता टूट गई। स्त्रियाँ काम करने लगीं और संयुक्त-परिवार में रहना नापसन्द करने लगीं।

2. नगरीय क्षेत्रों में शिक्षा, स्वास्थ्य, यातायात के साधन, उपभोग की वस्तुएँ आदि सुविधाओं की उपलब्धता के कारण लोग नगरों में रहना अधिक पसन्द करते हैं। जब लोग ग्राम से संयुक्त परिवार को छोड़कर नगरों में आते हैं तो उससे संयुक्त परिवार विभाजित होता है। नगरों में आवास की समस्या होने से व्यक्ति या तो अकेला रहता है या अपनी पत्नी और बच्चों के साथ, जो कि नाभिक परिवारों का प्रतिशत बढ़ाता है।

3. ब्रिटिश शासन के समय भारतीय पाश्चात्य-शिक्षा और संस्कृति के सम्पर्क में आए। इससे भारतीयों के सामाजिक मूल्य, दर्शन और जीवन का तरीका पाश्चात्यीकृत होने लगा जो नाभिक परिवार को प्रोत्साहन देता है। व्यक्तियों पर भौतिकवाद और व्यक्तिवाद (Materialism and Individualism) के प्रभाव, स्त्रियों की शिक्षा व समानता की भावना, प्रेम-विवाह, तलाक, अन्तर्जातीय-विवाह और व्यक्तिवादी दृष्टिकोण ने संयुक्त परिवार का विभाजन किया और एकाकी परिवार की तरफ आकर्षण बढ़ाया।

4. यातायात के साधनों के विकास ने व्यक्ति का एक स्थान से दूसरे स्थान पर आना-जाना सुगम कर दिया है। पहले व्यक्ति जीवनपर्यन्त संयुक्त परिवार एवं जन्म-स्थान में ही रहता था। लेकिन अब वह संयुक्त परिवार को छोड़कर दूर स्थानों पर नौकरी, व्यवसाय, शिक्षा आदि के लिए चला जाता है। बढ़ी हुई भौगोलिक गतिशीलता (Geographical Mobility) के कारण भी परम्परागत संयुक्त परिवार विभाजित होकर नाभिक परिवारों में परिवर्तित हो रहे हैं।

5. ब्रिटिश सरकार की फूट डालने की नीतियों व कानूनों ने संयुक्त परिवार को तोड़ने में प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से योगदान दिया। हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1929 ने व्यक्ति को सम्पत्ति में अधिकार दे दिया चाहे वह संयुक्त परिवार से अलग रहता हो। हिन्दू स्त्रियों को सम्पत्ति में अधिकार अधिनियम, 1939 ने उन्हें सम्पत्ति में अधिकार प्रदान कर दिया। सम्पत्ति के बँटवारे के अधिनियम के प्रावधान ने संयुक्त परिवार की आधारभूत विशेषता को बदलकर इसे नाभिक परिवार में बदलने की प्रक्रिया को गति प्रदान कर दी। हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 के द्वारा परिवार की महिलाओं (पुत्री, पत्नी, माता आदि) को पारिवारिक सम्पत्ति में अधिकार दे दिया गया। इनके कारण संयुक्त परिवार में परिवर्तन हो रहा है।

6. पारम्परिक रूप से सामाजिक-सुरक्षा का कार्य संयुक्त परिवार का ही था। आज सरकार की अनेक योजनाओं द्वारा व्यक्ति को सामाजिक सुरक्षा प्रदान की जाती है। जैसे-बीमा योजना, भविष्यनिधि कोष, कर्मचारी क्षतिपूर्ति कानून, पेन्शन आदि। इससे नाभिक परिवारों की वृद्धि हो रही है।

7. पहले संयुक्त परिवार अनेक परम्परागत कार्य जैसे– शिक्षा, मनोरंजन, कपड़ा, भोजन, व्यवसाय, खाने-पीने की सामग्री आदि की व्यवस्था करता था। अब यह अन्य समितियों को हस्तांतरित हो गए हैं। आज व्यक्ति संयुक्त परिवार पर निर्भर नहीं रहा।

8. संयुक्त परिवार में अनेक सदस्य साथ-साथ रहते हैं। उनमें परस्पर झगड़े मन-मुटाव व कहासुनी होते रहते हैं। इन झगड़ों से बचने के लिए लोग अलग घर बसाकर रहना पसन्द करते हैं।

9. महिला आन्दोलन ने स्त्रियों में जागृति पैदा की है, जिससे वे स्वयं के अस्तित्व को समझने लगी हैं। वे शिक्षा ग्रहण करने लगी हैं, व्यवसायों में आने लगी हैं, स्वयं के शोषण के प्रति जागरुक हुई हैं, प्रेम-विवाह करने लगी हैं। वे संयुक्त परिवार में नियंत्रण के कारण अब इसमें रहना पसन्द नहीं करती हैं। परिणामतः इससे नाभिक परिवारों की संख्या बढ़ी है।

सामाजिक विधानों का हिन्दू विवाह एवं परिवार पर प्रभाव
(Impact of Social Legislation on Hindu Marriage and Family)

स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व एवं पश्चात् राज्य के हस्तक्षेप और नियमों के निर्माण द्वारा आधुनिकीकरण के परिप्रेक्ष्य में परम्परागत सामाजिक संरचना (Traditional Social Structure) में बदलाव लाने का प्रयास किया गया है। इन विधानों के प्रभाव या इनसे होने वाले परिवर्तनों को हिन्दू विवाह एवं परिवार संस्था के सन्दर्भ में देखा जा सकता है; जैसे–

1. ***सती प्रथा अधिनियम–*** (1829, 1987) के द्वारा भारतीय समाज के अमानवीय प्रथा के रूप में सती प्रथा को रोकने का प्रयास किया गया है। फलतः स्त्रियों की प्रस्थिति में सुधार के साथ पितृसत्तात्मकता (Patriarchy) कमजोर हुई है।

2. ***हिन्दू विधवा पुनर्विवाह अधिनियम–*** (1856) के द्वारा विधवा को पुनर्विवाह न करने की निर्योग्यता से मुक्त कर दिया गया और दूसरे विवाह और संतान को वैध माना गया है, फलतः स्त्रियों की प्रस्थिति में सुधार सम्भव हुआ परन्तु आज भी इसे पूर्ण सामाजिक मान्यता प्राप्त न होने के कारण पूरी सफलता नहीं मिल पायी है।

3. ***बाल विवाह निरोधक अधिनियम–*** (1929) के अन्तर्गत बाल विवाह को रोकने का प्रयास किया गया और इसके लिए विवाह की न्यूनतम उम्र निर्धारित की गयी है। फलतः
   (i) परिवार में बहुओं की स्थिति में सुधार हुआ है।
   (ii) लड़कियों को शिक्षा प्राप्त करने का अवसर मिला है।
   (iii) लड़कियों द्वारा संयुक्त परिवार में अनुकूलन (Adaptation) की कठिनाइयों की वजह से संयुक्त परिवार में टूटने की समस्या देखी गई है।

(iv) महिलाओं के स्वास्थ्य पर सकारात्मक प्रभाव पड़ा है।

4. ***विशेष विवाह अधिनियम-*** (1954) के द्वारा अन्तर्जातीय विवाह (विभिन्न धर्म एंव जाति के मध्य) की वैधानिक अड़चन दूर की गई है और अन्तर्विवाही नियमों को ऐच्छिक बनाया गया है, फलतः-
   (i) स्त्रियों की स्वतंत्रता में वृद्धि हुई है।
   (ii) वैवाहिक निर्णयों में माता-पिता की भूमिका में कमी आई है।
   (iii) संयुक्त परिवार का विघटन तथा एकाकी परिवार का उदय हुआ है।

5. ***हिन्दू विवाह तथा विवाह विच्छेद अधिनियम-*** (1955) के द्वारा स्त्री, पुरुष दोनों को विवाह सम्बन्धी कुछ शर्तों को मानना अनिवार्य कर दिया गया तथा स्त्रियों को भी विवाह-विच्छेद के अधिकार दिए गए हैं, फलतः-
   (i) पुरुष प्रभुता का ह्रास हुआ है।
   (ii) स्त्रियों की प्रस्थिति में सुधार हुआ है।
   (iii) विवाह का स्थायित्व प्रभावित हुआ है एवं विवाह संस्कार न रहकर एक समझौता बन गया है।
   (iv) बच्चों के लालन-पालन की समस्या उत्पन्न हुई है।

6. ***दहेज निरोधक अधिनियम-*** (1961, 86) के द्वारा दहेज (लेन-देन) को दंडनीय अपराध घोषित किया गया है, फलतः स्त्रियों की प्रस्थिति में सुधार हुआ है।

7. ***हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम-*** (1956, 2004) के द्वारा लड़कियों को अपने माता-पिता की सम्पत्ति में लड़कों के समकक्ष अधिकार प्रदान किया गया है, फलतः स्त्रियों की प्रस्थिति (Status) में सुधार हुआ है तथा महिला सशक्तिकरण में वृद्धि हुई है। जहाँ लड़कियों द्वारा अपने पिता की सम्पत्ति पर अधिकार का दावा किया गया है वहाँ पारिवारिक तनाव जैसी समस्या उत्पन्न हो रही है, परन्तु यह संक्रमणकालीन अवस्थाजनित तनाव व संघर्ष है। अन्ततः यह महिला सशक्तिकरण की दिशा में एक सकारात्मक कदम साबित होगा तथा दहेज प्रथा के उन्मूलन में सहायक होगा।

मूल्यांकन (Evaluation)

स्पष्ट है उपरोक्त वैधानिक प्रयासों ने भारत में विवाह संस्था के विभिन्न आयामों में परिवर्तन को संभव बनाया है, परन्तु अर्थ के बढ़ते महत्व, विधान में निहित कमियाँ, इसके कार्यान्वयन के लिए दृढ़ इच्छा शाक्ति का अभाव, इन विधानों के पक्ष में जागरुकता का अभाव आदि के कारण अभी तक अपेक्षित परिवर्तन सम्भव नहीं हो पाया है। भारत के गांवों में आज भी बाल विवाह प्रथा पायी जाती है। आज भी लगभग सभी विवाह जाति के अन्तर्गत ही सम्पन्न किये जाते हैं। तलाक की वैधानिकता के बाद भी औरतें आज पति के जुल्मों को सहती हैं, आज भी विवाह में दहेज एक सामान्य घटना बनी हुई है और जिसे रोका नहीं जा सका है। ये सभी तथ्य सिद्ध करते हैं कि वैधानिक प्रयासों द्वारा जो परिवर्तन सामने आये हैं, वह सीमित हैं और कुछ पक्षों में ही हैं। अतः इन परिवर्तनों को प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि इन विधानों के क्रियान्वयन के लिए दृढ़ इच्छा शक्ति हो और शिक्षा प्रसार द्वारा इन विधानों के पक्ष में जनमत निर्माण हो क्योंकि जब तक इसके पक्ष में सामाजिक अपील नहीं होगी, तब तक विधानों का व्यावहारिक लाभ प्राप्त करना कठिन है।

भारत में परिवार : संभावित प्रश्न

1. हिन्दू विवाह एंव परिवार पर सामाजिक विधानों के प्रभावों का वर्णन करें।
2. भारतीय संयुक्त परिवार के अर्थ एवं लक्षण को स्पष्ट कीजिए तथा संयुक्त परिवार व्यवस्था में होने वाले आधुनिक परिवर्तनों की चर्चा कीजिए।
3. हाल के वर्षों में पारिवारिक विघटन में वृद्धि हुई है। इसके लिए उत्तरदायी कारकों की चर्चा कीजिए।
4. आर्थिक विकास की समकालीन प्रक्रियाओं ने भारतीय संयुक्त परिवार व्यवस्था को किस प्रकार प्रभावित किया है? स्पष्ट करें।
5. समकालीन भारत में संयुक्त परिवार में होने वाले परिवर्तन एवं निरन्तरता के तत्वों को दर्शाइए। इसके लिए कौन-कौन से कारक जिम्मेदार हैं?

✪✪✪✪✪

6

भारत में धर्म
(Religion in India)

भारत में धार्मिक समुदाय
(Religious Communities in India)

प्राचीन काल से ही भारत एक बहुधर्मी समाज (Ploytheistic Society) रहा है। 1931 की जनगणना के अनुसार भारत में 10 धार्मिक समूह थे। इनमें हिन्दू, सिक्ख, जैन, बौद्ध, जोरास्ट्रियन, मुस्लिम, ईसाई, यहूदी और अन्य जनजातीय एवं गैर-जनजातीय धार्मिक समूह सम्मिलित थे। 1961 की जनगणना में केवल सात धार्मिक कोटियों को अंकित किया गया था जो हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई, सिक्ख, बौद्ध, जैन और अन्य धर्म तथा सम्प्रदाय के रूप में कोटिबद्ध किये गये थे।

2001 की जनगणना के अनुसार भारत में 80.5 प्रतिशत लोग जिनमें अनुसूचित जातियाँ और अनुसूचित जनजातियाँ भी सम्मिलित हैं; हिन्दू धर्म के अनुयायी हैं। हिन्दू धर्मावलम्बी सभी राज्यों में फैले हुए हैं लेकिन पाँच राज्यों-जम्मू और कश्मीर, मिजोरम, मणिपुर, नागालैण्ड और लक्षद्वीप में वे अल्पसंख्यक हैं। हिन्दू धर्म अपने परिवेश में बहुत विशाल है और समस्या यह है कि इसकी परिभाषा में भी कोई स्पष्टता नहीं है। फिर भी सामान्य रूप से हिन्दुओं को तीन सम्प्रदायों में बाँटा जाता है। ये सम्प्रदाय हैं-(1) वैष्णव, (2) शैव और (3) शाक्त।

भारत में वैष्णव सम्प्रदाय के लोग शैव और शाक्त सम्प्रदाय के देवताओं की भी पूजा-अर्चना करते हैं लेकिन उत्तरवैदिक काल में ये सम्प्रदाय एक-दूसरे के घोर विरोधी थे। संस्कृत का एक श्लोक है जिसका अर्थ है कि एक वैष्णव धर्मावलम्बी को सामने मस्त हाथी आ जाने पर भी उससे बचने के लिए शिव मन्दिर में प्रवेश नहीं करना चाहिए। हाथी के पाँवों के नीचे दबकर मर जाना उसके लिए अच्छा होगा इसकी अपेक्षा कि वह जान बचाने के लिये शिव मन्दिर की शरण ले। देसी रियासतों में प्रत्येक राजा का अपना एक सम्प्रदाय था और अपने सम्प्रदाय के उपास्य देव का वह मन्दिर बनाता था। सभी राजनैतिक व धार्मिक क्रियाकलापों का केन्द्र यह सम्प्रदाय हुआ करता था।

भारत में हिन्दू और इस्लाम धर्म के अतिरिक्त जैन और सिक्ख धर्म भी हैं। सामान्यतया सिक्ख धर्म के अनुयायी बड़ी संख्या में पंजाब में मिलते हैं और इसी तरह जैन धर्म के लोग गुजरात, हरियाणा, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, बिहार आदि में अधिक पाये जाते हैं। यद्यपि ये दोनों धर्मावलम्बी उत्तर और मध्य क्षेत्रों में मिलते हैं लेकिन सिक्खों के लिये यह सर्वविदित है कि वे दुनिया के हर कोने में पाये जाते हैं। यह एक उद्यमी समुदाय है। इसी प्रकार जैन धर्मावलम्बी भी उद्यमी हैं और वे दक्षिण भारत में भी अपना प्रभाव रखते हैं।

भारतीय अल्पसंख्यकों में ईसाई और पारसी धर्मावलम्बी भी सम्मिलित हैं। ईसाईयों का केन्द्रीकरण उन स्थानों पर ज्यादा है जहाँ ब्रिटिश शासन ने अपना व्यवसाय या प्रशासन केन्द्रित किया था। इस अर्थ में पश्चिमी बंगाल तथा केरल में ईसाई बड़ी संख्या में पाये जाते हैं। भारत में धार्मिक समुदायों (Religious Community) के संदर्भ में आदिवासी धर्म के अनुयायियों का उल्लेख भी महत्वपूर्ण है। आदिवासी धर्म जनगणना में पृथक् रूप से अंकित किया जाता है। प्राय: जनगणना में काम करने वाले हिन्दू गणक आदिवासियों को हिन्दू धर्मावलम्बियों की श्रेणी में रखते हैं फिर भी कुछ राज्यों में जहाँ ईसाई मिशनरियों का प्रभाव है वहां आदिवासियों ने ईसाई धर्म को अपना लिया है। मध्य प्रदेश, उड़ीसा, बिहार, गुजरात, झारखण्ड और राजस्थान में ईसाई आदिवासियों की संख्या अधिक है।

पारसी धर्मावलम्बियों की संख्या बहुत कम है। वे केवल 70,000 के लगभग हैं और इनका मुख्य निवास दक्षिण गुजरात और महाराष्ट्र है। पारसी अग्नि की पूजा करते हैं और मुख्य रूप से यह व्यवसायी समुदाय माने जाते हैं।

बौद्ध धर्म के अनुयायियों की संख्या मात्र 0.76 (2001) प्रतिशत है। इनमें कोई जाति-प्रथा नहीं हैं और इनका मुख्य केन्द्र बिहार, हिमाचल प्रदेश और जम्मू-कश्मीर है।

अंत:धार्मिक क्रियाएँ और उनकी अभिव्यक्ति
(Inter Religious Practices and their Expression)

भारतीय समाज में दो प्रकार की धार्मिक परम्पराएँ (Religious Practices) दिखाई देती हैं। प्रथम, वे धर्म जिनका उदय भारत में हुआ जैसे-बौद्ध, जैन और सिख धर्म तथा द्वितीय, वे जिनका जन्म तो अन्य देशों में हुआ लेकिन धीरे-धीरे वे भारतीय समाज में फैल गए जैसे-इस्लाम, ईसाई और जरथुस्त्र धर्म। विविध धर्मों का सह-अस्तित्व भारतीय समाज में धार्मिक विश्वासों और मतों की बहुलता तथा जीवन शैलियों की विविधता को प्रदर्शित करते हैं। इन विविध जीवन शैलियों में सामंजस्य के अभाव के कारण आधुनिक भारत में धार्मिक अंत:क्रियाएँ (Religious Interactions) कुछ नकारात्मक परिणामों को उत्पन्न कर रही हैं।

परम्परागत भारतीय समाज में जहाँ धार्मिक मूल्यों की प्रबलता, आध्यात्मिकता, पारलौकिकता, सोपानिकता तथा सत्ताधारी के प्रति नम्रता आदि गुणों पर अधिक बल दिया जाता था वहीं आधुनिक धर्मनिरपेक्ष भारतीय समाज में विचारों की स्वतंत्रता, भौतिक संस्कृति की प्रधानता, सांसारिकता की भावना तथा सत्ताधारी के सामने नम्रता

KGS IAS

के स्थान पर विद्रोह का महत्व बढ़ा है। इस प्रकार आधुनिक भारतीय समाज ने व्यक्ति के विचारों के उन तत्वों को स्वीकार कर लिया है जो ईसाई, इस्लाम व सिक्ख धर्मों की परम्परा माने जाते हैं। समकालीन भारत में एकता की भावना विविधता से ऊपर है। पहले जब अन्य सांस्कृतिक समूह (Cultural Group) स्वदेशी धार्मिक विश्वासों के सम्पर्क में आते थे, वे अपनी पहचान बनाए रखते हुए क्षेत्रीय सांस्कृतिक दशाओं को भी अपना लेते थे। इस प्रकार के सामाजिक सांस्कृतिक परिवेश में विविधता में एकता की अवधारणा स्थापित हुई। परंतु, समकालीन भारतीय संदर्भ में प्रतीत होता है कि विविध धर्म एक दूसरे से समायोजन करना नहीं चाहते। प्रारम्भ में कुछ ईसाई धर्म प्रचारकों ने कुछ लोगों, विशेष रूप से जनजातियों और निम्न जातीय हिन्दुओं को ईसाई धर्म में परिवर्तित कर लिया था। आज कुछ हिन्दू कट्टरपंथियों ने, विशेष रूप में विश्व हिन्दू परिषद् तथा बजरंग दल के सदस्यों ने, सम्परिवर्तित ईसाइयों और मुसलमानों को पुन: हिन्दू धर्म में लाने का प्रयास किया। हाल में ही ईसाइयों पर हमले, दिसम्बर 1998 में गुजरात व जनवरी 1999 में उड़ीसा में धर्म परिवर्तित हिन्दुओं को पुन: हिन्दू धर्म की मुख्य धारा में वापस लाने के प्रयास भी इसके प्रमाण हैं।

अलगाववादी, साम्प्रदायिक शक्तियां व संकीर्ण दृष्टिकोण विघटनकारी परिणाम उत्पन्न करते हैं। स्वतंत्रता के पश्चात् धर्मान्धता का पुनर्उदय 1970 के दशक से हुआ है। कुछ हिन्दू व मुसलमान धर्मांध लोग अपने धर्म विरुद्ध कार्यों के लिए धर्म को ही साधन के रूप में प्रयोग करते हैं। भिन्न धर्मों के लोग साम्प्रदायिक दंगों और तनावों के लिए एक दूसरे को दोष देते हैं। भारत पाकिस्तान विभाजन के समय विभिन्न धर्मों के हजारों लोगों की हत्या के लिए हिन्दू व मुसलमान एक दूसरे पर दोषारोपण करते हैं। 1960 व 1964 के साम्प्रदायिक दंगों के लिए सदैव हिन्दू और मुसलमानों ने एक दूसरे को उत्तरदायी ठहराया है। 1984 में इन्दिरा गांधी की हत्या के बाद हुए दंगों में सिक्खों ने दिल्ली, उत्तर प्रदेश व कई अन्य राज्यों में सिक्खों की हत्या के लिए हिन्दुओं पर दोषारोपण किया। 1993 में अयोध्या में एक 'विवादास्पद निर्माण' को गिराने व महाराष्ट्र दंगों में मुसलमानों की हत्या के लिए मुसलमानों ने हिन्दुओं को दोषी ठहराया। 1998-99 में ईसाइयों ने गुजरात व उड़ीसा में ईसाइयों पर हमले के लिए हिन्दुओं को उत्तरदायी ठहराया। ऐसी स्थितियों का राजनीतिक लाभ उठाने के लिए स्वार्थी राजनेताओं द्वारा धर्म एक हथियार के रूप में प्रयोग किया गया। पंजाब में भिण्डरावाला आंदोलन और कश्मीर में कुछ मुसलमानों का पाकिस्तान के पक्ष का रुझान, धार्मिक अल्पसंख्यकों की अतिवादिता को प्रदर्शित करते हैं। भारतीय जनता पार्टी के एक अनुभाग द्वारा 'हिन्दुत्व' के नारे ने मुस्लिमों और ईसाइयों में बहुसंख्यकों का भय और हिन्दू विरोधी भावना को और सशक्त बनाया है।

इन तनावों के बावजूद भारतीय संदर्भ में विविधता में एकता और सहिष्णुता देखी जाती है। अंग्रेजों ने हिन्दुओं, मुसलमानों और सिक्खों की धार्मिक भावनाओं को भड़का कर उन्हें विभक्त करने का प्रयत्न किया लेकिन स्वतंत्रता संग्राम में वे एक रहे। आज भी अन्त:धार्मिक विवाह (Inter-Religious Marriage) हो रहे हैं तथा त्यौहार मिलकर मनाए जाते हैं। मध्यकालीन भक्तों (कबीर, नामदेव, रविदास, नानक, चैतन्य, आदि जिन्होंने धार्मिक बंधनों से ऊपर उठने का प्रयत्न किया, एक सूत्र में पिरोने वाली बोली प्रचारित की तथा कर्मकाण्डवाद की निन्दा की) के समान ही स्वतंत्रता के बाद गांधी, नेहरू जैसे प्रगतिशील नेताओं ने मानव एकता पर बल दिया। आज भारत का कोई अपना अधिकृत धर्म नहीं है। संविधान सभी धर्मों को स्वतंत्रता प्रदान करता है। भले ही कुछ राज्यों में राजनैतिक सत्ता हथियाने के लिए धर्म का सहारा लिया जाता है परंतु अधिकांश लोग धर्म आधारित इस राजनीति के नकारात्मक परिणामों को अच्छी तरह समझ गए हैं। कुछ लोग मानते हैं कि हमारे देश में ऐसी स्थिति नहीं है जिसमें भिन्न धर्म एक दूसरे के साथ समंजन करें। उनके अनुसार कुछ ऐसे धर्म हैं जो व्यक्तिवाद को प्राथमिकता प्रदान करते हैं (जैसे, इस्लाम, ईसाई) और दूसरे ऐसे भी धर्म हैं जो दैवी अस्तित्व के अवैयक्तिक स्वरूप (Impersonal form) को मान्यता देते हैं। ऐसे भी धर्म हैं जिनके पास देवत्व का आधारभूत सिद्धांत नहीं है जबकि अन्य ऐसे धर्म हैं जो देवत्व के सिद्धांत पर ही आधारित हैं लेकिन यह केवल विविधता दर्शाता है न कि असहिष्णुता। परंतु, समकालीन भारत में धार्मिक विचार राजनीति से जुड़ने लगे हैं। प्रगतिशील विचारों के कुछ व्यक्ति हैं जो सहिष्णुता व सामंजस्य के आधार पर नई सामाजिक संरचना बनाना चाहते हैं और अन्य लोग भी हैं जो रूढ़िवादी व प्रतिक्रियावादी विचारधारा (Reactionary Idealogy) के हैं, जो वर्तमान सामाजिक ढाँचे में कोई परिवर्तन नहीं चाहते हैं। इस प्रकार दो द्वन्दात्मक विचारधाराएं साम्प्रदायिक दंगों और संघर्षों को जन्म देती हैं। अत: इन स्थितियों में संघर्षरत धार्मिक विचारधाराओं से समझौता करना सरल नहीं है और धार्मिक वैचारिकी के आधार पर विरोधी समूहों के बीच स्वतंत्र अन्त:क्रिया (Interaction) निकट भविष्य में सहज एवं सामान्य होने की प्रबल सम्भावनाओं को प्रदर्शित नहीं करती।

भारत में धार्मिक पुन:प्रवर्तनवाद
(Religious Revivalism India)

धार्मिक पुन:प्रवर्तनवाद या पुनरुत्थानवाद एक नवीन सामाजिक परिघटना के तौर पर उभरकर सामने आया एक सामाजिक तथ्य है। यहां पुनरुत्थान या पुन:प्रवर्तन का तात्पर्य अपनी खोई प्रतिष्ठा को पुन: प्राप्त करने से है। उल्लेखनीय है कि औद्योगीकरण, नगरीकरण, विज्ञान एवं तकनीक के विकास तथा आधुनिक मूल्यों के व्यापक प्रचार-प्रसार ने एक सामाजिक संस्था के रूप में धर्म को काफी क्षत किया था। किन्तु, पिछले कुछ दशकों से धर्म पुन: अपनी खोई हुई प्रतिष्ठा को प्राप्त करने की दिशा में तेजी से अग्रसर है और

इसे अवधारणा के रूप में 'धार्मिक पुनःप्रवर्तन या पुनरुत्थानवाद' के नाम से जाना जाता है।

यद्यपि 1970 के बाद विकसित धार्मिक पुनःप्रवर्तनवाद वर्तमान समय में संपूर्ण दुनिया में विचार का विषय बना हुआ है, किन्तु इसका भरतीय संदर्भ स्वयं में विशेष स्थान रखता है। भारत प्रारंभ से ही एक धर्म आधारित सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक व्यवस्था का पोषक रहा है। किन्तु, सदियों की अधीनता, समाज में व्याप्त तमाम कुरीतियों, कुप्रथाओं तथा बाह्य आडम्बरों के कारण धर्म की साख लगातार गिरती रही और जबकि भारतीय संविधान ने धर्मनिरपेक्षता को आधारभूत विशेषता के रूप में आत्मसात किया; एक संस्था के रूप में धर्म काफी आहत हुआ।

यद्यपि भारत में धार्मिक पुनःप्रवर्तनवाद की शुरुआत औपनिवेशिक काल के दौरान ही राजा राममोहन राय, स्वामी दयानंद सरस्वती, स्वामी विवेकानंद जैसे सामाजिक-धार्मिक सुधारवादियों के नेतृत्व में हो चुकी थी, किंतु उनका प्रयास सुधारवादी या तमाम कुरीतियों व कुप्रथाओं को दूर कर हिन्दू धर्म का विशुद्धीकरण कर उसके आदर्श स्वरूप को स्थापित करना था। वर्तमान में जिस धार्मिक पुनःप्रवर्तनवाद की बात की जाती है उसकी शुरुआत 1970 के दशक में हुई है।

भारत में धार्मिक पुनःप्रवर्तनवाद के कारण (Causes of Religious Revivalism in India)

भारत में धार्मिक पुनःप्रवर्तनवाद एक साथ कई कारकों का समेकित परिणाम है। इन कारकों को निम्नांकित शीर्षकों के अंतर्गत स्पष्ट किया जा सकता है:—

1. ***मूलतत्ववाद का प्रभाव (Effect of Fundamentalism):*** धार्मिक मूलतत्ववादी दृष्टिकोण का मूल तात्पर्य कट्टरता का संकेत करता है। स्वधर्म की श्रेष्ठता व अन्य धर्मों के प्रति हीन व नकारात्मक भावनाओं तथा प्रदर्शनों का प्रचार-प्रसार धार्मिक मूलतत्ववाद के प्रमुख औजार हैं। धार्मिक पुनःप्रवर्तनवाद के विकास में इसका महत्वपूर्ण प्रभाव यह है कि यह पहचान के संकट की विश्वव्यापी समस्या का एक निदान प्रस्तुत करता है और व्यक्ति को इसके लिए अपने धर्म से जुड़े रहने को प्रेरित करता है।
2. ***धार्मिक सुधार संगठनों की सक्रियता (Activism of Religious Reform Organizations):*** औपनिवेशिक काल के दौरान तमाम सामाजिक, धार्मिक सुधारकों ने 'धर्म' संस्था में व्याप्त कुरीतियों को दूर करने का प्रयास किया था। इस क्रम में उन्होंने विभिन्न संस्थाओं की भी स्थापना की थी जो आज भी अपने उद्देश्यों की पूर्ति हेतु सक्रिय हैं। इन संगठनों अथवा संस्थाओं में ब्रह्म समाज, आर्य समाज, प्रार्थना समाज, रामकृष्ण मिशन आदि प्रमुख हैं। जो लोगों को अपने धर्म से जुड़े रहने के लिए अभिप्रेरित कर रहे हैं।
3. ***धार्मिक नेताओं का प्रभाव (Influence of Religious Leaders):*** आज भारत में कई धार्मिक नेता धर्म के पुनःप्रर्वतन के लिए कार्य कर रहे हैं जो प्रवचनों, शिविरों आदि के माध्यम से अपने उद्देश्यों की पूर्ति में लगे हैं। इन धार्मिक नेताओं में मुरारी बापू, संत आशाराम बापू, श्री श्री रविशंकर, बाबा रामदेव आदि का नाम प्रमुखतः उल्लेखनीय है।
4. ***धर्म का बाजारीकरण (Marketization of Religion):*** आज धर्म का बाजारीकरण जोरों पर है। आस्था और संस्कार जैसे तमाम टीवी चैनल, धार्मिक कार्यक्रमों के माध्यम से अपनी टी.आर.पी. बढ़ाने में लगे हैं। इसका सीधा परिणाम यह है कि जहां धर्म के आधार पर ऐसे चैनल मालिकों को आर्थिक लाभ हो रहा है, वहीं ये कार्यक्रम जनमानस के मनोभावों को प्रभावित कर उन्हें अपने धर्म से जोड़ रहे हैं। इसी क्रम में 'हनुमान' पर बनी एनीमेशन फिल्म तथा रामायण जैसे धार्मिक ग्रंथ पर आधारित कार्टून सीरियल्स का भी उल्लेख किया जा सकता है।
5. ***पहचान का संकट (Identity Crisis):*** आज वैश्वीकरण के दौर में जब विश्वग्राम (Global Village) की अवधारण विकसित हो रही है, व्यक्ति अपनी पहचान खोता जा रहा है ऐसी स्थिति में धर्म उस सशक्त माध्यम के रूप में अपने को पुनः स्थापित कर रहा है, जो लोगों को इस पहचान के संकट से निजात दिला सकता है।
6. ***सूचना तथा संचार माध्यमों का प्रभाव (Effect of Information and Communication Medium):*** भारत में धार्मिक पुनःप्रवर्तनवाद के विकास के लिए सूचना और संचार माध्यमों ने महती भूमिका निभाई है। परिणामतः व्यक्ति दुनिया के तमाम समुदायों को धर्म के नाम पर गोलबंद होता हुआ देख स्वयं भी अपने धर्म से अभिन्नतः जुड़ने को प्रेरित होता है।

धार्मिक पुनःप्रवर्तनवाद का प्रभाव (Effect of Religious Revivalism)

स्पष्ट है कि भारत में धार्मिक पुनःप्रवर्तनवाद कई कारकों का समेकित परिणाम है। जहाँ तक इसके प्रभावों का सवाल है ये दो रूपों (सकारात्मक और नकारात्मक) में दृष्टिगत होता है, जिनकी विवेचना निम्नांकित तरीके से की जा सकती है:—

सकारात्मक प्रभाव (Positive Effect)

सामान्यतः यह माना जाता है कि धर्म सामाजिक, राजनीतिक व्यवस्था को बनाए रखने का एक महत्वपूर्ण साधन है और व्यक्ति के आंतरिक व्यक्तित्व से संबंधित आचरणों का नियामक भी है। इस रूप में धार्मिक पुनःप्रवर्तनवाद जहाँ व्यक्ति के आंतरिक आचरण अथवा नैतिकता (Internal Conduct or Morality) को विशुद्धिकृत करने का प्रयास करता है वहीं सभी धर्मों तथा सम्प्रदायों के बीच सर्व-धर्म

समभाव की धारणा के तहत सामाजिक समरसता की भावना को मजबूत करता है। वर्तमान में यह एक ओर व्यक्ति को आधुनिक मूल्यों से उत्पन्न पहचान के संकट से निजात दिलाता है तो दूसरी ओर भागम-भाग व तनावपूर्ण जिंदगी से उत्पन्न शारीरिक, मानसिक समस्याओं के प्रति आध्यात्मिक दृष्टि प्रदान कर मानसिक शांति प्रदान करता है। यही वजह है कि चाहे वह बाबा रामदेव का योग शिविर हो या फिर तमाम साधु-महात्माओं व संतों का प्रवचन कार्यक्रम, भारी संख्या में लोग उनमें भाग लेकर आत्म संतुष्टि प्राप्त करते हैं। इस प्रभाव को केवल हिन्दू धर्म में ही नहीं बल्कि इस्लाम, सिक्ख आदि धर्मों के संदर्भ में भी देखा जा सकता है।

नकारात्मक प्रभाव (Negative Effect)

धार्मिक पुन:प्रवर्तनवाद के नकारात्मक परिणामों को वस्तुत: धार्मिक मूलतत्ववाद द्वारा उत्पन्न की नयी अंधकट्टरवादिता के साथ जोड़ा जा सकता है। यह कट्टरवादिता (Fundamentalism) इराक में सद्दाम हुसैन के शासन के रूप में, अलकायदा, तालिबानी तथा तथाकथित इस्लामिक आतंकवादी गतिविधियों के तौर पर सामने आई। भारत में जहां कश्मीर समस्या तथा तमाम धार्मिक स्थलों पर हो रहे आतंकवादी हमले के तौर पर इसके परिणामों को देखा जा सकता है वहीं शिवसेना, बजरंगदल, विश्व हिन्दू परिषद जैसे हिन्दूवादी तथा सिमी जैसे मुस्लिम संगठनों की गतिविधियाँ भी धार्मिक कट्टरवाद के उदाहरण के रूप में व्याख्यायित की जा सकती हैं। अभी हाल में ही 'पब-कल्चर' के विरोध में श्रीराम सेना के कार्यकर्ताओं द्वारा कर्नाटक में किया गया असभ्य व्यवहार भी इसी श्रेणी का एक प्रमाण है। धार्मिक मूलतत्ववाद (Religious Fundamentalism) जनित धार्मिक कट्टरवादी गतिविधियों की त्रासदी यह है कि इससे न केवल विभिन्न धर्मों के अनुयायियों के बीच अविश्वास, वैमनस्यता (Animosity), विरोध तथा संघर्षात्मक प्रकृति में इजाफा होता है। वरन् ये सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा सांस्कृतिक सभी पक्षों में विघनकारी प्रभाव डालकर राष्ट्र की एकता व अखण्डता को भी दुष्प्रभावित करते हैं। इन कार्यों से सामाजिक समरसता, समतामूलक समाज की स्थापना के लक्ष्य तथा शांतिपूर्ण सामाजिक जीवन का सत्यानाश तो होता ही है, साम्प्रदायिक दंगों के कारण धन-जन की जो हानि होती है और निर्दोष व्यक्ति बर्बरता से मारे जाते हैं। इसी धार्मिक कट्टरवादिता के तो परिणाम हैं। यह कट्टरवादिता जहां विभिन्न धर्मों के बीच वैमनस्यता को बढ़ावा देती है वहीं सामान्य नागरिकों में सामाजिक असुरक्षा की भावना को उत्पन्न करती है और अन्तत: इससे देश व समाज का विकास अवरुद्ध होता है।

भारत में धार्मिक रूढ़िवाद (Religious Fundamentalism in India)

मूलतत्ववाद या रूढ़िवाद (Religious Fundamentalism) का अर्थ किन्हीं मूल विश्वासों में आस्था तथा किन्हीं मूल सिद्धांतों का अनुसरण एवं उनके प्रति प्रतिबद्धता है। रूढ़िवाद का स्वरूप धार्मिक एवं गैर-धार्मिक दोनों हो सकता है। इस दृष्टि से फासीवाद अथवा साम्यवाद के रूप में सर्वसत्तावाद (Totalitarianism) को भी रूढ़िवाद का रूप कहा जा सकता है।

धार्मिक रूढ़िवाद किसी धर्म के व्यक्ति द्वारा उस धर्म के मूल सिद्धांतों में विश्वास, उनके मौलिक सिद्धांतों में आस्था या प्रतिबद्धता का वह रूप है जो धर्मांधता की सीमाओं को छूती है। जब किसी धर्म-विशेष के मतावलम्बियों द्वारा सारी दुनिया को अपने ही धर्म के संबंध में देखा जाता है और अपने परम्परागत धर्म को अंतिम सत्य के रूप में स्थापित करने का प्रयास किया जाता है तो यह धार्मिक रूढ़िवाद कहलाता है। धार्मिक रूढ़िवादी अपने धर्म से इतर सभी जीवनशैलियों को भ्रष्ट जीवनशैली मानते हैं और इसको शुद्ध करने का प्रयास करते हैं, जैसे-मौलाना मौदूदी (भारत में जमायत-ए-इस्लामी के संस्थापक) ने वर्तमान जीवनपद्धति को अज्ञानी की संज्ञा दी और इसे भ्रष्ट बताया, भिंडरावाले ने 'पतित सिक्खों' का उल्लेख किया जो अपनी दाढ़ी बनाते हैं, अपने बाल कटाते हैं और परम्परागत सिक्ख पद्धति का पालन नहीं करते हैं। इसी संदर्भ में हम अफगानिस्तान के तालिबानियों और पाकिस्तान में लाल मस्जिद के मौलवियों के क्रियाकलापों की चर्चा कर सकते हैं। जिन्होंने परम्परागत मुस्लिम जीवनपद्धति को इस्लाम के अनुरूप माना और आधुनिक जीवनपद्धति का विरोध किया।

एक धार्मिक व्यक्ति होना तथा एक रूढ़िवादी होना एक समान नहीं है क्योंकि धर्म रूढ़िवादी नहीं होता। धार्मिक रूढ़िवाद धर्म का विलोम है, धर्म का शोषक है, जो सामान्य हितों को त्याग कर व्यक्तिगत हितों की पूर्ति हेतु धर्म को भ्रष्ट माध्यम के रूप में प्रयोग करता है।

उपरोक्त विश्लेषण के आधार पर धार्मिक रूढ़िवाद के निम्न लक्षणों की चर्चा की जाती है-

1. एक धार्मिक रूढ़िवादी अपने धर्म समुदाय अथवा इनसे जुड़े विश्वास व्यवस्था को अनिवार्य, यथेष्ट तथा पूर्णत: प्रमाणित मानता है।
2. रूढ़िवादी कभी समझौतावादी नहीं होते हैं बल्कि अपने विश्वास में धर्मांध एवं स्वरूप में अक्रामक होते हैं।
3. धार्मिक रूढ़िवाद के सिद्धांत अनुल्लंघनीय, आक्षरिक, निरंकुश तथा बाध्यकारी होते हैं। यह केवल अधिरोपण की जुबान समझता है और अपने मत को सही मानते हुए समस्त समाज को उस मत को मानने पर बल देता है।
4. धार्मिक रूढ़िवाद का स्वयं का मत होता है वह भले धर्म में हो या न हो परन्तु रूढ़िवादी अपने मत को तर्क द्वारा या धर्म की पुनर्व्याख्या द्वारा धर्मसम्मत सिद्ध कर देता है।
5. धार्मिक रूढ़िवादी विज्ञान एवं विवेकवाद दोनों को अस्वीकार करता है।

6. धार्मिक रूढ़िवादी अपने व्यवहार में उग्रता को प्रदर्शित करते हैं।

हाल के वर्षों में वैश्विक परिदृश्य में धार्मिक रूढ़िवाद एक महत्वपूर्ण घटना रही है। जिसे अफगानिस्तान में तालिबानी क्रियाकलापों, पाकिस्तान में लाल मस्जिद से जुड़े कट्टरपंथियों के क्रियाकलापों तथा भारत में बाबरी मस्जिद कांड के रूप में देखा जा सकता है। भारत में हिन्दू रूढ़िवाद ने जिस तरह के परिणामों (बाबरी मस्जिद विध्वंश कांड, इसाईयों को पुन: हिन्दू बनाया जाना, धार्मिक आधार पर तनाव, द्वेष और दंगों की घटनाएं आदि) तथा मुस्लिम रूढ़िवाद ने जिस तरह के परिणामों (कश्मीर में जेहाद, पैगम्बर या कुरान के विरुद्ध लिखने या बोलने वालों की हत्या का फतवा, तथा धर्म आधारित तनाव, द्वेष व संघर्ष में वृद्धि आदि) को उत्पन्न किया है इससे भारत में धर्म निरपेक्षीकरण की प्रक्रिया बाधित हुई है। आज इसके परिणामस्वरूप साम्प्रदायिक तनाव और दंगे बढ़े हैं। राष्ट्र कई समुदायों में विभक्त हो गया है तथा राष्ट्र निर्माण तथा आर्थिक विकास की प्रक्रिया बाधित हुई है।

भारत में धार्मिक रूढ़िवाद के लिये निम्न कारण उत्तरदायी रहे हैं-

1. नृजाति केन्द्रीयता की भावना और इसकी प्रतिक्रिया के कारण धर्म के आधार पर संगठित होने की प्रवृत्ति ने परम्परागत धर्म के महत्व में वृद्धि की है।
2. राजनीतिक दलों के द्वारा इसे मत एकत्रित करने (Vote Mobilisation) के आधार के रूप में प्रयोग किये जाने के कारण धर्म के प्रति लोगों की रुचि बढ़ी है।
3. कट्टरपंथियों द्वारा इस दिशा में किए गये दुष्प्रकार्यात्मक प्रयास के कारण धर्म के रूढ़िवादी तत्व मजबूत हुए हैं।
4. राजनीतिक एवं आर्थिक शक्ति प्राप्त करने की प्रवृत्ति (यथा राजस्थान और पंजाब के सीमावर्ती क्षेत्र के मेयो जाति) ने धार्मिक मान्यताओं के प्रति लोगों का विश्वास बढ़ाया है।
5. सामाजिक और आर्थिक विषमता, गरीबी, बेरोजगारी, अशिक्षा के कारण लोग पारंपरिक धर्म से चिपके रहना चाहते हैं।

इस तरह हम देखते हैं कि भारत में हिन्दू-मुस्लिम रूढ़िवाद यद्यपि कई कारणों का संयुक्त परिणाम रहा है, परंतु हाल के वर्षों में वैश्वीकरण जनित 'पहचान का संकट' की प्रतिक्रिया और विभिन्न धार्मिक समुदायों ने इसको और पुष्ट किया है और 'धर्म के बाजारीकरण' ने भी इसे जनाधार प्रदान किया है। अत: कुछ विद्वानों द्वारा इसे सकारात्मक संदर्भों में भी प्रस्तुत करने का प्रयास किया जा रहा है।

स्पष्ट है धार्मिक रूढ़िवाद वर्तमान भारतीय समाज के समक्ष एक गंभीर चुनौती है और इससे जनित खतरों से बचने के लिए धर्मनिरपेक्षता को सामाजिक आंदोलन के रूप में स्थापित करना होगा (शिक्षण संस्थाओं में, विभिन्न संचार साधनों के प्रसारों द्वारा) तभी धर्मनिरपेक्ष व अखण्ड राष्ट्र की परिकल्पना पूरी हो सकती है।

भारत में धर्म-परिवर्तन
(Religious Conversion in India)

धर्म परिवर्तन को एक ऐसी प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया जाता है जिसके अंतर्गत व्यक्तिगत रूप से किसी व्यक्ति द्वारा या समूह के सदस्य के रूप में किसी व्यक्ति द्वारा अपने धर्म से भिन्न कोई अन्य धर्म ग्रहण करने का व्यक्तिगत निर्णय समाहित होता है।

भारतीय समाज में धर्म परिवर्तन एक ऐतिहासिक घटना रही है, परंतु हाल के वर्षों में सामूहिक रूप में बौद्ध धर्म ग्रहण करने की घटना या कुछ कट्टरवादी संगठनों द्वारा धर्म परिवर्तन की घटना को स्वार्थ सिद्धि हेतु धोखे से कराए गए धर्मान्तरण के रूप में देखा जाना और इनके प्रतिक्रिया स्वरूप विघटनकारी क्रियाकलापों को अंजाम देना तथा उन धर्मान्तरित हिन्दुओं एवं जनजातियों को फिर से हिन्दू बनाए जाने की घटना ने धर्म परिवर्तन को एक अत्यंत भावोत्पादक एवं संवेदनशील सामाजिक मुद्दे के रूप में महत्वपूर्ण बना दिया है जो भारत के धर्मनिरपेक्ष चरित्र के बिल्कुल विपरीत है।

भारत में इस धर्म परिवर्तन पर मुख्यतया दो दृष्टिकोणों से विचार किया जा सकता है-

1. ईसाई मिशनरियों द्वारा हिन्दू व जनजातियों को ईसाइयत ग्रहण करवाना जो मुख्यतया अंग्रेजों के आगमन के साथ ही प्रारंभ हो गया था।
2. हिन्दू दलितों द्वारा सामूहिक रूप से बौद्ध धर्मग्रहण करने की प्रक्रिया (नव-बौद्ध आंदोलन के रूप में अम्बेडकर और कामराज के नेतृत्व में हिन्दू दलितों द्वारा सामूहिक रूप से बौद्ध धर्म अपनाया जाना)।

भारत में धर्म परिवर्तन के उपरोक्त दोनों संदर्भों के लिए मुख्य रूप से निम्न कारक उत्तरदायी रहे-

1. असमानतामूलक एवं शोषणकारी (Inequitable and Exploitative) जाति व्यवस्था ने शोषित वर्गों को अपने धर्म के प्रति उदासीन बनाया है।
2. गरीबी एवं आर्थिक पिछड़ेपन के कारण लोगों ने अन्य धर्मों में विकास की सम्भावनाओं की तलाश की।
3. तुलनात्मक अभाव बोध के कारण भी लोग अन्य धर्मों के प्रति आकर्षित हुए।
4. दु:ख, निराशा एवं संघर्ष की स्थिति ने उनमें धर्म से विमुखता उत्पन्न की है।
5. अशिक्षा के कारण, अन्य धर्मों में जहां शैक्षिक अवसरों के आकर्षक विकल्प थे, की ओर लोग उन्मुख हुए।
6. प्रस्थिति उन्नयन (Status Upgrade) की सम्भावना के कारण भी लोगों की रुचि समतावादी धर्मों की तरफ हुई।

7. इस दिशा में अभिप्रेरित करने वाले व्यक्ति या समूहों की भूमिका भी धर्म परिवर्तन हेतु महत्वपूर्ण रही।

भारत में धर्म परिवर्तन की उपरोक्त प्रवृत्ति, इसके कारण तथा इसकी प्रक्रिया में उदित नवीन घटनाओं के संदर्भ में निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि स्वतंत्र भारत में जहाँ धर्मनिरपेक्षता के साथ-साथ व्यक्ति और धर्म के साथ भावनात्मक संबंधों को भी स्वीकार किया जाता है। वहीं सभी नागरिकों को अपनी इच्छानुसार धर्मग्रहण करने का अधिकार है। जो आदर्श समाज की संरचना में एक महत्वपूर्ण कदम है। परंतु धर्म-परिवर्तन धोखे से कराया जा रहा है तो यह निंदनीय है, गैर-कानूनी है, समाज के लिये दुष्प्रकार्यात्मक (Dysfunctional) है और ऐसे कार्यों को रोका जाना चाहिए परंतु उन्हें भी हतोत्साहित करना चाहिये जो धार्मिक कट्टरवाद से अभिप्रेरित होकर व्यक्ति के स्वैच्छिक धर्म-पालन को बाधित करते हैं।

चूंकि भारत में धर्मान्तरण की सभी घटनाएं कहीं न कहीं ढकेलने वाले कारकों (Push Factor) से अधिक संबद्ध रही हैं, अत: इस समस्या का सकारात्मक समाधान भारतीय समाज का शैक्षणिक एवं आर्थिक समानुपातिक विकास करते हुए हिन्दू सामाजिक संगठन में विद्यमान दबाव कारकों अर्थात् उन कमियों को दूर करना भी होना चाहिए जिसके कारण हाशिये पर खड़े लोगों को अपनी वंचना की पुष्टि हेतु अन्य धर्म को ग्रहण करने की ओर उन्मुख होना पड़ता है। तभी एक आदर्श, आधुनिक बहुलक समाज के लक्ष्य की प्राप्ति संभव हो सकेगी।

भारत में धर्म : संभावित प्रश्न

1. धार्मिक पुन: प्रर्वतनवाद की घटना ने धर्मनिरपेक्ष भारत के निर्माण के लक्ष्य को किस प्रकार प्रभावित किया है? समीक्षा करें।
2. धार्मिक रूढ़ीवाद भारत में आधुनिकीकरण के समक्ष एक प्रमुख बाधा के रूप में उपस्थित हुआ है। समीक्षा करें।
3. क्या भारत में धर्म-परिवर्तन व्यक्तिगत धार्मिक स्वतंत्रता की अभिव्यक्ति है? समीक्षा करें।
4. भारत में धार्मिक पुन:प्रर्वतनवाद की घटना को स्पष्ट कीजिए।
5. भारत में धार्मिक रूढ़िवाद की समस्या पर टिप्पणी कीजिए।
6. धर्म एवं पहचान संकट पर एक टिप्पणी लिखिए।
7. समकालीन भारत में धर्मान्तरण की समस्या के सामाजिक आयामों को दर्शाइए।
8. धार्मिक रूढ़िवाद एवं धर्मनिरपेक्षता के मध्य परस्पर विरोधी संबंधों की चर्चा कीजिए।
9. समकालीन भारत में धर्म एवं राजनीति के मध्य संबंधों पर टिप्पणी कीजिए।
10. धर्म के बाजारीकरण से आपका क्या तात्पर्य है? इस घटना ने भारतीय समाज को किस प्रकार प्रभावित किया है?

✪✪✪✪✪

Dr. S.S. Pandey

7 वैश्वीकरण (Globalization)

सामान्यतः वैश्वीकरण का अर्थ विश्व की विभिन्न अर्थव्यवस्थाओं, विभिन्न समाज व संस्कृतियों में परस्पर अन्तःनिर्भरता (Interdependency) का बढ़ना, के रूप में लिया जाता है।

परन्तु वर्तमान वैश्वीकरण की प्रक्रिया में अर्थव्यवस्थाओं की बढ़ती अन्तर्निभरता एक प्रमुख घटना है। अतः भारत में वैश्वीकरण की प्रक्रिया को समझने हेतु इसकी पूर्व-पीठिका के रूप में भारतीय अर्थव्यवस्था को जानना आवश्यक हो जाता है। क्योंकि भारतीय अर्थव्यवस्था की परिस्थितियों ने ही भारत में वैश्वीकरण के प्रसार को स्वरूप प्रदान किया है।

सामान्यतः भौतिक वस्तुओं के उत्पादन, वितरण तथा इनसे जुड़ी अन्य उपव्यवस्थाओं (Sub-System) को समग्र रूप में अर्थव्यवस्था की संज्ञा दी जाती है।

यदि हम अर्थव्यवस्था के उद्‌विकासक्रम की बात करें तो इसे हम निम्न रूप में देख सकते है:-

1. ***खाद्य संकलन एवं शिकारी अर्थव्यवस्था (Food Gathering & Hunter-gatherer Economy)***- यह अर्थव्यवस्था का प्राचीनतम स्वरूप है जहाँ लोग जीवन यापन हेतु जंगल से प्राप्त फल व कंद मूल तथा जंगली जानवरों के शिकार पर निर्भर होते थे। यहाँ बाजार व्यवस्था अनुपस्थित होती थी।
2. ***कृषि एवं पशुपालन अर्थव्यवस्था (Agriculture and Animal Husbandry Economy)***- जब कबीले के रूप में भ्रमणशील व्यक्ति एक जगह टिक के रहने लगे तो कृषि एवं पशुपालन अर्थव्यवस्था का विकास हुआ। इस अर्थव्यवस्था में अतिरिक्त उत्पादन ने विनिमय व्यवस्था को प्रेरित किया फलतः बाजार एवं मुद्रा का प्रचलन प्रारम्भ हुआ।
3. ***औद्योगिक अर्थव्यवस्था (Industrial Economy)***- यह अर्थव्यवस्था का आधुनिक स्वरूप है। जब मशीनों द्वारा व्यापक पैमाने पर उत्पादन की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई तो औद्योगिक अर्थव्यवस्था का उद्‌भव हुआ। औद्योगिक अर्थव्यवस्था में आधुनिक मुद्रा प्रणाली एवं बाजार प्रणाली का विकास हुआ।

   आधुनिक औद्योगिक अर्थव्यवस्था में आर्थिक विकास के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए सामान्यतः 3 मॉडल प्रचलित रहे हैं, जिन्हें हम निम्न रूपों में देख सकते हैं:–

   (a) उदारवादी पूंजीवादी मॉडल (Liberal Capitalist Model)- इस मॉडल में उत्पादन की सम्पूर्ण प्रक्रिया पर निजी व्यक्तियों का नियंत्रण होता है तथा उत्पादन का उद्देश्य निजी लाभ की प्राप्ति होता है। यह मॉडल मुख्यतः उन समाजों में प्रचलित है जो व्यक्तिगत स्वतंत्रता एवं अहस्तक्षेप की नीति को वरीयता (Preference) प्रदान करते हैं। यदि वर्तमान सन्दर्भ में देखा जाए तो विश्व के अधिकांश देश आज इसी मॉडल के अनुगामी हैं।

   (b) समाजवादी अर्थव्यवस्था (Socialist Economy)– इस मॉडल में उत्पादन की सम्पूर्ण प्रक्रिया पर राज्य का नियंत्रण होता है तथा राज्य के द्वारा अपने नागरिकों की आवश्यकता पूर्ति हेतु उत्पादन किया जाता है। यह मॉडल विश्व की दूसरी दुनिया के देशों में प्रचलित रहा है। परन्तु वर्तमान में उदारवादी पूंजीवादी मॉडल के बढ़ते प्रभाव ने इस मॉडल के प्रचलन को कम कर दिया है।

   (c) मिश्रित अर्थव्यवस्था (Mixed Economy)– इस मॉडल में उत्पादन की पूरी प्रक्रिया राज्य एवं राज्य के नियंत्रण में निजी व्यक्तियों द्वारा संचालित होती है। यह मॉडल उपरोक्त दोनों मॉडल का मिश्रित स्वरूप है। भारत में स्वतंत्रता के पश्चात् इसी मॉडल को अपनाया गया।

स्वतंत्रता के पूर्व भारतीय अर्थव्यवस्था का स्वरूप
Nature of Indian Economy before Independence

1. ***कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था (Agricultural Economy)***– स्वतंत्रता से पूर्व भारतीय अर्थव्यवस्था मुख्यतः कृषि प्रधान थी। हमारे सकल घरेलू उत्पाद का 50% से भी अधिक भाग कृषि क्षेत्र से प्राप्त होता था। हमारे देश की 70% से भी अधिक जनसंख्या अपनी आजीविका के लिए कृषि पर निर्भर थी।
2. ***कृषि का परम्परागत स्वरूप (Traditional form of Agriculture)***– स्वतंत्रता से पूर्व भारत तकनीकी पिछड़ेपन के दौर से गुजर रहा था। फलतः हमारे कृषि का भी स्वरूप परम्परागत था। अर्थात् हमारी कृषि सिंचाई के लिए पूर्णतः वर्षा पर निर्भर थी, खेतों की जुताई पशुओं के द्वारा होती था, कम उत्पादक परम्परागत बीजों का प्रयोग होता था और ऋण के लिए किसान सेठ, साहूकारों पर निर्भर थे।
3. ***विदेशी निवेशकों के लाभ हेतु औद्योगीकरण (Industrialization for the benefit of Foreign Investors)***– स्वतंत्रता पूर्व काल में अंग्रेजों ने औद्योगीकरण की शुरूआत तो कर दी थी परन्तु इनका उद्देश्य विदेशी निवेशकों को अधिकाधिक लाभ प्रदान करना था। औद्योगीकरण ने यहाँ के

परम्परागत कुटीर उद्योगों को नष्ट कर यहीं के कच्चे माल का उपयोग कर तथा सस्ते श्रमिकों का प्रयोग कर विदेशी निवेशकों को अधिकाधिक लाभ प्रदान किया।

स्वतंत्रता के पश्चात् भारत के आर्थिक विकास की दशा
State of Economic Development of India after Independence

स्वतंत्रता के पश्चात् भारत सरकार द्वारा विकास के लक्ष्य का निर्धारण किया गया। इस विकास के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए नियोजित विकास पर बल दिया गया। नियोजित विकास हेतु 1950 में सरकार द्वारा योजना आयोग का गठन किया गया। जिसके द्वारा पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से आर्थिक विकास का प्रयास किया गया। भारत में आर्थिक विकास हेतु मिश्रित अर्थव्यवस्था के मॉडल को अपनाया गया।

प्रथम पंचवर्षीय योजना (1951-56) का निर्माण हैराल्ड डॉमर मॉडल के तहत किया गया, जिसमें कृषि विकास पर विशेष बल दिया गया।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना (1956-61) में महालनोबिस मॉडल को अपनाया गया जिसमें भारी उद्योगों पर बल दिया गया एवं अन्य क्षेत्र में टपकन के सिद्धांत (Trickle-down theory) को स्वीकार किया गया।

तीसरी पंचवर्षीय योजना में भी विकास युक्ति बुनियादी रूप से वही थी जो दूसरी पंचवर्षीय योजना में थी। बस दोनों में एक मामूली अंतर था। तीसरी पंचवर्षीय योजना में कृषि और औद्योगिक विकास के मध्य संतुलन पर अधिक जोर दिया गया था।

इसी महालनोबिस मॉडल के आधार 1991 तक आर्थिक विकास कि प्रक्रिया क्रियाशील रही।

1960 के दशक में संवृद्धि दर ऊंची होने के बावजूद इस अवधि में आर्थिक संवृद्धि प्रक्रिया की व्यापक स्तर पर आलोचना हुई है। इस संवृद्धि प्रक्रिया की एक मुख्य आलोचना यह है कि इसने देश में समष्टि आर्थिक (Macro Economics) असंतुलन को पैदा किया, इस काल में वित्तीय घाटा (Fiscal Deficit) बहुत बढ़ गया जिससे भुगतान संतुलन पर भारी दबाव पैदा हुआ और देश में मुद्रा स्फीति को बढ़ावा मिला। इसकी दूसरी मुख्य आलोचना यह हुई है कि इसके कारण देश में संसाधनों के उपयोग में कार्य कुशलता का स्तर नीचे आया।

आर्थिक सुधार के पूर्व भारतीय अर्थव्यवस्था का स्वरूप
Nature of Indian Economy before Economic Reform

महालनोबिस मॉडल के आधार पर निर्मित 1956 के औद्योगिक नीति के अनुसार आर्थिक विकास का प्रयास किया गया। 1956 की औद्योगिक नीति मिश्रित अर्थव्यवस्था के मॉडल पर आधारित थी। अर्थात् इसमें उद्योगों के क्षेत्र को तीन वर्गों में वर्गीकृत किया गया था। पहली सूची (क) में 17 आइटम थे जिन्हें सार्वजनिक क्षेत्र हेतु सुरक्षित रखा गया था। दूसरी सूची (ख) में 12 आइटम को रखा गया था। इस सूची में सार्वजनिक क्षेत्र के साथ-साथ नियंत्रण में रहते हुए निजी क्षेत्र को भी अधिकार प्राप्त था। तीसरी सूची (ग) में शेष सभी आइटम थे इस सूची में सम्मिलित आइटम निजी क्षेत्र द्वारा संचालित होते थे एवं राज्य नियंत्रक की भूमिका में क्रियाशील था।

आर्थिक सुधारों से पूर्व औद्योगिक विकास में लाइसेंसिंग प्रणाली को अपनाया गया अर्थात् औद्योगिक इकाईयों की स्थापना से पूर्व सरकार से लाइसेंस लेना अनिवार्य होता था। इस लाइसेंसिंग प्रणाली ने सरकारी लाल फीताशाही एवं भ्रष्टाचार को बढ़ावा देकर औद्योगिक इकाईयों की स्थापना की प्रक्रिया को जटिल एवं दुरूह बना दिया था।

औद्योगिक विकास की प्रक्रिया पर नियंत्रण रखने व उसका नियमन करने के दृष्टिकोण से अक्टूबर 1951 में औद्योगिक विकास एवं विनियमन अधिनियम पारित किया गया। यद्यपि इस अधिनियम का लक्ष्य निजी क्षेत्र का विकास व नियमन था तथापि इसमें अधिकतर नियमन पर जोर दिया गया। इस अधिनियम के निम्न उद्देश्य थे:-

1. भौगोलिक क्षेत्रीय असंतुलन को कम करना।
2. छोटे एवं लघु उद्यमियों को प्रोत्साहन एवं संरक्षण प्रदान करना।
3. आर्थिक सकेन्द्रण को रोकना। इसके लिए 1969 में एकाधिकार और प्रतिबंधात्मक व्यापार व्यवहार अधिनियम (MRTP) पारित किया गया, जिसके तहत कोई भी कम्पनी 20 करोड़ से ज्यादा की पूंजी नहीं लगा सकती थी (इसे 1980 में 100 करोड़ कर दिया गया था)।

आर्थिक सुधार से पूर्व काल में हमारी व्यापार एवं निवेश नीति बन्द प्रकार की थी। इसके तहत आयात प्रतिस्थापन की नीति अपनाई जा रही थी अर्थात् आयात की जाने वाली वस्तुओं का देश में ही उत्पादन करके उस वस्तु के आयात को कम करने पर जोर दिया जा रहा था। इस समय विदेशी पूंजी एवं निवेश के प्रति नकारात्मक रूख अपनाया जा रहा था। इसके लिए 1973 में विदेशी मुद्रा विनिमय नियमन अधिनियम (FERA) पारित किया गया। बैंकिंग क्षेत्र में विदेशी कंपनियों के प्रवेश पर रोक थी।

आर्थिक सुधार से पूर्व काल में कठोर राजकोषीय नीति पर बल दिया जा रहा था। जिसके तहत कर ढाँचा जटिल था तथा कर की दर भी ऊँची थी।

इस काल में कठोर श्रम कानूनों के अनुपालन पर बल दिया जा रहा था। इसके लिए औद्योगिक विवाद अधिनियम वेतन अधिनियम व श्रमिक संघ अधिनियम बनाए गए। जिसके द्वारा श्रमिकों की सुरक्षा पर विशेष बल दिया गया।

भारत में आर्थिक सुधार की पृष्ठभूमि
Background of Economic Reforms in India

भारत में जिन आर्थिक समस्याओं ने 1991 में संकट का रूप ले लिया था वे अकस्मात् पैदा नहीं हुई थी। वे काफी वर्षों से अर्थव्यवस्था में मौजूद थी। औद्योगिक विकास के लिए जिस महालनोबिस मॉडल को आधार बनाया गया उसके परिणामस्वरूप सार्वजनिक क्षेत्र घाटे में चला गया। उद्योगों की स्थापना हेतु लागू कठोर लाइसेंसिंग प्रणाली ने निजी क्षेत्र के विकास को बाधित किया। हमने अपनी नीतियों में विदेशी निवेश के प्रति नकारात्मक रूख अपनाया जिसके कारण पूंजी के अभाव से गुजरना पड़ा। परिणामस्वरूप आधारभूत संरचनाओं का पर्याप्त विकास नहीं हो सका व आर्थिक विकास बाधित हुआ। लोककल्याणकारी योजनाओं (Public Welfare Schemes) के क्रियान्वयण तथा पड़ोसी देशों से युद्ध व सुरक्षा खतरों से निपटने हेतु हथियारों की खरीद के लिए आवश्यक पूंजी का अभाव था परिणामस्वरूप इसे विदेशी ऋण द्वारा पूरा किया जा रहा था। 1980 के बाद विदेशी कर्जों में निरंतर वृद्धि हो रही थी। 1989 से 1991 तक दो चुनावों के खर्च के बोझ से भी सरकार की आर्थिक स्थिति कमजोर हो गयी थी। 1990-91 के खाड़ी संकट ने भी भारतीय अर्थव्यवस्था को दुष्प्रभावित किया, क्योंकि खाड़ी संकट ने तेल कीमतों में बेतहाशा वृद्धि की, फलतः भारत के तेल आयात के खर्चों में वृद्धि हुई, परिणामस्वरूप व्यापार घाटे में वृद्धि हुई साथ ही साथ NRI के डिपोजिट में कमी आई जिससे विदेशी मुद्रा भंडार की स्थिति भी कमजोर हुई। इसी समय राजीव गांधी की हत्या तथा दो सरकारों के गिर जाने के कारण भारत राजनीतिक अस्थिरता के दौर से भी गुजर रहा था।

उपरोक्त परिस्थितियों में अंतर्राष्ट्रीय क्रेडिट एजेंसियों के द्वारा भारत की क्रेडिट रेटिंग को गिरा दिया गया फलतः भारत की विदेशी सहायता बाधित हुई और NRI द्वारा अपने डिपॉजिट की तेजी से निकासी की गयी (केवल एक अप्रैल 1991 से मई 1991 के मध्य एक अरब डॉलर की निकासी की गयी) परिणामस्वरूप भारत की विदेशी मुद्रा की स्थिति कमजोर हुई तथा भारत के पास 15 दिन के आयात बिल चुकाने हेतु भी पैसे का अभाव हो गया तथा भारत की स्थिति भी अर्जेंटीना, टर्की व मैक्सिको जैसी हो गयी। हालांकि IMF से तात्कालिक वित्तीय सुविधा के रूप में प्राप्त 180 करोड़ डॉलर से थोड़ी राहत हुई एवं तस्करी से जब्त 20 टन सोना को Union Bank of Switzerland को 20 करोड़ डॉलर में तथा RBI का 47 टन सोना Bank of England तथा Bank of Japan को देकर जुलाई 1991 तक 40.5 करोड़ डॉलर बटोरा गया जिससे भारतीय अर्थव्यवस्था की साख को बचाया गया। इसके पश्चात् जापान से द्विपक्षीय सहायता के रूप में 20 करोड़ और जर्मनी से 6 करोड़ डॉलर प्राप्त हुआ जिससे भारतीय अर्थव्यवस्था को गतिशील किया गया। इसके बावजूद स्थिति हमारे नियंत्रण से बाहर होती गयी। परिणामस्वरूप भारत IMF के पास पहुँचा जिसकी परिणति आर्थिक सुधार के रूप में हुई।

आर्थिक सुधार और इसका स्वरूप
Economic Reforms and its Nature

IMF की शर्तो/निर्देशों के अनुसार भारतीय अर्थव्यवस्था के स्वरूप में जो व्यापक परिवर्तन किए गए उन्हें आर्थिक सुधार की संज्ञा दी जाती है। जिसमें मुख्यतः दो तत्व शामिल थे- प्रथम आर्थिक स्थिरीकरण तथा द्वितीय ढाँचागत समायोजन (Structural Adjustment) समष्टि आर्थिक स्थिरीकरण का संबंध मांग प्रबंधन से है जबकि ढाँचागत समायोजन अर्थव्यवस्था की पूर्ति पक्ष की समस्याओं का समाधान करने का प्रयास करते हैं।

स्थिरीकरण का सिद्धांत (Theory of Stabilisation)

स्थिरीकरण (Stabilisation) का तात्पर्य अल्पकालिक सुधारों के द्वारा अर्थव्यवस्था की यथास्थिति को बनाए रखना होता है। इसके अन्तर्गत मुख्यतः तीन सुधारों पर बल दिया गया:-

1. मुद्रास्फीति के नियंत्रण पर बल
2. राजकोषीय समायोजन पर बल
3. भुगतान संतुलन की समर्थ स्थिति पर बल

1990-91 में मुद्रास्फीति की वार्षिक दर 10% के उपर थी। इसे एक ओर तो मौद्रिक और राजकोषीय अनुशासन के द्वारा और दूसरी ओर उत्पादन और आपूर्ति की स्थितियों में सुधार कर नीचे ला पाना संभव था। जनवरी 1996 में मुद्रास्फीति की वार्षिक दर 5% पर आ गयी। ऐसा जिन कारणों से हुआ वे हैं मुद्रा की मात्रा में धीमी गति से विस्तार, उत्पादन में तेजी के साथ वृद्धि, ईंधन की कीमतों में वृद्धि पर रोक और लागत वृद्धि के बावजूद प्रशासित कीमतों का सरकार द्वारा न बढ़ाना।

मुद्रास्फीति और भुगतान संतुलन में घाटे की समस्याओं के समाधान के लिए राजकोषीय समायोजन अति आवश्यक है। सरकार ने इसके लिए आवश्यक कदम उठाते हुए राजकोषीय उत्तरदायित्व एवं बजट प्रबंधन (FRBM) अधिनियम अपनाया। इसके अंतर्गत राजकोषीय व्यय को नियंत्रित किया गया, सब्सिडी में कटौती तथा सार्वजनिक उपयोग की वस्तुओं यथा बिजली, पानी, परिवहन, सिंचाई के साधनों पर कर की दरों को बढ़ाया गया। राजकोषीय समायोजन (Fiscal Adjustment) की प्रक्रिया के तहत ही सरकार द्वारा स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति स्कीम (VRS) चालू किया गया।

1991 में भारत में भुगतान संतुलन नाजुक दौर से गुजर रहा था अतः इसका समायोजन आवश्यक हो गया था। इसके लिए सरकार ने विदेशों से सहायता प्राप्त करने का प्रयास किया साथ ही जुलाई 1991 में रुपए का 18-19% अवमूल्यन किया गया। इसके बाद 1992-93

के बजट में उदारीकृत विनिमय दर प्रबन्धन प्रणाली (Liberalised Exchange Rate Management System) अपनाई गयी। इस प्रणाली में दोहरी विनिमय दर प्रणाली अपनायी गयी, जिसके तहत 40 प्रतिशत विदेशी विनिमय को सरकारी कीमत पर देना अनिवार्य था तथा बाकी के 60 प्रतिशत को बाजार दर पर परिवर्तित किया जा सकता था। 1993-94 के बजट में एकीकृत (Unified) विनिमय दर प्रणाली अपनाई गयी। यह बाजार द्वारा निर्धारित विनिमय दर प्रणाली है। इस प्रकार अब भारत में रुपये की विनिमय दर का निर्धारण मुख्यतया बाजार की शक्तियों मांग व पूर्ति के द्वारा होता है न कि सरकारी नीतियों द्वारा। परन्तु बाजार में अत्यधिक उतार चढ़ाव न हो पाए इसलिए रिजर्व बैंक बाजार में हस्तक्षेप करता रहता है।

संरचनात्मक समायोजन का सिद्धांत (Theory of Structural Adjustment)

संरचनात्मक समायोजन (Structural Adjustment) अर्थव्यवस्था में दीर्घकालीन सुधार की प्रक्रिया है। जिसके द्वारा अर्थव्यवस्था में सुदृढ़ता प्रदान की जाती है। इसमें विशेष रूप से अर्थव्यवस्था के पूर्ति पक्ष को ठीक करने के लिए व्यापक ढांचागत सुधार लागू किए गए। भारत में इसके तहत निम्न सुधारों पर बल दिया गया:-

1. ***व्यापार एवं पूंजी प्रवाह में सुधार (Improving trade and Capital flows)*** - इसके लिए जुलाई 1991 में रुपये का लगभग 18-19 प्रतिशत अवमूल्यन (Devaluation) किया गया। जिससे भारतीय निर्यातों को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रतियोगी बना पाना संभव हुआ। इसके बाद विदेशी व्यापार व्यवस्था पर विभिन्न नियंत्रणों को हटा कर उदारीकरण किया गया, न केवल आयात प्रणालियों को सरल बनाया गया बल्कि अनेक वस्तुओं का आयात लाइसेंसिंग से मुक्त कर दिया गया। विश्व के विभिन्न औद्योगिक दृष्टि से महत्वपूर्ण मुद्राओं के साथ रुपये की विनिमय दरों में कमी की गयी। इसके साथ ही रुपये की पूर्ण परिवर्तनीयता पर बल दिया गया। अनेक वस्तुओं के आयात और निर्यात पर सरकारी एकाधिकार की समाप्ति की गयी तथा निर्यात के प्रोत्साहन हेतु अनेक कदम उठाए गए, सीमाशुल्क की दर धीरे-धीरे कम की गयी, आर्थिक सुधारों से पूर्व सीमाशुल्क की उच्चतम दर 300 प्रतिशत के ऊपर थी इसे घटाकर 10 प्रतिशत कर दिया गया। सरकार ने विदेशी क्षेत्र में सुधार के अन्तर्गत विदेशी प्रत्यक्ष निवेश (FDI) के रूप में पूंजी प्रवाह का उदारीकरण किया। इसके लिए FERA आदि अधिनियमों में संसोधन किया गया। कई सारे क्षेत्रक में स्वत: अनुमोदन मार्ग (Automatic Approval Route) के द्वारा निवेश की अनुमति प्रदान की गयी। अधिकतर क्षेत्रक में निवेश की उच्चतम सीमा को बढ़ा दिया गया। निवेश प्रोत्साहन हेतु (Foreign Investment Promotion Board) की स्थापना की गयी तथा 2005 में एक राष्ट्रीय निवेश कोष की स्थापना की गयी।

2. ***औद्योगिक नियंत्रण को समाप्त करना (Industrial Deregulation)*** – इसके तहत एकाधिकार एवं प्रतिबन्ध व्यापार व्यवहार (MRTP) अधिनियम के अन्तर्गत कम्पनियों के आकार पर पहले लगाई गयी सीमा को अब समाप्त कर दिया गया। इससे औद्योगिक इकाईयों को अनुकूलतम आकार तक विस्तार में सहायता मिली।

   औद्योगिक लाइसेंसिंग प्रणाली को हतोत्साहित किया गया क्योंकि यह व्यवस्था कालांतर में औद्योगिक विकास में एक बड़ी बाधा बन गयी थी, केवल पांच उत्पाद वर्गों को छोड़कर अन्य सभी वस्तुओं के उत्पादन के लिए लाइसेंस की आवश्यकता को समाप्त कर दिया गया। इसके साथ ही सार्वजनिक क्षेत्र के अन्तर्गत आरक्षित क्षेत्रों की संख्या 17 से घटाकर तीन कर दिया गया। अब लोहा व इस्पात, बिजली, वायु परिवहन, जलयान निर्माण तथा भारी मशीन उद्योग आदि निजी क्षेत्र के लिए खोल दिए गए। औद्योगिक श्रम कानूनों में भी सुधार किए गए व उनकी कठोरता को अपेक्षाकृत कम कर दिया गया (SEZ में श्रम कानून नहीं)।

3. ***सार्वजनिक क्षेत्र में सुधार (Public Sector Reforms)*** – सुधार से पूर्व काल में सार्वजनिक क्षेत्र का विकास यह सोचकर किया जा रहा था कि यह स्वपोषित आर्थिक संवृद्धि के इंजन के रूप में काम करेगा तथा तकनीकी विकास में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगा। परन्तु सार्वजनिक क्षेत्र पर्याप्त मात्रा में आंतरिक साधन जनित करने में असमर्थ रहा, जिसका परिणाम यह हुआ कि यह क्षेत्र आर्थिक संवृद्धि के लिए एक बड़ी बाधा बन गया।

   ढांचागत सुधारों के अन्तर्गत सरकार ने सार्वजनिक उपक्रमों को ज्यादा प्रबन्धकीय स्वायत्ता देने का निर्णय लिया जिससे इनके लिए कुशलतापूर्वक काम कर पाना संभव हो। सार्वजनिक क्षेत्रों के प्रबंधन का व्यवसायीकरण किया गया जिससे प्रबंधन के कुशलता में वृद्धि हो सके।

   सार्वजनिक उपक्रमों के कार्य प्रणाली में सुधार हेतु उनको निजी क्षेत्र के साथ खुली प्रतिस्पर्धा का अवसर दिया गया। इसके अलावा कुछ चुने हुए उद्योगों में आंशिक रूप से इक्विटी विनिवेश की नीति को बढ़ावा दिया गया। जिसके अन्तर्गत सार्वजनिक उद्यमों के शेयर वित्तीय संस्थाओं, निजी क्षेत्र तथा आम जनता को बेचे जा रहे हैं।

4. ***बैंकिंग/वित्तीय क्षेत्र में सुधार (Banking/Financial Sector Reforms)*** – बैंकिंग क्षेत्र में सुधार हेतु नरसिंहम समिति गठित किया गया, जिसकी सिफारिशों के आधार पर बैंकिंग सेवा का विस्तार किया गया, बैंकों की कार्यकुशलता, उत्पादकता एवं प्रतिस्पर्धात्मकता में वृद्धि की गयी, निजी बैंकों की स्थापना की अनुमति दी गयी, भारतीय बैंकों में 74% तक विदेशी निवेश की

अनुमति दी गयी साथ ही विदेशी बैंकों को भारत में प्रवेश की भी अनुमति दी गयी।

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि आर्थिक सुधार के उपरोक्त सभी तरीकों में तीन केंद्रीय तत्वों पर बल दिया गया है।

(i) भारतीय अर्थव्यवस्था में राज्य के हस्तक्षेप को कम करना।

(ii) भारतीय अर्थव्यवस्था में आर्थिक क्रियाकलापों हेतु निजी उद्यमियों को प्रोत्साहित करना।

(iii) भारतीय अर्थव्यवस्था को वैश्विक अर्थव्यवस्था के साथ जोड़ देना।

वस्तुत: इन्हीं सुधारों को उदारीकरण, निजीकरण व वैश्वीकरण (LPG) की संज्ञा दी गयी।

आर्थिक सुधारों का आर्थिक प्रभाव
Economic Impact of Economic Reforms

अगर हम आर्थिक सुधारों के अर्थिक प्रभाव की समीक्षा करें तो हमें यह कहना पड़ेगा कि जहाँ इसके कई सकारात्मक प्रभाव परिलक्षित हुए हैं वहीं कुछ नकारात्मक प्रभाव भी परिलक्षित हुए हैं। यहाँ सर्वप्रथम हम इसके सकारात्मक प्रभावों की चर्चा करते हैं।

आर्थिक सुधारों का तत्काल प्रभाव मुद्रास्फीति (Inflation) की भयंकर होती स्थिति पर नियंत्रण के रूप में देखा जा सकता है। 1991 में मुद्रास्फीति की दर जहाँ 14 प्रतिशत के आस-पास हो गयी थी वहीं आर्थिक सुधारों के उपरांत इसकी वार्षिक दर 5-6 प्रतिशत के आस-पास आ गयी।

सुधारों के उपरांत राजकोषीय घाटे (Fiscal Deficit) की चिंतनीय स्थिति पर भी काबू पाया जा सका। 1991 में राजकोषीय घाटा जहाँ बढ़कर 8.5-9 प्रतिशत तक चला गया था वहीं सुधारों के पश्चात् घटकर औसतन लगभग 4 प्रतिशत तक आ गया। सरकारी व्यय पर रोक तथा FRBM जैसे अधिनियमों ने राजकोषीय घाटे को सुधारने में मदद की।

आर्थिक सुधारों के उपरांत भुगतान संतुलन की स्थिति में भी सुधार हुआ। मार्च 1991 में भारत के पास विदेशी विनिमय कोष की राशि मात्र 2.2 अरब डॉलर थी जबकि मार्च 2008 के अन्त में यह 309 अरब डॉलर तक पहुँच गयी। भुगतान संतुलन की समस्या से निपटने के लिए निर्यात संवृद्धि पर जोर दिया गया और औसतन 20-25 प्रतिशत संवृद्धि दर को बनाए रखने का प्रयास किया गया।

सुधारों के पश्चात् व्यापार एवं पूंजी प्रवाह में भी सुधार आया। वैश्विक व्यापार में भारत की भागेदारी में वृद्धि की गयी और यह औसतन 1.2-1.4 प्रतिशत के करीब रहा। विदेशी निवेश के अन्तर्प्रवाह में भी तेजी से वृद्धि हुई। इसके लिए FDI की प्रक्रिया को सरल बनाया गया (Automatic Route) तथा विभिन्न नए क्षेत्रक में FDI को मंजूरी दी गयी तथा कई क्षेत्रों में इसकी उच्चतम सीमा में वृद्धि की गयी।

आर्थिक सुधारों के पश्चात् सेवा क्षेत्र को सर्वाधिक फायदा हुआ। IT एवं ITES क्षेत्र ने इसमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, तथा सेवा क्षेत्र के निर्यात में तेजी से वृद्धि हुई एवं सेवा क्षेत्र हमारे GDP का सर्वाधिक महत्वपूर्ण भाग बन गया।

आर्थिक सुधारों ने औद्योगिक विकास को भी तीव्रता प्रदान की। विदेशी निवेश में वृद्धि व तकनीकी हस्तांतरण के फलस्वरूप औद्योगिक उत्पादन में तीव्रता से वृद्धि हुई फलत: वस्तु की उपलब्धता में वृद्धि हुई। औद्योगिक क्षेत्र के विस्तार से कृषि पर जनसंख्या के दबाव में कमी आई साथ ही श्रम का नगरों की ओर तेजी से पलायन हुआ।

सुधारों ने कृषि क्षेत्र में भी आधुनीकरण को बल प्रदान किया। तीव्र औद्योगिक विकास ने कृषि सम्बन्धित आधुनिक मशीनों के उत्पादन को प्रोत्साहित किया, साथ ही कीटनाशक, उर्वरक आदि का भी भारतीय कृषि में व्यापक रूप से प्रयोग होने लगा। आधुनिक मशीनों के प्रयोग ने कृषि हेतु मानवीय श्रम पर निर्भरता को कम किया तथा वाणिज्यिक एवं द्वि-फसली खेती के प्रचलन में वृद्धि हुई। सामान्य भूमि में भी पहले से अधिक उत्पादन होने लगा तथा बंजर भूमि आदि का भी कृषि भूमि के रूप में विस्तार हुआ। कृषि क्षेत्र के उत्पादन में वृद्धि एवं श्रम शक्ति में सुधार के फलस्वरूप किसानों की आय में वृद्धि हुई।

उपरोक्त सभी आर्थिक प्रभावों के सम्मिलित प्रभाव से भारतीय अर्थव्यवस्था का आधुनिकीकरण हुआ एवं समग्र आर्थिक विकास में वृद्धि हुई। 1991 में भारतीय अर्थव्यवस्था की विकास दर जहाँ 3.5 प्रतिशत थी वहीं इसके बाद की अवधि में यह बढ़कर औसतन 8.0% हो गयी। भारतीय अर्थव्यवस्था विश्व की चौथी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था के रूप में उभरी। भारतीय अर्थव्यवस्था में उभार के फलस्वरूप प्रति व्यक्ति आय में भी वृद्धि हुई जिससे गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले लोगों की संख्या में कमी आई (40% से घटकर 26%) तथा लोगों के जीवन स्तर में सुधार हुआ। साक्षरता दर में वृद्धि एवं स्वास्थ्य स्तर में सुधार के फलस्वरूप मानव विकास सूचकांक भी बेहतर हुआ। मध्यम वर्ग का विकास हुआ व लोगों की जीवन शैली में भी आधुनिकता का प्रभाव परिलक्षित होने लगा।

परन्तु उपरोक्त विश्लेषण के पश्चात् यह समझना अतार्किक होगा कि आर्थिक सुधार के परिणामस्वरूप सब कुछ सकारात्मक ही हुआ। इसके कई **नकारात्मक** परिणाम भी दृष्टिगोचर हुए जिसे हम निम्न रूपों में देख सकते हैं:-

आर्थिक सुधारों के पश्चात् FDI में तो अवश्य ही वृद्धि हुई परन्तु इसका पूरा फायदा नहीं उठाया जा सका क्योंकि यह प्रत्यक्ष निवेश निर्यात उन्मुखी नहीं है।

औद्योगिक विकास तो हुआ परन्तु लघु एवं कुटीर उद्योगों का विकास उपेक्षित रहा है। सेवा क्षेत्र का तो आशानुरूप विकास हुआ परन्तु कृषि क्षेत्र की उपेक्षा हुई। कृषि में 4 प्रतिशत की वृद्धि का लक्ष्य था जो अभी तक प्राप्त नहीं किया जा सका।

सुधारों के उपरान्त विकास तो हुआ, परन्तु इस विकास ने क्षेत्रीय विषमता (Regional Disparity) को भी उत्पन्न किया। महाराष्ट्र, तमिलनाडु, हरियाणा आदि राज्य विकास के लाभ लेने में आगे रहे, परन्तु बिहार, उत्तर प्रदेश आदि राज्यों का अपेक्षित विकास नहीं हो पाया। प्रत्यक्ष विदेशी निवेश में तो वृद्धि हुई परन्तु इसका लगभग 80% हिस्सा मात्र 5 विकसित राज्यों (गुजरात, महाराष्ट्र, तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश, दिल्ली) में ही रहा।

आर्थिक सुधार का अधिकतर लाभ नगरों को प्राप्त हुआ, फलतः नगरीय एवं ग्रामीण विषमता में वृद्धि हुई और उदारीकरण के लाभ से गांव के किसान प्रायः वंचित रहे।

सुधार के उपरान्त रोजगार के अवसरों में अपेक्षित सफलता नहीं मिल पायी और रोजगार वृद्धि दर में तथा रोजगार के कुल अवसरों में भी गिरावट आयी।

आर्थिक सुधारों ने आर्थिक विषमता में भी वृद्धि की क्योंकि इसने पूंजी संकेन्द्रण को बढ़ावा दिया। अमीर अधिक अमीर होते गए तथा गरीबों की स्थिति में अपेक्षित सुधार नहीं हो पाया।

औद्योगिक विस्तार तथा श्रम का शहरों की ओर पालायन के परिणामस्वरूप अति नगरीकरण एवं नगरीय क्षेत्र का फैलाव हुआ, जिसने कई समस्याओं को जन्म दिया तथा इससे कृषि भूमि में भी कमी आयी।

✪✪✪✪✪

KGS IAS KHAN GLOBAL STUDIES Most Trusted Learning Platform KHAN SIR
Dr. S.S. Pandey

8 वैश्वीकरण का भारतीय समाज पर प्रभाव (Impact of Globalization on Indian Society)

आर्थिक सुधारों की प्रक्रिया में भारत ने वैश्वीकरण के जिस रास्ते को चुना उसका भारतीय समाज पर व्यापक प्रभाव पड़ा। भारतीय समाज के विभिन्न क्षेत्रों पर पड़ने वाले इसके प्रभाव को हम निम्न रूप से समझ सकते हैं:-

ग्रामीण समाज पर वैश्वीकरण के प्रभाव (Effects of Globalization on Rural Society)

भारत में धर्म प्रधान, कृषि अर्थव्यवस्था प्रधान, जाति प्रधान एवं नातेदारी संबंधों (Kinship Relationship) की प्रधानता वाले समाज को ग्रामीण समाज की संज्ञा दी जाती है। यहाँ प्रदत्त प्रस्थिति (Ascribed Status) को महत्व प्राप्त होता रहा है तथा प्रथा एवं परम्परा द्वारा लोगों की गतिविधियों को नियंत्रित किया जाता रहा है।

वैश्वीकरण का भारतीय ग्रामीण समाज पर प्रभावों के विश्लेषण हेतु वैश्वीकरण से पूर्व भारतीय ग्रामीण समाज की स्थिति की चर्चा आवश्यक हो जाती है। अंग्रेजी शासन काल के पूर्व भारत का ग्रामीण समाज अपने परंपरागत रूप में विद्यमान था। अंग्रेजी शासन काल में अंग्रेजों की अहस्तक्षेप की नीति के कारण ग्रामीण समाज में कोई विशेष परिवर्तन नहीं आया। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् लोकतांत्रिक राजनीतिक व्यवस्था की स्थापना हुई और राज्य के द्वारा आधुनिक विकसित लोकतांत्रिक समाज के निर्माण का लक्ष्य रखा गया और इस दिशा में संविधान कानून एवं विकास योजनाओं के माध्यम से प्रयास प्रारम्भ किए गए। 1991 से पूर्व तक सरकार के प्रयासों द्वारा ग्रामीण समाज के आधुनिकीकरण की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई परन्तु अभी तक यह आधुनिक ग्रामीण समाज के निर्माण के लक्ष्य से काफी दूर है।

वैश्वीकरण ने भारतीय ग्रामीण समाज को व्यापक रूप से प्रभावित किया है। इसके सकारात्मक प्रभावों को हम निम्न रूप में चर्चा कर सकते हैं:–

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप खुली वैश्विक अर्थव्यवस्था (Open Global Economy) का विकास हुआ इससे उन्नत बीज, खाद, कृषि उपकरण आदि का आयात सुविधाजनक हो गया फलतः कृषि उत्पादन में वृद्धि हुई एवं ग्रामीण समाज का आर्थिक विकास हुआ।

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के अन्त:प्रवाह (Under Flow) में वृद्धि हुई, जिसका उपयोग कर कृषि संबंधी आधारभूत संरचनाओं के विकास में तीव्रता आयी, जिससे कृषि का आधुनिकीकरण हुआ एवं उत्पादकता में वृद्धि हुई फलतः ग्रामीण समाज में समृद्धि आई।

वैश्वीकरण के प्रभाव स्वरूप गाँवों में अवस्थित लघु एवं कुटीर उद्योगों के उत्पादों को वैश्विक बाजार उपलब्ध हुआ। फलतः इस उद्योग से सम्बन्धित लोगों की आय में वृद्धि हुई तथा इस क्रम में ग्रामीण समाज में समृद्धि आयी। वैश्वीकरण के प्रभाव स्वरूप उद्योग एवं सेवा क्षेत्र का विस्तार हुआ तथा रोजगार के नए अवसरों में वृद्धि हुई। इन अवसरों को ग्रामीण युवा वर्ग ने भी लाभ उठाया। फलतः ग्रामीण गरीबी एवं बेरोजगारी में कमी आयी।

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप FDI के अन्त:प्रवाह में तेजी आयी तथा ढेर सारे Single and Multibrand Retail Stores की स्थापना की दिशा में प्रयास हुआ। सरकार द्वारा यह प्रावधान किया गया है कि इन Store में एक निश्चित सीमा तक (30%) लघु-कुटीर उद्योगों से उत्पादों की खरीद अनिवार्य होगी। फलतः लघु व कुटीर उद्योगों की संवृद्धि एवं सुरक्षा का मार्ग प्रशस्त हुआ जिससे ग्रामीण समाज को भी लाभ प्राप्त हुआ।

वैश्वीकरण के प्रभाव स्वरूप आधुनिक मूल्यों (Modern Values) एवं आधुनिक शिक्षा का ग्रामीण समाज तक प्रसार हुआ। फलतः ग्रामीण समाज में तार्किक एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास हुआ तथा अंधविश्वास व सामाजिक रूढ़ियाँ कमजोर हुई। वैश्वीकरण के प्रभाव स्वरूप शिक्षा एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण का प्रसार हुआ फलतः गाँव वालों की परम्परागत मानसिकता में बदलाव आया तथा उनका आर्थिक एवं राजनीतिक सशक्तिकरण हुआ।

वैश्वीकरण के प्रभाव स्वरूप तार्किक एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण का प्रसार हुआ फलतः धर्म के प्रभाव में कमी आयी एवं रोजगार के नवीन अवसरों का विकास हुआ। परिणामस्वरूप जाति व्यवस्था के धार्मिक एवं परंपरागत पक्ष कमजोर हुए तथा जजमानी व्यवस्था भी कमजोर हुई।

वैश्वीकरण ने ग्रामीण समाज में पश्चिमी मूल्यों एवं जीवन शैली का प्रसार किया जिससे विवाह सम्बन्धी नियम एवं निषेध कमजोर हुए तथा बाल विवाह, बहुविवाह, पर्दा प्रथा, दहेज प्रथा जैसी कुरीतियाँ भी कमजोर हुई। पश्चिमी लोकतांत्रिक मूल्यों के प्रसार होने से परिवार की शक्ति संरचना का भी लोकतांत्रिकरण हुआ है तथा मुखिया की सत्ता विकेन्द्रित हुई है एवं महिलाओं की स्थिति में सुधार हुआ है। वैश्वीकरण के प्रभाव स्वरूप बाजार अर्थव्यवस्था (Market Economy) एवं संचार क्रांति का प्रसार हुआ है। इसके प्रभाव में गाँव के स्थानीय संस्कृति का सार्वभौमिकरण (Universalization) हुआ है एवं उन्हें नवीन पहचान प्राप्त हुई है।

वैश्वीकरण के उपरोक्त सकारात्मक प्रभावों के साथ-साथ ग्रामीण समाज पर इसके कुछ नकारात्मक प्रभाव भी परिलक्षित हुए हैं, इसे हम निम्न रूपों में देख सकते हैं:-

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप वैश्विक कंपनियों का प्रसार हुआ है। वैश्विक कंपनियों द्वारा Hybrid बीज, नए कीटनाशकों एवं आधुनिक मशीनों का प्रसार किया गया तथा किसानों द्वारा इनका वृहद स्तर पर प्रयोग किया जा रहा है। इनके वृहद् स्तर पर प्रयोग से ग्रामीण बेरोजगारी में वृद्धि हो रही है तथा सर्वहाराकरण (Proletarianization) की प्रक्रिया तीव्र हुई है तथा कृषि भूमि एवं पर्यावरण पर इसका विपरीत प्रभाव पड़ा है।

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप पर्यावरण प्रदूषण की समस्या तीव्र हुई है। परिणामस्वरूप अम्लवर्षा, मानसून की अनिश्चितता, बाढ़ व सूखा जैसी समस्याओं में वृद्धि हुई है जिसका फसलों पर विपरीत प्रभाव पड़ा फलतः ग्रामीण अर्थव्यवस्था दुष्प्रभावित हुई है।

वैश्वीकरण ने आधुनिक कृषि का प्रसार कर कृषि लागत में वृद्धि की है जबकि ग्रामीण क्षेत्रों में अभी तक ऋण सुविधाओं का पर्याप्त विकास नहीं हो पाया है। फलतः किसानों द्वारा महाजन आदि से उच्च ब्याज दर पर ऋण लेकर निवेश किया जा रहा परन्तु मानसून की अनिश्चिता व उर्वरकों का असंतुलित प्रयोग आदि से कृषि उत्पादकता अनिश्चित हुई है फलतः विपरीत परिस्थितियों के कारण किसान आत्म हत्या में वृद्धि हुई है।

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप लोक कल्याणकारी राज्य कमजोर हुआ है तथा लघु व कुटीर उद्योग एवं कृषि हेतु सब्सिडी में कटौती हुई है जबकि लघु कुटीर उद्योग व कृषि को वैश्विक प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ रहा है ऐसे में लघु कुटीर उद्योग व कृषि हतोत्साहित हुए है तथा ग्रामीण गरीबी में वृद्धि हुई है।

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप FDI के अन्तःप्रवाह में वृद्धि हुई है तथा उद्योग व सेवा क्षेत्र का विकास हुआ है परन्तु यह मुख्यतः शहरी क्षेत्रों तक सीमित है और इसमें मुख्यतः कुशल श्रमिकों की माँग में वृद्धि हुई है। फलतः ग्रामीण क्षेत्र आर्थिक रूप से उपेक्षित हुए हैं तथा गाँवों के अकुशल श्रमिकों का सीमांतीकरण (Marginalization) हुआ है एवं ग्रामीण गरीबी में वृद्धि हुई है।

वैश्वीकरण के प्रभाव से पश्चिमी मूल्यों का प्रसार हुआ है तथा व्यक्तिवादिता (Individualism) में वृद्धि हुई है फलतः सामूहिकता की भावना का ह्रास हुआ है तथा धन के महत्व में वृद्धि हुई है। इससे ग्रामीण समाज में संघर्ष व तनाव में वृद्धि हुई है। इससे ग्रामीण समाज की परंपरागत समरसता कमजोर हुई है।

वैश्वीकरण ने उपभोक्तावादी एवं व्यक्तिवादी मूल्यों (Consumerist and Individualistic Values) का प्रसार किया है फलतः परिवार में संयुक्तता की भावना कमजोर हुई, परिवार के विघटन एवं बंटवारे में वृद्धि हुई है तथा गाँवों में भी विवाह -विच्छेद (Divorce) प्रारम्भ हो गया है। व्यक्तिवाद ने महत्वाकांक्षा में भी वृद्धि की है फलतः जातिगत प्रतिस्पर्धा तीव्र हुई है तथा जातीय तनाव व हिंसा में वृद्धि हुई है।

वैश्वीकरण ने पहचान के संकट को उत्पन्न किया है परिणामस्वरूप जातीय संरचना पुनः मजबूत हुई है तथा प्रतिष्ठा हत्या जैसी घटनाओं में वृद्धि हुई है एवं राजनीति में जाति की भूमिका में वृद्धि हुई है तथा जातीय तनाव व संघर्ष में वृद्धि हुई है। वैश्वीकरण ने लोक कल्याणकारी राज्य को कमजोर किया है तथा शिक्षा का निजीकरण व बाजारीकरण को बढ़ावा दिया है फलतः ग्रामीण समाज में शैक्षिक असमानता में वृद्धि हुई है तथा परंपरागत शिक्षा का ह्रास हुआ है।

वैश्वीकरण ने ग्रामीण समाज में भी आधुनिक एवं पश्चिमी जीवन शैली का प्रसार किया है। परिणामस्वरूप ग्रामीण समाज की परंपरागत संस्कृति संकट में पड़ गयी है तथा ग्रामीण समाज की सांस्कृतिक विविधता भी नष्ट हो रही है।

जनजातीय समुदाय पर वैश्वीकरण के प्रभाव
(Effects of Globalization on Tribal Community)

भारत में जनजातीय समुदाय भारतीय समाज का वह पिछड़ा समुदाय है जो सामान्यतः जंगलों एवं पहाड़ों में निवास करता है, जिनका एक विशेष नाम होता है, एक विशिष्ट संस्कृति होती है, जो अंतर्विवाही (Endogamous) होते हैं तथा आर्थिक रूप से मुख्यतः जंगलों पर निर्भर होते हैं।

अंग्रेजी शासन काल में और मुख्य रूप से स्वतंत्रता के बाद उनका मुख्य समाज के साथ सम्पर्क हुआ और उनकी सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक सभ्यता कई रूपों में प्रभावित हुई परन्तु इन पर सर्वाधिक प्रभाव वैश्वीकरण का पड़ा है। वैश्वीकरण ने भारतीय जनजातीय समाज को कई रूपों में प्रभावित किया है। वैश्वीकरण का जनजातीय समाज पर सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों ही रूपों में प्रभाव पड़ा है। इसके सकारात्मक प्रभावों को हम निम्न रूपों में देख सकते हैं-

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप जनजातीय क्षेत्रों में नवीन उद्योग-धन्धों का विकास हुआ, कई नवीन परियोजनाएँ प्रारम्भ हुई जिससे रोजगार के नए अवसरों का सृजन हुआ। इससे जनजातियों की बेरोजगारी में कमी आयी तथा जनजातियों की आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ। वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप जनजातीय क्षेत्रों में भी संचार क्रांति का प्रसार हुआ एवं उपभोक्तावादी संस्कृति (Culture of Consumerism) का विकास हुआ जिससे जनजातियों की महत्वाकांक्षा में वृद्धि हुई तथा उनके द्वारा अपनी स्थिति को सुधारने हेतु प्रयास तीव्र हुआ जिससे उनकी स्थिति में सुधार हुआ।

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप वैश्विक लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु दबाव में वृद्धि हुई है। परिणामस्वरूप सरकार, NGO, अंतर्राष्ट्रीय संगठनों आदि के द्वारा जनजातीय विकास हेतु कई रूपों में प्रयास तीव्र हुआ है।

इससे भारतीय जनजातियों की सामाजिक, आर्थिक एवं शैक्षिक स्थिति में सुधार हुआ है। वैश्वीकरण के प्रभाव स्वरूप पहचान के संकट में वृद्धि हुई है जिसके समाधान के क्रम में नृजातीय पहचान के तत्वों के महत्व में वृद्धि हुई तथा नृजातीय तत्वों के आधार पर जनजातियों में संगठनों का विकास हुआ और जनजातीय आन्दोलनों में वृद्धि हुई फलतः राजनीतिक शक्ति का विकेंद्रीकरण हुआ और जनजातियों का राजनीतिक सशक्तिकरण (Political Empowerment) हुआ।

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप संचार क्रांति एवं आधुनिक संस्कृति का प्रसार हुआ। फलतः जनजातियों में भी आधुनिक जीवनशैली के प्रचलन में वृद्धि हुई। वैश्वीकरण के प्रभाव स्वरूप आधुनिक शिक्षा एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण का जनजातियों में भी प्रसार हुआ फलतः इनके अंधविश्वासों एवं कुरितियों (Superstition and Eve-practices) में कमी आयी है। चिकित्सा के आधुनिक साधनों के प्रसार से इनके स्वास्थ्य स्तर में भी सुधार हुआ है। वैश्वीकरण ने जनजातीय समाज को नकारात्मक रूप में भी प्रभावित किया है। इसे हम निम्न रूपों में देख सकते हैं:–

वैश्वीकरण के प्रभाव स्वरूप लोक कल्याणकारी राज्य कमजोर हुआ है और निजीकरण में वृद्धि हुई है। इससे जनजातीय हितों की उपेक्षा हुई है तथा उनमें सामाजिक, आर्थिक व शैक्षिक असमानता में वृद्धि हुई है एवं जनजातीय समूहों का सीमान्तीकरण हुआ है फलतः उनका नगर की ओर प्रवास में वृद्धि हुई है, विभिन्न आन्दोलनों का उद्भव हुआ है एवं इनका नक्सलीकरण हुआ।

वैश्वीकरण ने निजीकरण को बढ़ावा दिया है तथा FDI के अन्तःप्रवाह में वृद्धि की है। इससे जनजातीय क्षेत्रों में औद्योगिकरण एवं विकास परियोजनाओं का निर्माण तीव्र हुआ। फलतः जनजातीय क्षेत्रों में प्राकृतिक संसाधनों के दोहन की गति तीव्र हुई। इससे जनजातियों को विस्थापित (Displaced) होना पड़ा है। जनजातीय विस्थापन के परिणामस्वरूप उनका सांस्कृतिक क्षरण हुआ तथा उनका समाज छिन्न-भिन्न हो गया। प्राकृतिक संसाधनों के दोहन ने अनेक पर्यावरणीय समस्याओं को भी जन्म दिया है।

वैश्वीकरण के प्रभाव स्वरूप जनजातीय क्षेत्रों में भी योग्यता एवं धन के महत्व में वृद्धि हुई फलतः समतामूलक जनजातीय समाजों में वर्ग-स्तरीकरण (Class Stratification) का विकास हुआ एवं असमानता में वृद्धि हुई।

वैश्वीकरण ने जनजातीय समाजों में भी उपभोक्तावादी संस्कृति का प्रसार कर भौतिक सुख सुविधा की होड़ पैदा की है जिससे इनमें महत्वाकांक्षा एवं प्रतिस्पर्धा में वृद्धि हुई है। उपयुक्त साधनों के अभाव के कारण इनके तुलनात्मक अभावबोध में वृद्धि हुई है। फलतः जनजातीय समाज में असंतोष, तनाव व कुंठा इत्यादि में वृद्धि हुई है एवं इनका अलगावादी व नक्सली गतिविधियों में संलिप्तता में वृद्धि हुई है।

वैश्वीकरण ने पहचान के संकट को उत्पन्न कर नृजातीय तत्वों के महत्व में वृद्धि की है फलतः विभिन्न नृजातीय आंदोलनों (Ethnic Movement) का उद्भव हुआ तथा इससे क्षेत्रवादी व अलगाववादी भावनाओं का प्रसार हुआ और सामाजिक आर्थिक विकास की प्रक्रियाएँ बाधित हुई।

वैश्वीकरण ने जनजातीय समाजों में पश्चिमी जीवनशैली का प्रसार किया है इससे जनजातीय समाज का सांस्कृतिक विघटन हुआ है तथा उनमें सामाजिक सांस्कृतिक सामंजस्य की समस्या उत्पन्न हुई है। वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप जनजातीय क्षेत्रों में पर्यटन स्थलों का विकास हुआ है और उनकी परंपराओं का बाजारीकरण हुआ है। बाजार की शक्तियों के द्वारा उनकी परंपराओं का विकृतिकरण (Distortion) हो रहा है तथा पर्यटकों के मनोरंजन के रूप में प्रयुक्त करते हुए जनजातीय संस्कृति का शोषण हुआ है। पर्यटकों के द्वारा उनकी निजता का हनन भी हो रहा है। उदाहरणस्वरूप हाल ही में अंडमान एवं निकोबार में जारवा जनजातियों के महिलाओं के अर्द्धनग्न तस्वीर लेकर पर्यटकों द्वारा इसके प्रसार की घटना को देखा जा सकता है।

भारतीय संस्कृति पर वैश्वीकरण के प्रभाव
(Effects of Globalization on Indian Culture)

प्राचीन काल से ही भारतीय संस्कृति की समृद्ध एवं गौरवशाली परम्परा की वैश्विक स्तर पर अपनी विशिष्ट पहचान रही है। समय के साथ भारतीय संस्कृति के तत्वों में भी परिवर्तन आता रहा है परन्तु इसकी लोचशीलता के कारण इसकी निरन्तरता कायम है।

वैश्वीकरण के प्रभाव स्वरूप भारतीय संस्कृति में व्यापक परिवर्तन दृष्टिगोचर हो रहा है। वैश्वीकरण ने जहाँ कई क्षेत्रों में इसे सकारात्मक रूप में प्रभावित किया है वहीं कई क्षेत्रों में इसे नकारात्मक रूप में भी प्रभावित किया है। वैश्वीकरण का भारतीय संस्कृति पर पड़ने वाले सकारात्मक प्रभावों को हम निम्न रूपों में देख सकते हैं–

वैश्वीकरण ने संचार क्रांति का प्रसार किया है। इससे भारतीय संस्कृति एवं लोक कलाओं का सार्वभौमिकरण हुआ है एवं इनको वैश्विक स्तर पर नवीन पहचान प्राप्त हुई है। वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप वैश्विक स्तर पर रोजगार के नए अवसरों का विकास हुआ है तथा भारतीयों के अंतर्राष्ट्रीय प्रवास में वृद्धि हुई है। भारतीय लोग अपने साथ-साथ भारतीय संस्कृति को भी ले गए। इस प्रकार भारतीय संस्कृति का वैश्विक प्रसार हुआ है।

वैश्वीकरणजनित पहचान के संकट के समाधान के क्रम में परंपरागत संस्कृति को पुनः महत्व प्राप्त हुआ तथा लोक कलाओं के महत्व एवं प्रचलन में भी वृद्धि हुई। वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप भारतीय मध्यम वर्ग का प्रसार हुआ तथा उनमें आर्थिक संवृद्धि आयी। इससे लोक कलाओं से सम्बन्धित वस्तुओं के विक्रय में वृद्धि हुई एवं इनका प्रसार हुआ।

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप वैश्विक बाजार में खुलापन आया। भारतीय लोक कला अपनी विशिष्टताओं के कारण वैश्विक बाजार में अपनी पैठ बनाने में सफल रही फलतः इनका वैश्विक स्तर पर प्रसार हुआ। भारतीय संस्कृति पर वैश्वीकरण के उपरोक्त सकारात्मक प्रभावों के साथ-साथ इसके कुछ नकारात्मक प्रभाव भी दृष्टिगोचर हुए। जिसे हम निम्न रूपों में देख सकते हैं-

वैश्वीकरण के प्रभाव स्वरूप संचार क्रांति का विकास हुआ तथा पश्चिमी जीवन शैली का प्रसार हुआ। फलतः परंपरागत भारतीय संस्कृति संकट में पड़ गयी।

वैश्वीकरण ने बाजार अर्थव्यवस्था का विकास किया तथा उपभोक्तावादी संस्कृति का प्रसार किया फलतः मॉल संस्कृति का विकास हुआ एवं इनका तीव्र अंधानुकरण (Blind Fallow) प्रारम्भ हुआ जिससे परंपरागत संस्कृति विकृत हुई एवं अलगावित मानव का विकास हुआ।

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप पश्चिमी संस्कृति का तीव्र प्रसार हुआ जिससे सांस्कृतिक समरूपता (Cultural Homogeneity) में वृद्धि हुई फलतः भारतीय सांस्कृतिक विविधता खतरे में पड़ गयी।

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप संचार साधनों का तीव्र विकास हुआ तथा मनोरंजन के नवीन साधनों का विकास हुआ (TV, Internet, FM)। फलतः मनोरंजन के स्थानीय एवं देशी साधनों के महत्व में कमी आयी। वैश्वीकरण के प्रभाव स्वरूप बाजार अर्थव्यवस्था के प्रभाव में वृद्धि हुई जिससे भारतीय संस्कृति का बाजारीकरण हुआ और उसका मूलस्वरूप नष्ट होने लगा।

भारतीय धर्म पर वैश्वीकरण के प्रभाव
(Effects of Globalization on Indian Religion)

वैश्वीकरण का भारतीय धर्म पर प्रभाव के तार्किक विवेचन हेतु इसकी पूर्व स्थिति की चर्चा आवश्यक हो जाती है। परम्परागत रूप से भारत एक बहुधार्मिक (Multi Religious) समाज रहा है। यह विश्व के कई महान धर्मों की जन्म स्थली रहा है। यहाँ लगभग सभी धार्मिक समूहों में अलौकिक शक्ति के महत्व को प्रमुखता दी जाती रही है तथा भारत की परम्परागत मान्यताओं एवं रूढ़ियों (Traditional beliefs and Mores) को धर्म द्वारा समर्थन प्राप्त था।

परन्तु अंग्रेजों के आगमन व विशेषरूप से स्वतंत्रता के पश्चात् भारत में आधुनिकता के मूल्यों का प्रवेश हुआ जिससे यहाँ तार्किक तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण का प्रसार हुआ फलतः यहाँ धर्मनिरपेक्षीकरण की प्रक्रिया क्रियाशील हुई परिणामस्वरूप समाज के सभी क्षेत्रों से धर्म के अतार्किक एवं अवैज्ञानिक प्रभाव के उन्मूलन की प्रक्रिया प्रारम्भ हो गयी।

लेकिन वैश्वीकरण उपरोक्त परिवर्तन की प्रक्रिया में एक नया पड़ाव साबित हुआ तथा इसने भारतीय धर्मों में बहुआयामी परिवर्तन की प्रक्रिया प्रारम्भ की है। इसमें से कुछ परिवर्तनों को जहाँ सकारात्मक प्रभाव के रूप में देखा जा सकता है, वहीं कुछ परिवर्तनों को नकारात्मक प्रभाव की कोटि में रखा जा सकता है। हम सर्वप्रथम यहाँ वैश्वीकरण का भारतीय धर्म पर पड़ने वाले सकारात्मक प्रभावों से चर्चा प्रारम्भ करना चाहेंगे।

वैश्वीकरण ने विश्व के विभिन्न समाजों के मध्य अंतःक्रिया को तीव्र किया है फलतः विभिन्न धर्मों में भी अन्तःक्रिया बढ़ी है और विभिन्न धार्मिक समूहों को एक दूसरे को जानने का मौका मिला है परिणामस्वरूप विभिन्न धार्मिक समूहों के मध्य खाई कम हुई है और ये आपस में संगठित होकर मानव कल्याण की दिशा में कार्य कर रहे हैं। इसके उदाहरण स्वरूप विभिन्न धार्मिक समूहों का पर्यावरण से सम्बन्धित समस्याओं को लेकर एकजूट होने के रूप में देखा जा सकता है।

वैश्वीकरण ने संचार साधनों के विकास का मार्ग प्रशस्त किया है जिससे धर्म के प्रचार-प्रसार में भी तीव्रता आई है फलतः धार्मिक मान्यताओं को जन-जन तक पहुँचना भी सरल हो गया है। आज स्थानीय धार्मिक परंपराओं को वैश्विक स्वरूप प्राप्त हो रहा और उनकों एक नई पहचान प्राप्त हो रही है। उदाहरणस्वरूप करवाचौथ व छठ पूजा जैसे त्योहारों के प्रसार को देखा जा सकता है।

वैश्वीकरण ने प्रतिस्पर्धा में वृद्धि की है जिससे व्यक्तिवाद में वृद्धि हुई है जिससे पारिवारिक विघटन व एकाकीपन में वृद्धि हुई है परिणामस्वरूप व्यक्ति के तनाव व कुंठा में वृद्धि हुई है जिसको दूर करने के साधन के रूप में कल्ट व सेक्ट की संख्या में वृद्धि हुई है और धर्म की विविधता बढ़ी है। वैश्वीकरण ने तर्कवाद एवं विज्ञानवाद के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है जिससे धर्म का धर्मनिरपेक्षीकरण संभव हुआ है फलतः धर्म के अन्तर्गत असमानता व शोषण पर आधारित परंपरागत नियम व मान्यताएँ कमजोर हुई है और धर्म का स्वरूप समानता पर आधारित होता जा रहा है।

आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में धर्म आधारित व्यावसायिक समूहों जैसे-पंडित, ज्योतिष, मौलवी आदि के महत्व में कमी आई थी परन्तु वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने प्रतिस्पर्धा एवं तनाव को बढ़ाकर तथा धर्म को इन तनावों को दूर करने के साधन के रूप में प्रयुक्त करके धर्म के महत्व को बढ़ाया है। फलतः इन पंड़ित, ज्योतिष व मौलवी आदि का महत्व पुनः स्थापित हुआ है।

वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने बाजार अर्थव्यवस्था को महत्वपूर्ण बना दिया है फलतः बाजार की शक्तियों ने धर्म को भी बाजार की वस्तु के रूप में प्रयुक्त कर धर्म का बाजारीकरण किया है, जिससे सामाजिक जीवन के सभी क्षेत्र में धर्म के प्रचलन में वृद्धि हुई है। बाजार की शक्तियाँ, आधुनिकीकरण की प्रक्रिया एवं विज्ञान के विकास ने धर्म एवं धार्मिक मान्यताओं की कठोरता को कम किया है और इसको अधिकाधिक रोचक व लोकप्रिय बनाने का प्रयास

किया है फलतः लोगों द्वारा धार्मिक मान्यताओं का अनुसरण करना आसान हो गया है, जिससे धर्म के प्रचलन में पुनः वृद्धि हुई है।

वैश्वीकरण ने उपभोक्तावाद व व्यक्तिवाद को बढ़ावा दिया है जिससे प्रतिस्पर्धा, तनाव एवं कुंठा में वृद्धि हुई है। ऐसे में कुंठा एवं तनाव को दूर करने वाली संस्था के रूप में धर्म अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है फलतः धर्म के महत्व में पुनः वृद्धि हुई है।

वैश्वीकरण के दौर में राज्य की लोक कल्याणकारी एवं नियंत्रणकारी भूमिका में कमी आयी है। जबकि धार्मिक पुनः प्रर्वतनवाद (Religious Revivalism) की प्रक्रिया के माध्यम से धर्म ने पुनः महत्व प्राप्त कर लिया है। आज धर्म आधारित नैतिकता के स्तर में वृद्धि हुई है साथ ही धर्म ने लोगों में जनकल्याण के कार्यों को करने की प्रेरणा भी जागृत की है फलतः सामाजिक नियंत्रण के साधन के रूप में एवं लोक कल्याणकारी राजा के विकल्प के रूप में धर्म के महत्व में वृद्धि हुई है।

वैश्वीकरण ने गतिशीलता (Mobility) को तीव्र कर व्यक्ति को अपने जमीन व परंपराओं से काटकर उनमें पहचान के संकट को उत्पन्न किया है और धर्म इस समस्या का एक महत्वपूर्ण समाधान बनकर उभरा है फलतः पहचान के संकट का समाधान करने के साधन के रूप में धर्म के महत्व में वृद्धि हुई है।

वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने स्थानीय गतिशीलता को तीव्र किया है और लोगों को भिन्न-भिन्न समाजों में पहुँचा दिया है, जहाँ लोग सांस्कृतिक आधार पर दूसरों से अलग-थलग महसूस करते है, परन्तु यहाँ धर्म उनके एकाकीपन दूर करने के साधन के रूप में क्रियाशील होकर एक धार्मिक समूह के रूप में उन्हें एकीकृत किया है और उनमें अलगाव की भावना को दूर किया है। उदाहरणस्वरूप कनाडा में पंजाबी समूहों में एकीकरण के साधन के रूप में धर्म के महत्व को देखा जा सकता है।

वैश्वीकरण की इस प्रक्रिया ने धर्म के बाजारीकरण को प्रोत्साहित किया है और बाजार की शक्तियों ने धर्म के सकारात्मक पक्षों को उजागर करके इससे लाभ कमाने का प्रयास किया है जैसे-रामदेव द्वारा आयुर्वेद का प्रचार या रविशंकर द्वारा Art of Living का प्रचार फलतः मानव की भलाई करने वाली संस्था के रूप में धर्म के महत्व में वृद्धि हुई है।

उपरोक्त विवेचन वैश्वीकरण के धर्म पर सकारात्मक प्रभाव को स्पष्ट करते हैं परन्तु वैश्वीकरण ने धर्म पर नकारात्मक प्रभाव भी डाले हैं जिनकी चर्चा हम निम्न रूपों में कर सकते हैं-

यह तो स्पष्ट है कि वैश्वीकरण ने धर्म का बाजारीकरण कर इसे बाजार की वस्तु बना दिया है तथा बाजार की शक्तियों ने धर्म के परंपरागत स्वरूप को रूपांतरित (Transformed) कर दिया है इसके परिणामस्वरूप धर्म के मौलिक पक्ष कमजोर हुए है तथा इसके बाह्य आडंबर में वृद्धि हुई है।

आज बाजार की शक्तियाँ अपने फैलाव व लाभ हेतु धर्म को एक अस्त्र के रूप में प्रयोग कर रही है जिससे धर्म का महत्व बढ़ा है एवं इसके प्रचलन में वृद्धि हुई है परन्तु इसने धर्मनिरपेक्षीकरण की प्रक्रिया को बाधित किया है। वैश्वीकरण ने सामाजिक जीवन के सभी क्षेत्रों में धर्म के महत्व को बढ़ा दिया है, जिससे लोगों को धार्मिक आधार पर संगठित होने के प्रचलन में वृद्धि हुई है फलतः धार्मिक आधार पर होने वाले तनाव, संघर्ष आदि में वृद्धि हुई है और भारतीय समाज की समरसता कम हुई है।

वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने विचारधारा के महत्व में कमी एवं पहचान संकट को उत्पन्न कर नृजातीय पहचान (Ethnic Identity) के तत्वों के महत्व में वृद्धि कर दी है फलतः राजनीतिक दलों के द्वारा राजनीतिक शक्ति प्राप्त करने हेतु लोगों को लामबंद करने के आधार के रूप में धर्म के प्रयोग में वृद्धि हुई है परिणामस्वरूप धर्म का राजनीतिकरण, धार्मिक रूढ़िवाद व सम्प्रदायवाद आदि में वृद्धि हुई है।

वैश्वीकरणजनित पहचान के संकट ने धर्म को पहचान कायम करने के साधन के रूप में महत्वपूर्ण बना दिया है और पहचान कायम करने के प्रयास में विभिन्न धार्मिक समूहों द्वारा धर्म के रूढ़िगत मान्यताओं को फिर से लागू करने का प्रयास किया जा रहा है, फलतः धर्म के अन्तर्गत परम्परागत मान्यताओं का प्रचलन फिर से बढ़ा है जो समाज के आधुनिकीकरण के मार्ग में बाधा साबित हो रहा है।

वैश्वीकरण ने धर्म के बाजारीकरण को संभव बनाकर धार्मिक आडंबर को बढ़ावा दिया है फलतः आज धर्म के आड़ में ढेर सारे बाबाओं एवं ज्योतिषियों का उद्भव हो रहा जो धर्म के नाम पर शोषण को बढ़ावा दे रहे हैं। उदाहरणस्वरूप अभी हाल ही में चर्चे में आए आसाराम बापू के प्रकरण को देख सकते हैं।

वैश्वीकरण के इस दौर में धर्म आज बाजार की शक्तियों से चालित हो रहा है तथा बाजार की शक्तियों ने धर्म में धन एवं चढ़ावा के महत्व को बढ़ा दिया है फलतः धर्म भी उच्च वर्ग की वस्तु बनकर रह गयी है और गरीब वर्ग धार्मिक स्तर पर भी हाशिए पर चला गया है।

वैश्वीकरण ने आर्थिक विषमता एवं वंचना में वृद्धि की है तथा वंचित समूह धार्मिक आधार पर स्वयं को संगठित करके अपने आर्थिक हितों को सिद्ध करने और वंचना को दूर करने की ओर प्रेरित हुए हैं, जिससे सम्प्रदायवाद व धार्मिक आतंकवाद की घटना में वृद्धि हुई है और भारतीय समाज की समरसता कमजोर हुई है।

भारतीय विवाह एवं परिवार व्यवस्था पर वैश्वीकरण के प्रभाव (Effects of Globalization on Indian Marriage and Family System)

वैश्वीकरण ने भारतीय समाज के प्रत्येक संस्थाओं को किसी न किसी रूप में प्रभावित किया है। विवाह एवं परिवार रूपी परंपरागत संस्था पर भी वैश्वीकरण का मिला-जुला प्रभाव रहा है। विवाह एवं परिवार पर वैश्वीकरण के सकारात्मक प्रभावों को हम निम्न रूपों में देख सकते हैं:-

वैश्वीकरण ने रोजगार के अवसर में वृद्धि की है फलतः व्यक्ति की आत्मनिर्भरता में वृद्धि हुई है एवं परिवार में मुखिया की सत्ता कमजोर हुई है। इससे जीवन साथी के चुनाव में लड़के लड़कियों के महत्व में वृद्धि हुई है। वैश्वीकरण के प्रभाव स्वरूप आधुनिक एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण का प्रसार हुआ। इससे परंपरागत मान्यताएँ एवं विवाह संबंधी निषेध कमजोर हुए साथ ही व्यक्ति की आत्मनिर्भरता एवं स्वतंत्रता में भी वृद्धि हुई। फलतः अंतरजातीय, सगोत्रीय एवं प्रेम विवाह के प्रचलन में वृद्धि हुई है तथा विवाह के क्षेत्रीय विस्तार में भी वृद्धि हुई है। इसके साथ ही बाल विवाह, दहेज प्रथा इत्यादि कुरीतियों में भी कमी आयी है।

वैश्वीकरण ने संचार साधनों एवं विज्ञान व प्रौद्योगिकी का तीव्र विकास किया जिससे विवाह में आधुनिक तकनीकी का प्रयोग प्रारम्भ हुआ (shadi.com etc.)। इससे उपयुक्त वर-वधु की तलाश में आसानी हुई। वैश्वीकरण ने विवाह एवं परिवार पर उपरोक्त सकारात्मक प्रभावों के साथ-साथ इसे नकारात्मक रूप में भी प्रभावित किया है। इसे हम निम्न रूप में देख सकते है-

वैश्वीकरण के प्रभाव स्वरूप लोगों की महत्वकांक्षा और व्यक्तिवादिता में वृद्धि हुई है। परिणामस्वरूप परिवार की संयुक्तता की भावना कमजोर हुई, पारिवारिक विघटन (Family Disintegration) तीव्र हुआ तथा एकाकी परिवार की संख्या में वृद्धि हुई है।

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप स्त्रियों की आत्मनिर्भरता, स्वतंत्रता व स्वच्छंदता में वृद्धि हुई है। इसके प्रतिक्रियास्वरूप पुरुषों के पितृसत्तात्मकता में भी वृद्धि हुई है। इससे स्त्री-पुरुषों के बीच टकराव में वृद्धि हुई है, फलतः विवाह विच्छेद की दर में वृद्धि हुई तथा क्रमिक एक विवाह, Serial Monogamy आदि का प्रचलन बढ़ा है।

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप व्यक्ति की स्वतंत्रता में वृद्धि के साथ-साथ पश्चिमी संस्कृति का प्रसार हुआ इससे विवाह के नवीन स्वरूपों का प्रचलन हुआ, जैसे-समलैंगिक विवाह, लिव-इन-रिलेशनशिप, Single parent family आदि तथा यौन सम्बन्धों में खुलापन आया। वैश्वीकरण ने व्यक्ति की महत्वाकांक्षा व प्रतिस्पर्धा में वृद्धि कर उसकी व्यस्तता में वृद्धि कर दी है, फलतः बच्चों के पालन पोषण व सामाजीकरण तथा वृद्धों के देखभाल में परिवार की भूमिका में कमी आयी है।

भारतीय महिलाओं पर वैश्वीकरण के प्रभाव
(Effects of Globalization on Indian Women)

भारतीय महिलाओं पर वैश्वीकरण के प्रभावों के तार्किक विवेचन हेतु वैश्वीकरण से पूर्व के काल में भारतीय महिलाओं की स्थिति एवं उनकी समस्याओं की चर्चा महत्वपूर्ण हो जाती है। भारत हमेशा से पितृसत्तात्मक (Patrialchal) सामाजिक व्यवस्था वाला समाज रहा है जहाँ महिलाओं की सामाजिक प्रस्थिति (Social Status) निम्न रही है। महिलाओं में शिक्षा का स्तर भी निम्न रहा है तथा इनमें राजनीतिक जागरूकता के अभाव के कारण इनकी राजनीतिक सहभागिता भी निम्न रही है। आर्थिक रूप से भी महिलाएँ अधिकत्तर पुरुषों पर निर्भर रही है तथा इनमें जागरूकता एवं स्वतंत्रता का भी अभाव रहा है।

अपनी निम्न सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक प्रस्थिति के कारण महिलाएँ विभिन्न समस्याओं से ग्रस्त रही है। इसमें पर्दा प्रथा, कम आयु में विवाह की समस्या, दहेज की समस्या, घरेलू हिंसा की समस्या व स्वास्थ्य से सम्बन्धित समस्याएँ प्रमुख हैं।

वैश्वीकरण ने समाज के हर वर्ग को व्यापक रूप से प्रभावित किया है व इस क्रम में भारतीय महिलाओं पर भी इसका व्यापक प्रभाव देखा जा सकता है। यह प्रभाव सकारात्मक व नकारात्मक दोनों रूप में दिखाई देता है। सर्वप्रथम हम भारतीय महिलाओं पर वैश्वीकरण के सकारात्मक प्रभावों की चर्चा करते हैं एवं इस क्रम में देखते हैं कि वैश्वीकरण के प्रभाव स्वरूप भारत में FDI के अंर्तप्रवाह में वृद्धि हुई जिससे विभिन्न प्रकार के उद्योगों एवं सेवा क्षेत्र के विकास में तीव्रता आई। फलतः योग्यता के आधार पर महिलाओं के लिए रोजगार के अवसर में वृद्धि हुई तथा महिलाओं के रोजगार भागीदारी में वृद्धि हुई। जिससे भारतीय महिलाओं का आर्थिक सशक्तिकरण हुआ।

वैश्वीकरण के प्रभाव स्वरूप संचार साधनों का तीव्र विकास हुआ एवं उपभोक्तावादी संस्कृति का प्रसार हुआ। फलतः महिलाओं की महत्वाकांक्षा में वृद्धि हुई एवं इनके द्वारा प्रस्थिति (Status) में सुधार हेतु प्रयास तीव्र हुए। परिणामस्वरूप महिलाओं की प्रस्थिति में सुधार हुआ।

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप शिक्षा एवं संचार साधनों का विकास तीव्र हुआ जिसके माध्यम से आधुनिक विचारधाराओं का प्रसार हुआ। इससे तार्किक एवं वैज्ञानिक दृष्टि का विकास हुआ। फलतः महिलाओं द्वारा सामाजिक रूढ़ियों पर आधारित शोषण के विरोध में तीव्रता आई एवं नवीन महिला आन्दोलनों का उद्भव हुआ। परिणामस्वरूप महिलाओं से जुड़ी विभिन्न समस्याओं (पर्दा प्रथा, दहेज प्रथा, बाल विवाह, घरेलू हिंसा, भ्रूण हत्या आदि) में कमी आयी और महिलाओं की प्रस्थिति में सुधार आया।

वैश्वीकरण की प्रक्रिया में संचार माध्यम के विकास के साथ-साथ वैश्विक संस्कृति मुख्यतः पश्चिमी संस्कृति का प्रसार हुआ। भारतीय महिलाओं ने पश्चिमी संस्कृति का अनुकरण किया, परिणामस्वरूप इनकी जीवनशैली में बदलाव आया जैसे-पश्चिमी वेश-भूषा, प्रेम विवाह, अंतरजातीय विवाह, लिव-इन-रिलेशनशिप, वेलेंटाइन-डे, डिस्को जाना आदि।

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप एक तरफ जहाँ गुणवत्तापूर्ण उच्च शिक्षा का प्रसार हुआ तो दूसरी तरफ महिलाओं में जागरूकता आयी जिससे महिलाओं का शैक्षिक उत्थान हुआ एवं इन्हें उच्च

प्रतिष्ठित रोजगार की प्राप्ति हुई जिससे इनका आर्थिक एवं सामाजिक सशक्तिकरण हुआ।

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप संचार क्रांति एवं शिक्षा आदि के प्रसार के द्वारा महिलाओं की जागरूकता में वृद्धि हुई। फलतः इनकी राजनीतिक सहभागिता में वृद्धि हुई। वैश्वीकरण ने भारतीय महिलाओं को नकारात्मक रूप से भी प्रभावित किया है। वैश्वीकरण का भारतीय महिलाओं पर पड़ने वाले नकारात्मक प्रभावों की चर्चा हम निम्न रूप में कर सकते हैं-

वैश्वीकरण ने उपभोक्तावादी संस्कृति का प्रसार किया तथा रोजगार के नए अवसरों में वृद्धि भी की है जिसने महिलाओं की महत्वाकांक्षा में वृद्धि की है, फलतः पारिवारिक सम्बन्धों में तनाव, पारिवारिक कलह एवं तलाक की दर में वृद्धि हुई है।

वैश्वीकरण ने भौतिक जीवन शैली की ओर उन्मुखता में वृद्धि की है। बेहतर भौतिक सुख-सुविधाओं की प्राप्ति हेतु पति-पत्नी दोनों में नौकरी करने की प्रवृत्ति का विकास हुआ है जिससे महिलाओं का परिवार, पति एवं बच्चों से भावनात्मक एवं मानसिक दूरी बढ़ी है, फलतः पारिवारिक सामंजस्य की समस्या में वृद्धि हुई है।

वैश्वीकरण ने संचार साधनों का विकास किया है एवं उपभोक्तावादी पश्चिमी संस्कृति का प्रसार किया है। जिसको अपनाकर महिलाओं की स्वतंत्रता एवं स्वच्छन्दता में वृद्धि हुई है, फलतः महिलाओं की नैतिक एवं परम्परागत मानदण्डों (Traditional Standards) से विचलन में वृद्धि हुई है एवं अधिक उम्र में विवाह, प्रेम विवाह, लिव-इन-रिलेशनशिप, अविवाहित रहना, यौन संबंधों में खुलापन आदि प्रवृत्तियों का प्रसार हुआ है तथा स्वास्थ्य सम्बन्धी नवीन समस्याओं, जैसे-AIDS आदि का उद्भव हुआ है।

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप भौतिकवादी संस्कृति (Materialistic Culture) का प्रसार हुआ है, परिणामस्वरूप महत्वाकांक्षा एवं प्रतिस्पर्धा में वृद्धि हुई है जिससे समय का अभाव हुआ है तथा महिलाएँ जीवन के मौलिक पक्षों से यहाँ तक कि अपने आप से भी अलगाव (Isolation) की समस्या का सामना कर रही है। वैश्वीकरण ने संचार साधनों का तीव्र विकास किया है, फलतः सिनेमा एवं धारावाहिकों के प्रति महिलाओं की उन्मुखता बढ़ी है। इसका महिलाओं के मनोवृत्ति पर दूषित प्रभाव पड़ा है तथा व्यक्तिवादी, स्वार्थी व कूटनीतिज्ञ, षडयंत्रकारी महिला व्यक्तित्व का विकास हुआ है।

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप सेवा क्षेत्र का तीव्र विकास हुआ है तथा महिलाओं के लिए विभिन्न क्षेत्रों में रोजगार के नए अवसर उपलब्ध हुए है; परन्तु इसने महिलाओं के लिए रात्रि कार्य की संख्या में भी वृद्धि की है, फलतः कार्यस्थल पर महिलाओं के साथ दुर्व्यवहार एवं यौन शोषण, महिलाओं की सुरक्षा की समस्या तथा उनमें अनिद्रा, तनाव आदि स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं का उद्भव हुआ है।

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप बाजार अर्थव्यवस्था का विकास हुआ है। बाजार की शक्तियों द्वारा अपने उत्पादों को बेचने की होड़ में वृद्धि हुई है। बाजार की शक्तियों के द्वारा अपने उत्पादों को बेचने के लिए महिलाओं का उपभोग की वस्तु के रूप में प्रयोग हो रहा है फलतः महिलाओं की गरिमा एवं प्रतिष्ठा का ह्रास हुआ है।

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप मुख्यतः नगरों में FDI के अंतःप्रवाह में वृद्धि हुई है। इससे नगरों में रोजगार के नए अवसरों का सृजन हुआ है। रोजगार की प्राप्ति हेतु ग्रामीण एवं जनजातीय महिलाओं की नगरों की ओर प्रवास में वृद्धि हुई है। फलतः इन महिलाओं का अपने रिश्तेदारों एवं परिवार से अलगाव हुआ है एवं इनके सामाजिक संबंधों में बिखराव हुआ है।

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप विज्ञान एवं तकनीकी का तीव्र प्रसार हुआ है, जिससे लिंग परीक्षण के उपकरणों का विकास हुआ है एवं इनकी सुलभ उपलब्धता हुई है, परिणामस्वरूप बालिका भ्रूण हत्या की दर में वृद्धि हुई है। वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप उद्योग एवं संचार साधनों का तीव्र विकास हुआ जिससे पर्यावरण प्रदूषण सम्बन्धी नवीन समस्याओं का उद्भव हुआ है जिसका महिलाओं के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है तथा महिलाओं में ब्रेस्ट कैंसर व गर्भाशय कैंसर जैसी बीमारियों में वृद्धि हुई है।

वैश्वीकरण ने वैश्विक गतिशीलता में वृद्धि की है। विदेशों में रोजगार एवं शैक्षणिक अवसरों की उपलब्धता के कारण भारतीय महिलाओं का विदेश में प्रवास और विदेशी संस्कृति के अनुकरण में वृद्धि हुई है। परिणामस्वरूप महिलाओं में पहचान संकट और उससे जुड़ी नवीन समस्याओं का उद्भव हुआ है। वैश्वीकरण के प्रभाव स्वरूप पर्यटन उद्योग का तेजी से विकास हुआ है जिससे Sex tourism जैसी समस्याओं का उद्भव हुआ है एवं महिलाओं के शोषण में वृद्धि हुई है।

भारतीय शिक्षा व्यवस्था पर वैश्वीकरण के प्रभाव (Effects of Globalization on Indian Education System)

संस्कृति का ज्ञान ही शिक्षा है। शिक्षा का तात्पर्य सामान्यतः मनुष्य को सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक आदि सभी पक्षों के बारे में ज्ञान प्रदान करके उसका सर्वांगीण विकास करना है, जिससे वह समाज का प्रकार्यात्मक (Functional) सदस्य बन सके।

भारतीय शिक्षा व्यवस्था पर वैश्वीकरण के प्रभावों के विश्लेषण हेतु वैश्वीकरण से पूर्व भारतीय शिक्षा व्यवस्था के स्वरूप को जानना आवश्यक हो जाता है। अंग्रेजी शासन से पूर्व भारत में धर्म आधारित शिक्षा का प्रचलन था और शिक्षा के क्षेत्र में लिंग, जाति, वर्ग आदि के आधार पर असमानता व्याप्त थी। अंग्रेजी शासन काल में आधुनिक शिक्षा प्रणाली का प्रारम्भ होता है, परन्तु इस काल में भी शैक्षिक असमानता यथावत बनी रहती है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् आधुनिक भारत के विकास के लक्ष्य को निर्धारित किया जाता है और इस लक्ष्य की प्राप्ति हेतु आधुनिक शिक्षा के प्रचार-प्रसार पर बल दिया जाता है।

इस क्रम में सरकार द्वारा प्राथमिक एवं माध्यमिक स्तर पर नि:शुल्क शिक्षा की व्यवस्था की जाती है। तकनीकी एवं व्यवसायिक शिक्षा की मांग कम थी, फलत: इनका प्रसार भी कम हुआ तथा यह मुख्यत: सरकारी क्षेत्र तक सीमित था। प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में मिशनरियों एवं निजी क्षेत्र की भी महत्वपूर्ण भूमिका थी, परन्तु इनकी संख्या सीमित थी। अभी भी शिक्षा के क्षेत्र में लैंगिक आधार पर, जातीय आधार पर, जनजातीय आधार पर व ग्रामीण-नगरीय आधार पर असमानता व्याप्त थी।

वैश्वीकरण ने भारतीय शिक्षा व्यवस्था को व्यापक रूप से प्रभावित किया है। इसके प्रभावों के बेहतर विवेचन हेतु भारतीय शिक्षा व्यवस्था के विभिन्न भागों पर इसके विशिष्ट प्रभावों की चर्चा आवश्यक हो जाती है। इस क्रम में हम सर्वप्रथम प्राथमिक शिक्षा व्यवस्था पर वैश्वीकरण के प्रभावों की चर्चा करते हैं।

वैश्वीकरण ने प्राथमिक शिक्षा व्यवस्था को सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों ही रूपों में प्रभावित किया है। यदि इसके सकारात्मक प्रभावों की चर्चा करे तो हम देखते हैं कि वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप FDI के अर्न्तप्रवाह में वृद्धि हुई है तथा प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में निजी शिक्षण संस्थाओं का तेजी से प्रसार हुआ है, इस प्रकार गुणवत्तापूर्ण प्राथमिक शिक्षा का प्रचार-प्रसार हुआ है।

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप वैश्विक लक्ष्यों की प्राप्ति के दबाव में वृद्धि हुई है तथा प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमिकरण के लक्ष्य पर बल दिया जाने लगा है। फलत: सरकार, स्वयंसेवी संगठनों तथा अंतर्राष्ट्रीय संगठनों द्वारा प्रयासों में तेजी आयी है तथा प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में सुधार हुआ है।

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप शिक्षा के निजीकरण एवं बाजारीकरण से प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में प्रतिस्पर्धा में वृद्धि होती है, जिससे गुणवत्तापूर्ण शिक्षा उपलब्ध करवाने का प्रयास तीव्र हो जाता है। फलत: प्राथमिक शिक्षा के स्तर में सुधार होता है एवं आम व्यक्ति को गुणवत्तापरक प्राथमिक शिक्षा की प्राप्ति होती है।

प्राथमिक शिक्षा पर वैश्वीकरण के उपरोक्त सकारात्मक प्रभावों के साथ इसके कुछ नकारात्मक प्रभावों की भी चर्चा आवश्यक हो जाती है। वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप प्राथमिक शिक्षा के निजीकरण व बाजारीकरण में तेजी आती है। फलत: शिक्षा व्यवस्था महंगी हो जाती है एवं सीमांत और गरीब बच्चे गुणवत्ता परक प्राथमिक शिक्षा से वंचित हो जाते हैं। इस प्रकार शैक्षिक असमानता में वृद्धि होती है।

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में निजीकरण व बाजारीकरण की होड़ देखी जाती है। प्राथमिक शिक्षा में दिखावे पर ज्यादा जोर दिया जाने लगता है (वातानुकूलित क्लास रूम, वातानुकूलित परिवहन व्यवस्था) एवं शिक्षा अपने मूल उद्देश्यों से दूर हो जाती है।

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप भारत में पश्चिमी संस्कृति (Western Culture) एवं मूल्यों का प्रसार हुआ है, जिसका प्रभाव प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में भी दिखाई देता है एवं प्राथमिक शिक्षा पश्चिमी मूल्यों का वाहक बन जाती है, जिससे बच्चों में परम्परागत भारतीय मूल्यों (Traditional Indian Values) के प्रति लगाव कम हो जाता है। वैश्वीकरण का प्राथमिक शिक्षा पर प्रभावों के विवेचन के पश्चात् हम उच्च शिक्षा पर इसके प्रभावों को देख सकते हैं।

उच्च शिक्षा के क्षेत्र में यदि वैश्वीकरण के सकारात्मक प्रभावों की चर्चा की जाए तो यह देखा जा सकता है कि वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप उच्च शिक्षा के क्षेत्र में निजी शिक्षण संस्थानों का प्रसार तीव्र होता है। इससे प्रतिस्पर्धा में वृद्धि होती है फलत: उच्च शिक्षा के स्तर एवं इसके विकल्पों में वृद्धि होती है।

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप वैश्विक शिक्षा प्रणाली का प्रसार होता है। इससे सरकारी क्षेत्र के उच्च शिक्षण संस्थानों में वैश्विक स्तर के सुधारों का प्रयास तेज हो जाता है, यथा- विश्वविद्यालयों में प्रवेश हेतु परीक्षा का आयोजन, सेमेस्टर प्रणाली लागू किया जाना आदि। इस प्रकार उच्च शिक्षा की गुणवत्ता में वृद्धि होती है।

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप लोक कल्याणकारी राज्य (Public Welfare State) कमजोर होता है एवं सरकार द्वारा महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों के अनुदानों में कटौती की जाती है। फलत: सरकारी विश्वविद्यालयों व महाविद्यालयों द्वारा अपने खर्चे के प्रबंधन हेतु Paid course के रूप में कई व्यावसायिक पाठ्यक्रमों की शुरूआत की जाती है और इस प्रकार सरकारी शिक्षण संस्थान भी प्रतिस्पर्धा में शामिल हो जाते हैं। इससे शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार होता है।

उच्च शिक्षा पर वैश्वीकरण के उपरोक्त साकरात्मक प्रभावों के साथ इसके कुछ नकारात्मक प्रभाव भी दृष्टिगत होते हैं। वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप उच्च शिक्षा का निजीकरण एवं बाजारीकरण हुआ, फलत: शिक्षा शुल्क में बढ़ोत्तरी हुई एवं उच्च शिक्षा मंहगी हो गयी। इससे निम्न वर्ग एवं निम्न मध्यम वर्ग उच्च शिक्षा से वंचित हुआ एवं उच्च शिक्षा के क्षेत्र में शैक्षिक असमानता में वृद्धि हुई।

शिक्षा के निजीकरण एवं बाजारीकरण के फलस्वरूप ढेर सारे शिक्षण संस्थानों का विकास हुआ, जिनका मुख्य उद्देश्य अधिकाधिक लाभ अर्जित करना है। अधिकतर संस्थानों द्वारा शिक्षा की गुणवत्ता पर कम ध्यान दिया जा रहा है तथा प्रचार, दिखावा आदि पर अधिक ध्यान दिया जा रहा है, जिससे उच्च शिक्षा की गुणवत्ता में गिरावट आ रही है।

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप भारत का विश्व के अन्य देशों के साथ अंतरसंबंधों में वृद्धि हुई। इससे भारतीय शिक्षा व्यवस्था का विश्व के अन्य शिक्षा व्यवस्थाओं के साथ सम्पर्क तेज हुआ है और USA तथा यूरोप के शिक्षण संस्थाओं का भारत में प्रवेश की दिशा में प्रयास तीव्र हुए हैं। इससे शैक्षिक असमानता में वृद्धि की संभावना भी बढ़ी है।

उच्च शिक्षा पर वैश्वीकरण के प्रभावों के विवेचन के पश्चात् तकनीकी एवं व्यावसायिक शिक्षा जो आज शिक्षा व्यवस्था का एक

महत्वपूर्ण क्षेत्र बन गया है, पर वैश्वीकरण के प्रभावों की विवेचना आवश्यक हो जाती है।

यदि हम तकनीकी एवं व्यावसायिक शिक्षा पर वैश्वीकरण के सकारात्मक प्रभावों की बात करे तो हम देख सकते हैं कि वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप वैश्विक स्तर पर उद्योग धन्धों का तीव्र विकास होता है, जिससे विश्व स्तरीय तकनीकी विशेषज्ञों की मांग में वृद्धि होती है एवं सरकार तथा निजी क्षेत्र के द्वारा तकनीकी संस्थानों के विकास में तेजी आती है। फलतः तकनीकी शिक्षा का व्यापक प्रसार होता है, तकनीकी शिक्षा के अवसरों में वृद्धि होती है एवं तकनीकी विशेषज्ञों की संख्या में वृद्धि होती है।

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप तकनीकी शिक्षा के क्षेत्र में भी भारत को वैश्विक प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ा है और भारत के समक्ष अपने तकनीकी शिक्षा के स्तर को विश्वस्तरीय बनाने हेतु दबाव में वृद्धि हुई है। फलतः तकनीकी शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार हुआ है। वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप तकनीकी संस्थानों में वैश्विक मानकों को अपनाया जाने लगा है, जैसे-प्रवेश हेतु एकल प्रवेश परीक्षा आयोजित करने का निर्णय। इससे अधिकाधिक योग्य छात्रों को मौका मिला है।

उपरोक्त सकारात्मक प्रभावों के साथ-साथ वैश्वीकरण के कुछ नकारात्मक प्रभावों की चर्चा भी आवश्यक हो जाती है। वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप तकनीकी शिक्षा क्षेत्र का व्यावसायीकरण तेज हुआ है। जिससे तकनीकी शिक्षा महंगी हो गयी है। फलतः निम्न वर्ग तकनीकी शिक्षा प्राप्त करने से वंचित हो गये है एवं तकनीकी शिक्षा के क्षेत्र में शैक्षिक असमानता में वृद्धि हुई है।

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप भारत को विश्वस्तरीय तकनीकी शिक्षा उपलब्ध कराने के दबाव में वृद्धि हुई है, जबकि भारत जैसे विकासशील देशों के पास संसाधनों का अभाव है। फलतः वैश्विक प्रतिस्पर्धा में तकनीकी शिक्षा के क्षेत्र में भारत का स्तर अन्य देशों की तुलना में कमजोर प्रदर्शित हुआ है।

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप आधुनिक तकनीकी शिक्षा का विकास हुआ है। इसके तहत आधुनिक उद्योगों एवं वस्तुओं के निर्माण को ध्यान में रखकर व्यावसायिक शिक्षण संस्थाओं की स्थापना एवं प्रसार पर जोर दिया गया है। फलतः परंपरागत व्यवसायों (लघु एवं कुटीर उद्योगों) से सम्बन्धित शिक्षा प्रणाली का ह्रास हुआ है।

शिक्षा व्यवस्था के अंतर्गत महिला शिक्षा भी एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है। वैश्वीकरण ने इसे भी व्यापक रूप से प्रभावित किया है। महिला शिक्षा पर यदि हम इसके सकारात्मक प्रभावों की विवेचना करे तो हम देख सकते हैं कि वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप वैश्विक लक्ष्यों की प्राप्ति की दिशा में प्रयासों में तेजी आती है, जिससे सरकार द्वारा शिक्षा कार्यक्रमों में बालिका शिक्षा पर विशेष बल दिया जाने लगा और बालिका केन्द्रित कई शिक्षा कार्यक्रमों की शुरूआत की जाती है। (जैसे- कस्तूरबा गाँधी आवासीय विद्यालय, साक्षर बालिका परियोजना, लड़कियों हेतु विद्यालयों में शौचालय की व्यवस्था) फलतः महिला साक्षरता दर में वृद्धि होती है और लिंग आधारित शैक्षिक असमानता (Gender Based Educational Inequality) में कमी आती है।

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप आधुनिक मूल्यों (Modern Value) का तीव्र प्रसार हुआ है और योग्यता आधारित रोजगार के नवीन अवसरों का सृजन हुआ है तथा पितृसत्तात्मक सामाजिक संरचना कमजोर हुई है और महिलाओं के अधिकारों में वृद्धि हुई है एवं इनकी महत्वाकांक्षा में वृद्धि हुई है। इससे शिक्षा के प्रति महिलाओं की उन्मुखता में वृद्धि हुई है। फलतः महिला शिक्षा के स्तर में सुधार हुआ है।

वैश्वीकरणजनित नवीन अर्थव्यवस्था ने ढेर सारे रोजगारों का सृजन किया है। इससे महिला केन्द्रित रोजगारों (रिसेप्शनिष्ट, सेल्स गर्ल, कॉल सेंटर) की संख्या में वृद्धि हुई है तथा इन रोजगारों की प्राप्ति हेतु महिलाओं की उन्मुखता और इसके लिए शिक्षा की ओर उनकी सहभागिता में वृद्धि हुई है। फलतः महिलाओं के शैक्षिक स्तर में सुधार हुआ है।

उपरोक्त सकारात्मक प्रभावों के साथ-साथ महिला शिक्षा को वैश्वीकरण ने नकारात्मक रूप से भी प्रभावित किया है। वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप शिक्षा के निजीकरण एवं बाजारीकरण में तीव्रता आयी है। फलतः शिक्षा व्यवस्था महंगी हुई है, जबकि अभी भी पितृसत्तात्मक मूल्यों (Patriarchal Values) के निरंतरता के कारण लड़कियों की शिक्षा पर कम खर्च करने की प्रवृत्ति विद्यमान है। परिणामस्वरूप वर्तमान महंगी शिक्षा व्यवस्था में लड़कियाँ उच्च तकनीकी, व्यावसायिक एवं गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के लाभ से वंचित हो रही हैं।

वैश्वीकरण का यदि हम जनजातीय शिक्षा पर प्रभावों की चर्चा करें तो वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप संचार साधनों का विकास हुआ है और निजी तथा व्यावसायिक शिक्षण संस्थानों का प्रसार हुआ है। फलतः जनजातियों में भी शिक्षा के प्रति जागरूकता एवं प्रोत्साहन में वृद्धि हुई है, जिससे जनजातियों में शिक्षा के स्तर में सुधार हुआ है।

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप जनजातीय क्षेत्रों में अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली का प्रचलन तीव्र हुआ है, इससे जनजातियों द्वारा आधुनिक अंग्रेजी शिक्षा को अपनाया जा रहा है। फलतः पारंपरिक जनजातीय शिक्षा का ह्रास हो रहा है। वैश्वीकरण का यदि ग्रामीण शिक्षा पर प्रभावों की चर्चा की जाए तो हम देख सकते हैं कि वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप ग्रामीण क्षेत्रों में भी निजी शिक्षण संस्थाओं का प्रसार होता है। जिससे ग्रामीणों को भी बेहतर शिक्षा प्राप्ति के अवसर उपलब्ध हुए हैं एवं ग्रामीण शिक्षा की दर में भी वृद्धि हुई है।

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप सरकार पर वैश्विक लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु दबाव में वृद्धि हुई है। फलतः सरकार द्वारा विभिन्न शिक्षा कार्यक्रमों (सर्वशिक्षा अभियान, साक्षर भारत) के क्रियान्वयन में तेजी लायी जाती है। फलतः ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा के स्तर में सुधार आता है। वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप आंतरिक अर्थव्यवस्था में सुदृढ़ता आती

है तथा ग्रामीण क्षेत्रों में भी व्यावसायिक व तकनीकि शिक्षण संस्थानों की स्थापना होने लगती है। फलतः ग्रामीण क्षेत्र में भी वैज्ञानिक एवं व्यावसायिक शिक्षा का प्रसार होता है।

वैश्वीकरण ने ग्रामीण शिक्षा को नकारात्मक रूप से भी प्रभावित किया है। वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप ग्रामीण गरीबी में वृद्धि देखी जा रही है, जबकि शिक्षा के बाजारीकरण के कारण तकनीकी एवं व्यावसायिक शिक्षा महंगी हो रही है। फलतः ग्रामीण छात्र गुणवत्तापूर्ण शिक्षा से वंचित हो रहे हैं एवं ग्रामीण नगरीय शैक्षिक असमानता में वृद्धि हो रही है।

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप आधुनिक अंग्रेजी शिक्षा के महत्व में वृद्धि हुई है, जबकि ग्रामीण क्षेत्र में अभी भी देशी भाषा में शिक्षा का प्रचलन है। फलतः ग्रामीण क्षेत्र की शिक्षा के महत्व में ह्रास हुआ है तथा इसे अनुपयोगी समझा जा रहा है। वैश्वीकरण का भारतीय शिक्षा व्यवस्था पर उपरोक्त क्षेत्रवार प्रभावों के अतिरिक्त कई अन्य प्रभावों को भी हम निम्न रूपों में चर्चा कर सकते हैं-

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप वैश्विक संस्थाओं (विश्व बैंक, यूनेस्को, यूनिसेफ आदि) द्वारा शिक्षा के प्रचार-प्रसार हेतु अनुदान और विभिन्न प्रयासों में तेजी आती है। इसके प्रभावस्वरूप राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय स्तर पर सरकार द्वारा विभिन्न शिक्षण कार्यक्रमों का निर्माण तथा स्वयंसेवी संस्थाओं (Voluntary Organization) द्वारा भी इस दिशा में सहयोग प्राप्त होता है। फलतः शिक्षा के स्तर में सुधार और शैक्षिक असमानता में कमी आती है।

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप सूचना एवं संचार साधनों का तीव्र प्रसार हुआ तथा शिक्षा व्यवस्था द्वारा सूचना एवं संचार के साधनों का भरपूर प्रयोग किया जा रहा है (Internet, CD, DVD, TV)। फलतः शिक्षा की सर्वसुलभता हुई और शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार हुआ। परन्तु इसके नकारात्मक प्रभाव भी हुए तथा ग्रामीण क्षेत्रों के बच्चों, जिनकी सूचना एवं संचार साधनों तक पहुँच कम है। शहरी बच्चों से प्रतियोगिता में पिछड़ रहे हैं।

शिक्षा का निजीकरण एवं बाजारीकरण के परिणामस्वरूप अब बाजार की आवश्यकताओं को देखते हुए पाठ्यक्रम का निर्माण हो रहा है, फलतः भारतीय संस्कृति को संपोषित करने वाली मूल्यपरक शिक्षा पाठ्यक्रम से बाहर हो रही है।

भारतीय लोकतंत्र पर वैश्वीकरण के प्रभाव
(Effects of Globalization on Indian Democracy)

लोकतंत्र, स्वतंत्रता, समानता एवं सामाजिक न्याय के मूल्यों पर आधारित एक राजनीतिक व्यवस्था है, जहाँ जनता का लिए, जनता के द्वारा शासन किया जाता है। भारतीय लोकतंत्र पर वैश्वीकरण के प्रभावों को स्पष्ट करने हेतु वैश्वीकरण से पूर्व की भारतीय लोकतंत्र की स्थिति को जानना आवश्यक हो जाता है।

परम्परागत रूप से भारतीय राजनीति में उच्च जातियों का वर्चस्व रहा है तथा जातिवाद राजनीति में हावी रहा है। पितृसत्तात्मक व्यवस्था (Patriarchal System) के कारण महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता कम रही है। गरीबी एवं आर्थिक विषमता के कारण गरीब एवं वंचित वर्गों की भी राजनीतिक सहभागिता कम रही है। अशिक्षा एवं जागरूकता के अभाव के कारण राजनीतिक शक्तियों का कुछ लोगों के हित में प्रयोग होता रहा है तथा राजनीति में वंशवाद व भाई-भतीजावाद हावी रहा है। धार्मिक रूढ़ियों एवं अंधविश्वास के प्रचलन के कारण धर्म के नाम पर मतों का ध्रुवीकरण हो रहा था तथा राजनीति में अपराधियों की सक्रियता बढ़ रही थी।

भारतीय लोकतंत्र के उपरोक्त चरित्र को वैश्वीकरण ने व्यापक रूप से प्रभावित किया है। भारतीय लोकतंत्र पर वैश्वीकरण का मिला जुला प्रभाव रहा है।

सर्वप्रथम हम वैश्वीकरण के भारतीय लोकतंत्र पर पड़ने वाले सकारात्मक प्रभावों की चर्चा करते हैं। वैश्वीकरण के प्रभाव में आर्थिक सुधार तीव्र हुए, जिससे औद्योगिक एवं सेवा क्षेत्र का विकास हुआ एवं रोजगार के नए अवसर सृजित हुए। फलतः निर्धनता में कमी आयी एवं निम्न मध्यम वर्ग की राजनीतिक सहभागिता में वृद्धि हुई, जिससे लोकतंत्र मजबूत हुआ। वैश्वीकरण ने संचार क्रांति का विकास किया है। आज अधिकतर लोग मोबाइल, फेसबुक, ट्विटर आदि से परिचित हो गए हैं। शिक्षा का भी तीव्र प्रसार हुआ है। फलतः राजनीतिक जागरूकता में वृद्धि हुई है तथा सीमांत समूहों की राजनीतिक सहभागिता में वृद्धि हुई है, जिससे लोकतंत्र मजबूत हुआ है।

वैश्वीकरण ने जिस पहचान के संकट को उत्पन्न किया है, इससे नृजातीय तत्वों (Ethnic Element) के महत्व में वृद्धि हुई है। फलतः विभिन्न नृजातीय तत्वों के प्रतिनिधि के रूप में विभिन्न क्षेत्रीय दलों का उद्भव एवं विकास हुआ है। इस प्रक्रिया में शक्ति का विभिन्न नृजातीय समूहों एवं क्षेत्रीय समूहों में विकेंद्रीकरण हुआ है, जिससे लोकतंत्र मजबूत हुआ है।

वैश्वीकरण की प्रक्रिया में महिलाओं को रोजगार के नए अवसर उपलब्ध हुए तथा लिंग समानता के मूल्यों का प्रसार तीव्र हुआ है। फलतः महिला आन्दोलनों का प्रसार हुआ है एवं महिलाओं की राजनीतिक जागरूकता में वृद्धि हुई है, जिससे महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता बढ़ी है एवं लोकतंत्र मजबूत हुआ है।

वैश्वीकरण ने संचार क्रांति एवं शिक्षा में प्रसार के द्वारा राजनीतिक जागरूकता में वृद्धि की है, जिससे राजनीति में भ्रष्टाचार, जातिवाद एवं परिवारवाद की धारणा कमजोर हुई है तथा सामान्य जन की राजनीतिक सहभागिता में वृद्धि हुई है। उदाहरण के रूप में दिल्ली विधानसभा चुनावों में आम आदमी पार्टी के उभार को देखा जा सकता है। इस प्रक्रिया ने लोकतंत्र को मजबूत किया है।

वैश्वीकरण ने शिक्षा एवं तकनीकी ज्ञान का प्रसार किया है जिससे अंधविश्वास एवं रूढ़िवाद कमजोर हुआ है। फलतः धार्मिक

आधार पर मतों के ध्रुवीकरण की प्रक्रिया कमजोर हुई और तार्किक आधार पर मतदान की प्रक्रिया का विकास हुआ है। परिणामस्वरूप लोकतंत्र मजबूत हुआ है।

वैश्वीकरण ने संचार साधनों का तीव्र विकास कर राजनीतिक जागरूकता का प्रसार किया है, जिससे क्षेत्रीय समस्याओं की राष्ट्रीय स्तर पर पहचान संभव हुई है। इन क्षेत्रीय हितों के राष्ट्रीयकरण से लोकतंत्र मजबूत हुआ है।

वैश्वीकरण ने संचार क्रांति एवं शिक्षा आदि का प्रसार किया है, जिसके द्वारा तार्किक एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण तथा आधुनिकता के मूल्यों का प्रसार हुआ है। इस प्रक्रिया में दबाव समूहों एवं सिविल सोसायटी का उद्भव एवं विकास भी तीव्र हुआ है, जिनके माध्यम से क्षेत्रीय एवं राष्ट्रीय जन चेतना (Public Consciousness) का विकास हुआ है तथा शक्ति का विकेंद्रीकरण एवं राजनीतिक सहभागिता में वृद्धि हो रही है। इसने लोकतंत्र को मजबूती प्रदान की।

वैश्वीकरण ने लोगों की गतिशीलता को तीव्र किया है, जिससे अप्रवासी भारतीयों की संख्या में वृद्धि हुई है। अब अप्रवासी भारतीयों को भी मतदान का अधिकार एवं विभिन्न सुविधाएँ उपलब्ध कराई जा रही हैं, जिससे अप्रवासी भारतीयों की राजनीतिक सहभागिता संभव हुई है। इस प्रक्रिया ने लोकतंत्र को मजबूती प्रदान की है।

वैश्वीकरण ने व्यक्तिवाद की भावना का विकास किया है तथा स्थानीय गतिशीलता में भी वृद्धि की है। इस प्रक्रिया में संयुक्त परिवार प्रणाली कमजोर हुई है तथा एकल परिवार प्रणाली मजबूत हुई है। फलतः वोटों का विध्रुवीकरण हुआ है एवं एकल राजनीतिक दलों का प्रभुत्व कमजोर हुआ है। इस प्रक्रिया ने लोकतंत्र को मजबूती प्रदान की है।

वैश्वीकरण ने संचार साधनों का विकास कर इंटरनेट वोटिंग प्रणाली जैसी व्यवस्था का विकास किया है। (गुजरात निकाय चुनाव का उदाहरण) इससे वोटिंग के नवीन विकल्प उपलब्ध हुए हैं, जिससे वोटिंग प्रतिशत में वृद्धि हुई है एवं इससे राजनीतिक सहभागिता में वृद्धि संभव हुई है। इससे लोकतंत्र मजबूत हुआ है।

वैश्वीकरण का भारतीय लोकतंत्र पर उपरोक्त सकारात्मक प्रभावों की चर्चा के पश्चात् अब हम इसके नकारात्मक प्रभावों की चर्चा प्रारम्भ करते हैं। वैश्वीकरण की प्रक्रिया में लोक कल्याणकारी राज्य कमजोर हुआ है। इससे सीमांत व्यक्ति (Marginal Man) की स्थिति और कमजोर हुई है, फलतः इनकी राजनीतिक सहभागिता में भी कमी आयी है, जिससे लोकतंत्र कमजोर हुआ है।

वैश्वीकरण ने पूंजीवादी अर्थव्यवस्था को प्रोत्साहित किया है। इसके तहत बड़े औद्योगिक घरानों के अनुकूल नीतियों का निर्माण किया जा रहा है एवं निम्न वर्गीय समूहों के हितों की उपेक्षा की जा रही है। फलतः आर्थिक विषमता में वृद्धि हुई है एवं निम्न आर्थिक वर्ग की स्थिति और कमजोर हुई है। इससे इस वर्ग की राजनीतिक सहभागिता में कमी आयी है व लोकतंत्र कमजोर हुआ है। वैश्वीकरण ने वैश्विक अर्थव्यवस्था का विकास किया है। इससे प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के प्रवाह में तेजी आयी है। परन्तु यह अंर्तप्रवाह मुख्यतः विकसित क्षेत्रों में हुआ है जिससे क्षेत्रीय विषमता में वृद्धि हुई है एवं लोकतंत्र कमजोर हुआ है।

वैश्वीकरण के परिणामस्वरूप प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के अंर्तप्रवाह में तो तेजी आयी है पर यह मुख्यतः औद्योगिक व सेवा क्षेत्रों में हुआ है जो नगरों में अवस्थित है। फलतः ग्रामीण-नगरीय विषमता में वृद्धि हुई है। सरकार पर औद्योगिक घरानों एवं नगरीय अभिजनों के दबाव में वृद्धि हुई है फलतः सरकार की नीतियों में किसानों, कृषि श्रमिकों व ग्रामीण हितों की उपेक्षा की जा रही है। इस प्रक्रिया में समानता व सामाजिक न्याय का वाहक लोकतंत्र कमजोर हो रहा है।

वैश्वीकरण ने कुशल श्रमिकों के महत्व में वृद्धि की है इससे कुशल श्रमिकों की स्थिति बेहतर हुई है व अकुशल श्रमिकों की स्थिति खराब हुई है तथा उनका सीमान्तीकरण हुआ है साथ ही राज्य के कल्याणकारी योजनाओं में कटौती हो रही है जिससे इन सीमांत श्रमिकों की स्थिति और बदतर हुई है, फलतः इनका राजनीति से अलगाव और नक्सलीकरण व अपराधीकरण हो रहा है जो लोकतंत्र को कमजोर कर रहा है।

वैश्वीकरण के इस युग में राजनीतिक निर्णयों पर विकसित राष्ट्रों के प्रभाव में वृद्धि हुई है जिससे एक राष्ट्र के रूप में भारत की संप्रभुता कमजोर हुई है तथा सरकारी नीतियों में लोकहितों की उपेक्षा भी की जा रही जो लोकतंत्र को कमजोर कर रहें है। वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप भारत पर वैश्विक संगठनों के दबाव में वृद्धि हुई है, परिणामस्वरूप राष्ट्रीय नीतियों का निर्माण वैश्विक परिप्रेक्ष्य में प्रारम्भ हुआ है जिससे राष्ट्रीय हितों की उपेक्षा हो रही है व लोकतंत्र कमजोर हुआ है।

वैश्वीकरणजनित पहचान के संकट के सामाधान की प्रक्रिया में नृजातीय तत्व के रूप में धर्म के महत्व में वृद्धि हुई है। इस प्रक्रिया में धार्मिक पुनः प्रवर्तनवाद (Religious Revivalism) एवं धार्मिक रूढ़िवाद (Religious Fundamentalism) का विकास हुआ जिससे राजनीति में धर्म के आधार पर वोटों के ध्रुवीकरण का प्रयास तीव्र हुआ व धर्मनिरपेक्षीकरण की प्रक्रिया कमजोर हुई, फलतः लोकतंत्र भी कमजोर हुआ।

वैश्वीकरण ने नगरों में रोजगार के नवीन अवसर उत्पन्न किए जिससे ग्रामीण इलाकों से नगरों की ओर प्रवास तीव्र हुआ। परन्तु अधिकतर प्रवासी ग्रामीण नगरों में मतदाता सूची में सूचीबद्ध होने से वंचित रह जाते है तथा अपने मूल निवास में भी अनुपस्थिति के कारण मतदान नहीं कर पाते, फलतः राजनीतिक सहभागिता कमजोर हुई है जिससे लोकतंत्र भी कमजोर हुआ है।

वैश्वीकरण ने संचार क्रांति का प्रसार किया है, शिक्षा का प्रसार किया है तथा तार्किक एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास

किया है जिससे जातीय, धार्मिक व परिवार आदि के आधार पर वोटों का ध्रुवीकरण कमजोर हुआ है तथा मतों का विभाजन हुआ है परिणामस्वरूप सरकार बनाने हेतु स्पष्ट बहुमत का अभाव हुआ है तथा गठबंधन सरकारों का प्रचलन बढ़ा है जिससे सरकारों का स्थायित्व दुष्प्रभावित हुआ है एवं भ्रष्टाचार का प्रसार हुआ है। फलत: सरकार में जनता का विश्वास कमजोर हुआ है। इसने लोकतंत्र को भी कमजोर किया है।

भारतीय राष्ट्र राज्य पर वैश्वीकरण के प्रभाव (Effects of Globalization on the Indian Nation State)

किसी राज्य के लोगों में राज्य के आधार पर विद्यमान मनोवैज्ञानिक जुड़ाव या 'हम' की भावना को 'राष्ट्र' की संज्ञा दी जाती है और राष्ट्र की भावना से युक्त राज्य को राष्ट्र राज्य कहा जाता है।

वैश्वीकरण का भारतीय राष्ट्र राज्य पर प्रभाव का विवेचन हेतु वैश्वीकरण से पूर्व राष्ट्र राज्य के रूप में भारत की स्थिति की चर्चा करना आवश्यक हो जाता है।

अंग्रेजी शासन से पूर्व भारत कई छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त था। राज्य व जनता के मध्य हम की भावना से युक्त मनोवैज्ञानिक लगाव का अभाव था फलत: भारत में राष्ट्र राज्य का विकास नहीं हो पाया था। अंग्रेजी शासन काल में भारत में संचार एवं यातायात के साधनों का विकास हुआ अंग्रेजों ने सम्पूर्ण भारत में आधुनिक प्रशासनिक व्यवस्था को लागू करके भारत को एक राज्य के रूप में संगठित किया। अंग्रेजों के विरूद्ध उत्पन्न स्वतंत्रता आन्दोलन की प्रक्रिया में तथा आधुनिक शिक्षा आदि से उत्पन्न राजनीतिक जागरूकता के परिणामस्वरूप भारत के लोगों में राष्ट्र की भावना का विकास हुआ। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् एक संघ के रूप में भारतीय राज्य की स्थापना हुई। एक संविधान, एक कानून, एक सरकार, एकल नागरिकता, लोकतांत्रिक समाजवादी समाज का लक्ष्य और इस दिशा में किए गए प्रयासों के फलस्वरूप एक राष्ट्र राज्य के रूप में भारत की निरंतरता कायम हुई।

वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने भारतीय राष्ट्र राज्य को व्यापक रूप से प्रभावित किया। वैश्वीकरण का यह प्रभाव जहाँ कई रूपों में सकारात्मक था वहीं कई क्षेत्रों में इसने भारतीय राष्ट्र राज्य को नकारात्मक रूप से भी प्रभावित किया है। सर्वप्रथम हम यहाँ वैश्वीकरण का भारतीय राष्ट्र राज्य पर पड़ने वाले सकारात्मक प्रभावों की चर्चा करते हैं।

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के अंतर्प्रवाह में वृद्धि हुई जिसने आर्थिक विकास के साथ-साथ औद्योगिक विकास को भी तीव्र किया तथा नगरीकरण में भी वृद्धि की। इस प्रक्रिया में क्षेत्रीय विविधताओं (Regional Diversity) एवं संस्कृतियों का एकीकरण हुआ, परिणामस्वरूप राष्ट्र-राज्य मजबूत हुआ।

वैश्वीकरण ने भारतीय राष्ट्र राज्य की आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ किया है। भारत की सुदृढ़ आर्थिक स्थिति ने राष्ट्रीय सुरक्षा एवं स्थायित्व को मजबूती प्रदान की है और इस प्रकार एक राष्ट्र राज्य के रूप में भारत को मजबूत किया है। वैश्वीकरण के परिणामस्वरूप जो आर्थिक विकास हुआ है उससे कमजोर समूह के लोगों की आर्थिक स्थिति में सुधार आया है। फलत: उनकी राजनीतिक जागरूकता एवं उनकी जनसहभागिता में वृद्धि हुई है जिससे लोकतंत्र एवं राष्ट्र राज्य मजबूत हुआ है।

वैश्वीकरण ने शिक्षा का प्रसार किया है तथा विचारों के अंतर्प्रवाह में वृद्धि की है जिससे लोकतांत्रिक मूल्यों का प्रसार हुआ है। फलत: जनचेतना का विकास हुआ है तथा लोगों में राजनीतिक जागरूकता का विकास हुआ है एवं उनकी राजनीतिक सहभागिता बढ़ी है जिसने भारतीय राष्ट्र राज्य को मजबूती प्रदान की है। वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने पहचान के संकट को उत्पन्न कर उसके सामाधान के रूप में नृजातीय पहचान (Ethnic Identity) के तत्वों के महत्व में वृद्धि की है। नृजातीय तत्वों के आधार पर विभिन्न प्रकार के दबाव समूहों एवं क्षेत्रीय दलों के महत्व में वृद्धि हुई है। फलत: केन्द्र की शक्ति का विकेन्द्रीकरण हुआ है एवं नीति निर्माण में विभिन्न दबाव समूहों एवं क्षेत्रीय दलों की भूमिका महत्वपूर्ण हो गयी है, जिससे क्षेत्रीय व सामुदायिक विषमता में कमी आयी है और इस आधार पर उभरने वाले असंतोषों में भी कमी हुई है, परिणामस्वरूप राष्ट्रवाद की भावना सुदृढ़ हुई है।

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप संचार व यातायात के साधनों का विकास हुआ है तथा रोजगार के नए अवसरों में वृद्धि हुई है। फलत: लोगों की गतिशीलता तीव्र हुई है तथा भारत के अन्दर विभिन्न संस्कृतियों एवं रीजि-रिवाज के अदान-प्रदान से सांस्कृतिक एकीकरण (Cultural Integration) की प्रक्रिया तीव्र हुई है जिसने लोगों में 'हम' की भावना का विकास कर राष्ट्र राज्य को मजबूती प्रदान की है।

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप संचार साधनों के विकास के साथ-साथ लोकतांत्रिक मूल्यों का प्रसार हुआ है। फलत: सिविल सोसायटी मजबूत हुआ है और विभिन्न जन आन्दोलनों का उद्भव एवं विकास हुआ है। परिणामस्वरूप राष्ट्रीय समस्याओं के समाधान हेतु राष्ट्रीय एकजुटता में वृद्धि हुई है और इस प्रकार राष्ट्र राज्य मजबूत हुआ है।

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप लोगों में अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता में वृद्धि हुई है फलत: मानवाधिकार, शोषण एवं सामाजिक अन्याय सम्बन्धी मुद्दों का वैश्विक मंच पर उठाया जाना संभव हुआ तथा इन समस्याओं के विरूद्ध राष्ट्रीय चेतना का विकास हुआ है। वैश्वीकरण का भारतीय राष्ट्र राज्य पर पड़ने वाले सकारात्मक प्रभावों की चर्चा के पश्चात् इसके नाकरात्मक प्रभावों की चर्चा भी आवश्यक हो जाती है।

वैश्वीकरण की प्रक्रिया में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के अंतर्प्रवाह में वृद्धि हुई है। परन्तु यह वृद्धि कुछ खास क्षेत्रों तक सीमित रही है (जैसे- गुजरात, महाराष्ट्र आदि)। प्रत्यक्ष विदेशी निवेश का कुछ सीमित क्षेत्रों में केन्द्रीकरण ने क्षेत्रीय असमानता में वृद्धि की है और क्षेत्रवादी प्रवृत्ति का विकास किया है परिणामस्वरूप राष्ट्र राज्य कमजोर हुआ है।

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप प्रत्यक्ष विदेशी निवेश में वृद्धि हुई जिससे जनजातीय क्षेत्रों में विभिन्न परियोजनाओं का निर्माण तेज हुआ। इस प्रक्रिया में इस क्षेत्र में प्राकृतिक संसाधनों का तीव्र दोहन प्रारम्भ हुआ एवं जनजातीय संस्कृति भी दुष्प्रभावित हुई। फलत: जनजातीय असंतोष में वृद्धि हुई परिणामस्वरूप विभिन्न क्षेत्रीय आन्दोलनों का उद्‌भव हुआ एवं नक्सलवाद जैसी समस्याओं का प्रसार हुआ फलत: लोकतांत्रिक विकास कमजोर हुआ एवं राष्ट्र राज्य भी कमजोर हुआ।

वैश्वीकरण ने वैश्विक स्तर पर आर्थिक एवं राजनीतिक एकीकरण की प्रक्रिया को तीव्र कर दिया है फलत: UNO, EU, ASEAN, SARC आदि संगठनों के महत्व में वृद्धि हुई है फलत: राष्ट्रवाद की जगह अंतर्राष्ट्रीयवाद (Internationalism) अधिक महत्वपूर्ण हो रहा है तथा इस प्रकार राष्ट्र राज्य कमजोर हुआ है।

वैश्वीकरण ने विश्व के राष्ट्रों के मध्य पारस्परिक अन्त:निर्भरता को बढ़ाया है तथा UNO, IMF, WB, WTO आदि के महत्व में वृद्धि की है। फलत: इन वैश्विक संस्थाओं के हस्तक्षेप में भी वृद्धि हुई है तथा भारत की नीतिगत स्वतंत्रता में कमी हुई है तथा राष्ट्र की संप्रभुता कमजोर हुई है। इस प्रक्रिया में राष्ट्र राज्य भी कमजोर हुआ है। वैश्वीकरण जनित पहचान के संकट के समाधान में नृजातीय पहचान के तत्वों के महत्व में वृद्धि हुई है फलत: क्षेत्रवाद, भाषावाद आदि प्रवृत्तियों का विकास हुआ है और विभिन्न अलगाववादी आंदोलनों (नागा, मिजो आदि) का उद्‌भव हुआ है जिससे राष्ट्र राज्य कमजोर हुआ है।

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप पाश्चात्य संस्कृति का प्रसार हुआ जिसने परंपरागत धार्मिक क्रिया कलापों पर नकारात्मक प्रभाव डाला है इसके प्रतिक्रिया स्वरूप धार्मिक रूढ़िवाद, धार्मिक कट्टरता एवं सम्प्रदायवाद का विकास हुआ जिसने राष्ट्र राज्य को कमजोर करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

वैश्वीकरण के इस दौर में वैश्विक गाँव की अवधारणा का विकास हुआ है तथा पश्चिमी संस्कृति के तीव्र प्रसार से वैश्विक सांस्कृतिक विविधता कमजोर हुई है। फलत: राष्ट्रीय पहचान भी कमजोर हुई है एवं इस तरह राष्ट्र राज्य भी कमजोर हुआ है।

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप संचार क्रांति के साथ साइबर वर्ल्ड का विकास हुआ है और लोगों की वास्तविक दुनिया से असामाजिक दुनिया की ओर उन्मुखता बढ़ी है। फलत: सामूहिकता (Collectiveness) कमजोर हुई है एवं व्यक्तिवाद की भावना के प्रसार ने 'हम' की भावना पर आधारित राष्ट्र राज्य को कमजोर किया है।

वैश्वीकरण के साथ विभिन्न प्रकार के उत्पाद एवं विभिन्न प्रकार की सेवाओं के क्षेत्र में विदेशी कम्पनियों का आगमन हुआ है। भारत के लोगों में भारतीय उद्योगपतियों द्वारा उत्पादित समान और भारत सरकार द्वारा दी जा रही सेवाओं के प्रति लगाव में कमी हुई है अर्थात् स्वदेशी उत्पादों के प्रति लगाव में कमी हुई है, फलत: इन आधार पर निर्मित परम्परागत राष्ट्रवाद (Traditional Nationalism) की भावना कमजोर हुई है और इस प्रकार राष्ट्र राज्य भी कमजोर हुआ है।

भारत के श्रमिक वर्ग पर वैश्वीकरण के प्रभाव
(Effects of Globalization on the Working Class of India)

वैश्वीकरण का भारतीय श्रमिक वर्ग पर प्रभाव जानने से पूर्व भारतीय श्रमिक वर्ग की संरचना को जानना आवश्यक हो जाता है। भारतीय श्रमिक वर्ग को मुख्यत: दो भागों में बाँटा जा सकता है:-

1. संगठित / औपचारिक क्षेत्र के श्रमिक
2. असंगठित / अनौपचारिक क्षेत्र के श्रमिक

संगठित या औपचारिक क्षेत्र से आशय ऐसे व्यावसायिक संस्था से है जहाँ सदस्यों के कार्यक्षेत्र और स्थिति को निश्चित करके उनके कार्यों, दायित्वों, अधिकारों तथा आपसी सम्बन्धों को स्पष्ट कर दिया जाता है।

इसके अंतर्गत उद्योग धंधे तथा गैर औद्योगिक क्षेत्र के नियमित श्रमिक आते हैं। असंगठित या अनौपचारिक क्षेत्र वे हैं जिनका निर्माण बिना किसी पूर्व योजना के होता है तथा जहाँ श्रमिकों के वेतन, रोजगार की दशाएं, सुरक्षा उत्तरदायित्वों आदि का स्पष्ट प्रावधान नहीं होता है। इस क्षेत्र के श्रमिक किसी श्रम संघ से भी संबंधित नहीं होते हैं।

अनौपचारिक क्षेत्र के अंतर्गत औद्योगिक क्षेत्र में ठेका श्रमिक, अनियमित तथा लघु उद्योग के श्रमिक आते हैं। कृषि श्रमिक तथा दिहाड़ी मजदूर भी इसी के अन्तर्गत रखें जाते हैं। भारत में श्रमिक वर्ग की प्रकृति को जानने के पश्चात् भारत में आर्थिक सुधार एवं वैश्वीकरण के लक्षणों से परिचित होना आवश्यक हो जाता है।

इसके लक्षणों के रूप में हम देख सकते हैं कि भारत में आर्थिक गतिविधियों के नियंत्रण कर्त्ता के रूप में राज्य के महत्व में कमी आ जाती है। निजीकरण अर्थात निजी उद्यमियों को प्रोत्साहन दिया जाता है। व्यापार के क्षेत्र में आयात नीति को प्रोत्साहन दिया जाता है। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को आर्थिक गतिविधियों में व्यापक रूप से महत्व प्राप्त होता है। एक लोक कल्याणकारी राज्य के कार्य क्षेत्र में कमी होती है तथा सार्वजनिक कंपनियों में सरकार द्वारा निजी क्षेत्र के निवेश को मौका दिया जाता है।

उपरोक्त विवेचन के पश्चात् आर्थिक सुधार एवं वैश्वीकरण का भारतीय श्रमिक वर्ग पर प्रभाव का विश्लेषण आवश्यक हो जाता है। वैश्वीकरण ने भारतीय समाज के हर वर्ग को किसी न किसी रूप में प्रभावित किया। भारत का श्रमिक वर्ग जो अपवर्जन का शिकार होकर

कई समस्याओं से जूझ रहा था उस पर वैश्वीकरण का मिला-जुला प्रभाव रहा। इस नवीन प्रक्रिया ने जहां इस वर्ग को कई रूपों में फायदा पहुँचाया वहीं कई क्षेत्रों में इस प्रक्रिया के परिणामस्वरूप नुकसान भी उठाना पड़ा है।

सर्वप्रथम हम वैश्वीकरण की प्रक्रिया के फलस्वरूप श्रमिक वर्ग पर पड़ने वाले सकारात्मक प्रभावों की चर्चा करते है। वैश्वीकरण की प्रक्रिया के तहत आर्थिक क्षेत्र में निजी कंपनियों का प्रवेश तीव्रता से हुआ फलतः रोजगार के नवीन अवसरों का विकास हुआ रोजगार के नवीन अवसर सर्वाधिक सेवा क्षेत्र में उपलब्ध हुए परिणामस्वरूप इस क्षेत्र में श्रमिकों के अनुपात में वृद्धि हुई। इस प्रक्रिया ने श्रम के नवीन क्षेत्रों का प्रसार किया तथा फैशनेबल श्रम में वृद्धि हुई जिससे अभिजन श्रमिकों (Elite Worker) का विकास हुआ तथा श्रमिकों की सामाजिक आर्थिक दशाओं में सुधार हुआ। रोजगार के नवीन अवसरों के विकास से गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले श्रमिकों के जीवन स्तर में सुधार आया।

वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने उत्पादन में आधुनिक प्रौद्योगिकी के प्रचलन में वृद्धि की तथा इस प्रौद्योगिकी के प्रयोग हेतु कुशल श्रमिकों के अनुपात में वृद्धि हुई। कुशल श्रमिक के रूप में श्रमिकों में मध्यम वर्ग का विकास हुआ। इनके बढ़े हुए वेतन से इनके जीवन स्तर में सुधार हुआ तथा इनके द्वारा उपयोगितावादी संस्कृति (Utilitarian Culture) का भी प्रसार हुआ।

श्रम के विविधीकरण (Diversification of Labor) के फलस्वरूप स्त्री श्रमिकों के अनुपात में भी वृद्धि हुई, फलतः स्त्रियों की प्रस्थिति में सुधार हुआ एवं इनकी आत्मनिर्भरता में वृद्धि हुई। वैश्वीकरण ने श्रम के अंतर्राष्ट्रीयकरण में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, फलतः भारतीय श्रमिकों विशेषकर सेवा क्षेत्र के श्रमिकों ने विश्व के विकसित देशों में अपनी सशक्त उपस्थिति दर्ज कर भारतीय प्रतिभा का लोहा मनवाया।

जहाँ श्रमिक वर्ग पर वैश्वीकरण के उपरोक्त सकारात्मक प्रभाव दृष्टिगोचर हुए वहीं इसके कई नकारात्मक प्रभाव भी दृष्टिगोचर हुए जिन्हें हम निम्न रूपों में देख सकते हैं-

वैश्वीकरण के प्रभाव स्वरूप आर्थिक क्षेत्र में राज्य के हस्तक्षेप में कमी आई। श्रम कानूनों में ढील दी गयी। रोजगार के नवीन अवसरों का विकास तो हुआ परन्तु यह विकास मुख्यतः असंगठित क्षेत्र में हुआ और संगठित क्षेत्र में रोजगार के अवसरों में कमी आयी। आज असंगठित क्षेत्र में कार्यरत श्रमिक कुल श्रमिकों का 93% है जबकि संगठित क्षेत्र में रोजगार वृद्धि दर 1983-94 के मध्य जो 1.2% यह 1994-2004 में घटकर 0.53% हो गयी। संगठित क्षेत्र में भी मुख्यतः सार्वजनिक क्षेत्र में रोजगार में कमी विशेष रूप से देखी गयी। 1983-94 में सार्वजनिक क्षेत्र में रोजगार वृद्धि दर जहाँ 1.52% थी वहीं 1994-2004 में यह घटकर 0.03% हो गयी है।

जहाँ रोजगार वृद्धि मुख्यतः असंगठित क्षेत्र में हुई वहीं राज्य के हस्तक्षेप में कमी और श्रम कानूनों में ढील के कारण असंगठित क्षेत्र के श्रमिकों को रोजगार सुरक्षा का अभाव, न्यूनतम वेतन सामाजिक सुरक्षा का अभाव एवं कई रूपों में शोषण का सामना करना पड़ा, फलतः इनके जीवन स्तर में गिरावट संभव हुई।

संगठित क्षेत्र के श्रमिकों पर भी वैश्वीकरण के नकारात्मक प्रभाव दृष्टव्य हुए। निजी एवं विदेशी कंपनियों को प्रोत्साहन देने के लिए राज्य हस्तक्षेप में कमी हुई। श्रम मानकों में ढील दी गयी तथा वैश्विक प्रतिस्पर्धा का सामना करने हेतु श्रमिकों की कल्याणकारी सुविधाओं में कटौती की गयी, वेतन में न्यूनतम वृद्धि हुई, स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति के प्रोग्राम के तहत श्रमिकों के छँटनी एवं इनका ठेका श्रमिक एवं अनियमित श्रमिक के रूप में रूपांतरण हुआ।

वैश्वीकरण ने आधुनिक प्रौद्योगिकी के प्रचलन में वृद्धि कर अकुशल श्रमिकों के महत्व में कमी ला दी। इनका अनियमित एवं ठेका श्रमिक के रूप में रूपांतरण हो गया। इनके रोजगार के अवसर छिन गए, फलतः इनका सीमांतीकरण हो गया एवं इनके जीवन स्तर में गिरावट देखी गयी।

श्रमिक जनसंख्या में कृषि श्रमिकों की जनसंख्या में वृद्धि हुई 1991 में जहाँ इनकी जनसंख्या 7.3 करोड़ थी वहीं 2001 में बढ़कर 10.74 करोड़ तथा 2010 में लगभग 24 करोड़ हो गयी। कृषि क्षेत्र में विकास दर निम्न रहने के कारण मुद्रा स्फीति के सापेक्ष इनकी मजदूरी में कमी आयी। फलतः उनका बाहर की ओर पलायन हुआ जिससे अतिनगरीकरण (Overurbanization) जैसी समस्याओं में वृद्धि हुई तथा जो श्रमिक प्रवास नहीं कर पाए उनका रूझान असामाजिक गतिविधियों की ओर हुआ फलतः नक्सलीकरण जैसी प्रक्रिया में वृद्धि देखी गयी।

वैश्वीकरण के प्रभाव में शिक्षा क्षेत्र का तेजी से निजीकरण हुआ तथा यह पहले की तुलना में काफी महंगी हो गयी। फलतः निम्न श्रमिक वर्ग के बच्चे व्यावसायिक व तकनीकी शिक्षा से वंचित हो गए और इनका अकुशल श्रमिक के रूप में रूपांतरण हुआ फलतः इनके जीवन स्तर में सुधार नहीं हो पाया तथा बेरोजगारी में भी वृद्धि हुई।

वैश्वीकरण के प्रभाव स्वरूप उपभोक्तावादी संस्कृति में प्रसार हुआ जिसका प्रभाव श्रमिक वर्ग पर भी पड़ा। श्रमिकों के महत्वाकांक्षा में वृद्धि हुई एवं इनके तुलनात्मक अभावबोध में भी वृद्धि हुई। अपनी महत्वाकांक्षा की पूर्ति हेतु इन्हें तीव्र प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ा तथा इनके कार्य बोझ में वृद्धि हुई फलतः श्रमिक वर्ग के तनाव व कुंठा में वृद्धि हुई, इनमें शराबखोरी में वृद्धि हुई तथा इनमें मानसिक रोग एवं आत्महत्या की दर में भी वृद्धि हुई।

उपरोक्त विवेचन वैश्वीकरण का भारतीय श्रमिक वर्ग पर पड़ने वाले प्रभाव को स्पष्ट करते हैं। परन्तु भारतीय श्रमिक वर्ग की संरचना विविधीकृत है जिससे इनकी प्रकृति व कार्य दशाएँ व स्थितियाँ भी

भिन्न प्रकार की है। अतः वैश्वीकरण का श्रमिक वर्ग पर पड़ने वाले प्रभाव का बेहतर विश्लेषण हेतु श्रमिकों के विभिन्न वर्ग पर पड़ने वाले इसके विशिष्ट प्रभावों की चर्चा आवश्यक हो जाती है।

भारत के कृषि श्रमिकों पर वैश्वीकरण के प्रभाव (Effects of Globalization on the Agricultural Workers in India)

कृषक श्रमिकों पर भी वैश्वीकरण का मिला जुला असर रहा, सबसे पहले हम इसके सकारात्मक प्रभावों की चर्चा करते हैं। वैश्वीकरण के प्रभाव स्वरूप सभी क्षेत्रों में प्रौद्योगिकी व तकनीकी का उन्नयन हुआ। कृषि क्षेत्र भी इससे अछूता नहीं रहा फलतः कृषि का भी आधुनिकीकरण हुआ जिससे कृषि क्षेत्र में उत्पादन में वृद्धि हुई जिसका लाभ कृषि श्रमिकों को भी हुआ तथा उनकी मजदूरी दर में वृद्धि हुई जिससे उनके जीवन स्तर में सुधार हुआ।

वैश्वीकरण ने बाजार अर्थव्यवस्था को प्रभावी बनाया फलतः कृषि का भी वाणिज्यीकरण हुआ एवं नकदी फसलों के उत्पादन के प्रचलन में वृद्धि हुई जिससे किसानों की आय में वृद्धि हुई जिसका लाभ कृषि श्रमिकों को भी हुआ जिससे उनके जीवन स्तर में सुधार हुआ। वैश्वीकरण ने संचार क्रांति को भी संभव बनाया जिसका असर गाँवों में भी हुआ। गाँवों में आधुनिक संचार साधनों के प्रचलन में वृद्धि से कृषि मजदूरों की सोच, जीवन शैली एवं उपभोग की प्रकृति का भी आधुनिकीकरण हुआ इस प्रक्रिया में कृषि श्रमिकों में जागरूकता का विकास हुआ फलतः ग्रामीण शक्ति संरचना एवं राजनीतिक व्यवस्था में कृषि श्रमिकों की भागीदारी में वृद्धि हुई और उनका राजनीतिक सशक्तिकरण हुआ।

कृषि में आधुनिकीकरण ने कृषि मजदूरों हेतु रोजगार के नवीन अवसरों को भी उत्पन्न किया। जिससे उनकी आय में वृद्धि हुई। परन्तु वैश्वीकरण का कृषि श्रमिकों पर उपरोक्त प्रभाव समरूप प्रकृति के नहीं थे बल्कि यह सकारात्मक प्रभाव भी क्षेत्रीय असंतुलन से परिपूर्ण था अर्थात् यह प्रभाव पंजाब, हरियाणा, महाराष्ट्र और अन्य विकसित राज्यों में अधिक दृष्टिगोचर हुए। कृषि श्रमिकों को वैश्वीकरण ने नकारात्मक रूप से भी प्रभावित किया। यंत्रीकरण में वृद्धि ने कृषि श्रमिकों में बेरोजगारी की वृद्धि कर उनको प्रवास हेतु मजबूर किया तथा उन्हें शहरों में अमानवीय दशाओं का सामना करना पड़ा।

वैश्वीकरण ने जिस उपभोक्तावादी संस्कृति का गाँवों तक प्रसार किया उससे कृषि श्रमिक भी प्रभावित हुए तथा उनके उपभोग स्तर में वृद्धि हुई परन्तु मुद्रास्फीति की तुलना में उनके आय स्तर में वृद्धि नहीं हुई फलतः उनके ऋणग्रस्तता में वृद्धि हुई, आत्महत्या के दर में वृद्धि हुई तथा नक्सली विचारधारा के बहकावे में आकर इनका नक्सलीकरण भी हुआ।

जनजातीय क्षेत्रों में नवीन उद्योगों की स्थापना व खनन प्रोजेक्टों तथा आधारित विकास परियोजनाओं के कारण जनजातियों का विस्थापन हुआ तथा इनकी भूमि का भी हस्तांतरण हुआ परिणामस्वरूप इनका कृषि श्रमिक के रूप में रूपांतरण हुआ। आधुनिक उद्योगों में छँटनी, लघु एवं कुटीर उद्योगों की उपेक्षा, पूंजीवादी खेती का प्रचलन आदि कारणों से कृषि श्रमिकों की संख्या में वृद्धि हुई है। कृषि श्रमिक वर्ग पर वैश्वीकरण का उपरोक्त नकारात्मक प्रभाव भी क्षेत्रीय असंतुलन लिए हुए हैं। बिहार, उड़ीसा, झारखंड, उत्तर प्रदेश तथा मध्य प्रदेश जैसे पिछड़े राज्यों में यह असर ज्यादा दिखाई पड़ता है।

भारत के औद्योगिक श्रमिकों पर वैश्वीकरण के प्रभाव (Effects of Globalization on Industrial Worker in India)

वैश्वीकरण ने भारतीय उद्योग धंधों को व्यापक रूप से प्रभावित किया है परिणामस्वरूप औद्योगिक श्रमिक भी इससे व्यापक रूप से प्रभावित हुए हैं। औद्योगिक श्रमिकों को मोटे तौर पर दो भागों में बाँटकर देखा जाता है। पहले के अन्तर्गत अनौपचारिक या असंगठित क्षेत्र के श्रमिक आते हैं जबकि दूसरे भाग के अंतर्गत संगठित या औपचारिक क्षेत्र के श्रमिक आते हैं।

अनौपचारिक या असंगठित क्षेत्र में कार्यरत श्रमिकों पर वैश्वीकरण के सकारात्मक प्रभावों की चर्चा की जाय तो इस क्षेत्र में निजी उद्यमियों के प्रवेश तथा विकेन्द्रित उत्पादन को बढावा मिला फलतः लघु स्तरीय उद्योगों की संख्या में वृद्धि हुई है तथा रोजगार के विभिन्न क्षेत्रों का उदय हुआ जिससे असंगठित/अनौपचारिक क्षेत्रों में रोजगार के अवसरों में वृद्धि हुई। इस क्षेत्र में रोजगार के अवसरों में वृद्धि होने से इस क्षेत्र में श्रमिकों की संख्या में वृद्धि हुई है। इस क्षेत्र में रोजगार के अवसरों में विस्तार ने श्रमिक वर्ग के आय स्तर को बढ़ाकर उनके जीवन स्तर में सुधार किया है।

अनौपचारिक क्षेत्र के विस्तार ने महिलाओं को रोजगार के अवसर उपलब्ध कराने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। साथ ही यह क्षेत्र उन संगठित क्षेत्र के श्रमिकों को भी रोजगार के साधन उपलब्ध करवाने में महत्वपूर्ण साबित हुआ है जो वैश्वीकरण जनित तीव्र प्रतिस्पर्धा के फलस्वरूप छँटनी ग्रस्त हो जाते हैं। वैश्वीकरण ने अनौपचारिक क्षेत्र को नकारात्मक रूप में भी प्रभावित किया, वैश्वीकरण के प्रभाव में लोक कल्याणकारी राज्य के कार्यक्षेत्र में कमी हुई है तथा श्रम एवं सामाजिक सुरक्षा सम्बन्धी कानूनों में ढिलाई हुई है परिणामस्वरूप अनौपचारिक क्षेत्र में काम करने वाले श्रमिकों के शोषण में वृद्धि हुई है एवं इनका सीमांतीकरण हुआ है।

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप अनौपचिरिक क्षेत्र के श्रमिकों की महत्वाकांक्षा में वृद्धि हुई है, जबकि आय स्तर में तुलनात्मक रूप से वृद्धि नहीं हो पायी फलतः इनके तुलनात्मक अभावबोध (Relative Diprivation) में वृद्धि हुई, परिणामस्वरूप इनमें कुंठा, शराबखोरी, मानसिक रोगियों की संख्या में वृद्धि हुई है। अनौपचारिक क्षेत्रक ने महिला एवं बाल श्रमिकों को रोजगार के अवसर तो उपलब्ध कराए परन्तु उन्हें न्यूनतम वेतन व सुविधाएँ दी गयी व उनके श्रम का शोषण किया जा रहा है।

वैश्वीकरण ने औपचारिक क्षेत्र के श्रमिकों को भी सकारात्मक व नकारात्मक दोनों ही रूपों में प्रभावित किया है। जहाँ तक इस क्षेत्र के श्रमिकों पर वैश्वीकरण के सकारात्मक प्रभावों की बात है तो वैश्वीकरण के परिणामस्वरूप औपचारिक क्षेत्र का विकास हुआ है। श्रमिकों की कार्य संस्कृति (Work Culture) में सुधार हुआ है तथा उनकी कुशलता में वृद्धि हुई है। फलतः इस क्षेत्र के श्रमिकों की आय में वृद्धि हुई है एवं उनके जीवन स्तर में सुधार हुआ है। औपचारिक क्षेत्र में भी महिला श्रमिकों के अनुपात में वृद्धि हुई है फलतः इनकी आत्मनिर्भरता में वृद्धि हो रही है एवं इनकी प्रस्थिति में सुधार हो रहा है।

परन्तु वैश्वीकरण ने औपचारिक क्षेत्र के श्रमिकों को नकारात्मक रूप में भी प्रभावित किया है। वैश्वीकरण के परिणामस्वरूप प्रतिस्पर्धा में बने रहने व उत्पाद की गुणवत्ता में सुधार के दबाव के कारण तीव्र मशीनीकरण एवं श्रमिकों की छँटनी हुई फलतः श्रमिकों की बेरोजगारी में वृद्धि हुई एवं इनका ठेका श्रमिक व अनियमित श्रमिक के रूप में रूपांतरण हुआ तथा औपचारिक क्षेत्र में कार्यरत श्रमिकों के अनुपात में कमी हुई।

वैश्वीकरण के दबाव में कल्याणकारी राज्य के महत्त्व में कमी हुई। फलतः श्रमिक संगठन कमजोर हुए तथा श्रमिकों की सामाजिक सुरक्षा दुष्प्रभावित हुई व उनकी स्थिति में गिरावट हुई। वैश्वीकरण के दौर में विश्व बाजार में अपने उत्पाद को प्रतिस्पर्धी बनाए रखने हेतु उत्पादकों को उत्पादन लागत में कमी लाने का दबाव है फलतः इस क्षेत्र के उत्पादकों ने श्रमिकों के कल्याणकारी सुविधाओं में कटौती करना शुरू कर दिया। जिसका दुष्प्रभाव इस क्षेत्र के श्रमिकों को झेलना पड़ रहा है तथा उनकी स्थिति में गिरावट हो रही है व उनके असंतोष में वृद्धि हो रही है।

वैश्वीकरण ने सभी क्षेत्रों के उपभोक्तावादी संस्कृति का प्रसार किया है। औपचारिक क्षेत्र के श्रमिक भी इससे अछूते नहीं हैं। उपभोक्तावादी संस्कृति के प्रसार ने इस क्षेत्र के श्रमिकों की महत्वाकांक्षा में वृद्धि की है, जिसकी प्राप्ति हेतु इनके कार्य बोझ में बढ़ोत्तरी हुई तथा नहीं प्राप्त होने की स्थिति में तुलनात्मक अभावबोध से ग्रस्त हो रहे हैं, फलतः इनके कुंठा व हताशा में वृद्धि हो रही है तथा इससे इनमें मानसिक रोगों तथा आत्महत्या की दर में वृद्धि हो रही है।

भारत की महिला श्रमिकों पर वैश्वीकरण के प्रभाव (Effects of Globalization on the Women Workers in India)

श्रमिक वर्ग में महिला श्रमिकों की अपनी विशिष्ट स्थिति है। चूंकि महिलाओं को भिन्न सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है अतः एक श्रमिक वर्ग के रूप में महिला श्रमिकों पर वैश्वीकरण के प्रभाव को स्वतंत्र रूप में जानना आवश्यक हो जाता है। अन्य क्षेत्रों की तरह महिला श्रमिकों पर भी वैश्वीकरण का मिला जुला प्रभाव दिखाई देता है। वैश्वीकरण ने महिला श्रमिक वर्ग को कई मामलों में जहाँ सकारात्मक रूप से प्रभावित कर उनकी स्थितियों में सुधार का वाहक बन गया है वहीं कई मामलों में वैश्वीकरण का महिला श्रमिकों पर नकारात्मक प्रभाव भी दिखाई दे रहा है।

महिला श्रमिकों पर वैश्वीकरण के प्रभावों की विवेचना के क्रम में हम सर्वप्रथम इसके सकारात्मक प्रभावों की चर्चा करते हैं। निजी एवं विदेशी कंपनियों के आर्थिक क्षेत्र में प्रवेश के परिणामस्वरूप रोजगार के नए क्षेत्रों का विकास हुआ, जिनमें स्त्रियों के लिए विशेष अवसर उपलब्ध हुआ। फलतः श्रमिक वर्ग में स्त्री श्रमिकों के अनुपात में वृद्धि हुई जिससे महिला श्रमिकों की आत्मनिर्भरता में वृद्धि हुई है और इनकी प्रस्थिति में सुधार हुआ है। स्त्रियों के आर्थिक आत्मनिर्भरता में वृद्धि के परिणामस्वरूप उनकी महत्वाकांक्षा में वृद्धि हुई है फलतः उनमें राजनीतिक जागरूकता का विकास हो रहा जिससे उनकी राजनीतिक सहभागिता (Political Participation) में भी वृद्धि हुई है, परिणामस्वरूप उनका राजनीतिक सशक्तिकरण हो रहा है एवं उनकी प्रस्थिति में सुधार हो रहा है।

महिला श्रमिकों के आर्थिक आत्मनिर्भरता (Economic Independency) में वृद्धि एवं राजनीतिक सशक्तिकरण के अन्तर्गत उनकी परम्परागत प्रस्थिति में भी सुधार हो रहा है। उनके भूमिका परिवर्तन की प्रक्रिया से उनकी भूमिका संघर्ष में कमी आ रही है और परम्परागत पितृसतात्मकता कमजोर हो रही है। उपरोक्त कारकों के परिमाणमस्वरूप भारतीय समाज में स्त्रियों के प्रति दृष्टिकोण में परिवर्तन हुआ तथा सामुदायिक जीवन के अन्य क्षेत्रों में उनकी सहभागिता में वृद्धि हुई और सम्पूर्ण भारतीय समाज में इनकी प्रस्थिति का उन्नयन (Status upgrade) हुआ।

उपरोक्त सकारात्मक प्रभावों के साथ-साथ वैश्वीकरण में महिला श्रमिकों को नकारात्मक रूप से भी प्रभावित किया है, जिसकी विवेचना हम निम्न रूपों में कर सकते हैं।

वैश्वीकरण के प्रभाव स्वरूप जहाँ संचार साधनों का तीव्रता से विकास हुआ तथा स्त्रियों की आत्मनिर्भरता में वृद्धि के साथ-साथ सामाजिक, शैक्षिक व राजनीतिक जीवन में इनकी सहभागिता में वृद्धि हुई जिसके कई नकारात्मक प्रभाव भी दृष्टिगोचर हुए जैसे-इनकी भूमिका संघर्ष में वृद्धि हुई अर्थात् घरेलू भूमिकाओं एवं कार्यक्षेत्र की भूमिकाओं में प्राथमिकता को लेकर संघर्ष में वृद्धि हुई। बाहरी कार्यक्षेत्र में इनकी सहभागिता में वृद्धि ने पुरुषों के साथ इनके टकराव में वृद्धि की है। उपरोक्त परिस्थितियों में महिला श्रमिकों में तलाक की दर में वृद्धि हुई है, पारिवारिक विघटन में तेजी आयी है, सिंगल पैरेंट फैमली का विकास आदि समस्याओं का उद्भव हुआ है।

वैश्वीकरण ने महिलाओं के लिए रोजगार के अवसर में वृद्धि की है लेकिन यह वृद्धि मुख्यतः असंगठित क्षेत्र में हुई है जैसे- सिले हुए वस्त्र, जूता, खिलौना आदि उद्योग, रिसेप्शनिष्ट, सेल्स गर्ल्स, कॉल

सेंटर, सड़क निर्माण, भवन निर्माण, ईंट भट्टा, आदि में हुआ है इन क्षेत्रों में इन्हें न्यूनतम वेतन पर श्रम करना होता है तथा रोजगार व श्रम सुरक्षा के अभाव के कारण इनका शोषण होता है।

वैश्वीकरण ने तीव्र यंत्रीकरण को बढ़ावा देकर कुशल श्रमिकों के रोजगार अवसरों में तो वृद्धि की है परन्तु लघु व कुटीर उद्योगों में तथा अकुशल श्रमिकों के रोजगार अवसरों में कमी की है फलतः अनुसूचित जाति/जनजाति व निम्न वर्ग समूह के अकुशल महिला श्रमिकों की बेरोजगारी में वृद्धि हुई है। परिणामस्वरूप इन महिला श्रमिकों की गरीबी में वृद्धि हुई है तथा जीवन स्तर में गिरावट हुई है फलतः इनका नक्सलीकरण हुआ है एवं देह व्यापार में भी इनकी संलग्नता में वृद्धि हुई है।

वैश्वीकरण के परिणामस्वरूप राज्य ने श्रम कानूनों में ढिलाई की तथा श्रमिकों की कल्याणकारी सुविधाओं में कटौती हुई परिणामस्वरूप संगठित क्षेत्र में कार्यरत महिला श्रमिकों को छँटनी का सामना करना पड़ रहा है जिससे इनका असंगठित क्षेत्र के श्रमिक के रूप में रूपांतरण (Converson) हो रहा है तथा इनके जीवन स्तर में गिरावट आयी है।

वैश्वीकरण ने पर्यटन उद्योग, मनोरंजन उद्योग, सौन्दर्य उद्योग व सेवा क्षेत्र का विकास किया है तथा उपभोक्तावादी संस्कृति का प्रसार किया है फलतः इन क्षेत्र में कार्यरत श्रमिकों के देह, सौन्दर्य व कामुकता का दोहन होने लगा व स्त्री का एक बिकाऊ वस्तु के रूप में रूपांतरण हो रहा है।

कॉल सेंटर, सेल्स गर्ल, रिसेप्शनिष्ट आदि के रूप में कार्यरत स्त्री श्रमिकों को थकाऊ दशाएँ (अधिक समय तक कार्य, देर रात में कार्य, असुरक्षित वातावारण में कार्य) में न्यूनतम वेतन में कार्य करना पड़ता है जबकि उपभोक्तावादी संस्कृति का इनमें तेजी से प्रसार हुआ है जिसने इनकी महत्वाकांक्षाओं में तीव्र वृद्धि कर दी है फलतः इनके तनाव एवं कुंठा में वृद्धि हुई है परिणामस्वरूप महिला मानसिक रोगियों की संख्या में वृद्धि हुई है तथा कार्यस्थल पर इनके यौन शोषण में वृद्धि व देह व्यापार के क्षेत्र के रूप में इनका प्रवेश जैसी घटनाओं में वृद्धि हुई है।

वैश्वीकरण के परिणामस्वरूप वैश्विक बाजार का विकास हुआ व पर्यटन उद्योग का तेजी से विकास हो रहा है। पर्यटन उद्योग के विकास ने Sex tourisum जैसी विकृतियों में भी तेजी ला दी है, जहाँ महिला देह को व्यापार की वस्तु के रूप में देखा जाता है। वैश्वीकरण के उपरोक्त सभी प्रभावों ने महिला श्रमिकों को व्यापक रूप से प्रभावित किया है तथा उनमें अकेले रहने की प्रवृत्ति का विकास हो रहा है, लिव-इन-रिलेशनशिप, समलैंगिकता जैसी नवीन प्रवृत्तियों का विकास और परंपरागत भारतीय संस्कृति के सन्दर्भ में स्त्री से सम्बन्धित नैतिक मूल्यों का क्षरण हो रहा है।

भारत में बालश्रम पर वैश्वीकरण के प्रभाव (Effects of Globalization on Child Labor in India)

वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने भारतीय समाज के सभी क्षेत्रों को किसी न किसी रूप में प्रभावित किया है। जहाँ तक बाल श्रम का सवाल है, वैश्वीकरण का इस पर मिला-जुला प्रभाव रहा है। जहाँ एक तरफ इसके कई नकारात्मक प्रभाव दृष्टिगोचर हुए है वहीं इसके कई सकारात्मक प्रभाव भी दृष्टिगोचर हुए है जिसकी चर्चा हम निम्न रूपों में कर सकते हैं। वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने आधुनिक शिक्षा का प्रचार प्रसार किया है साथ ही संचार साधनों के विकास में सहायक होकर इसे जन-जन तक पहुँचाने का भी कार्य किया है, इसके माध्यम से विभिन्न संगठनों द्वारा चलाए जाने वाले बाल श्रम विरोधी अभियानों के फलस्वरूप लोगों की जागरूकता में वृद्धि हुई है फलतः बाल श्रम में कमी आयी है।

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप मानवाधिकार के रक्षा हेतु सक्रिय अंतर्राष्ट्रीय संगठनों के दबाव में भी वृद्धि हुई है। विकसित देशों की जनता, जो बाल श्रम जैसे मुद्दों पर अधिक जागरूक हो चुकी है, अपने देश में यह दबाव बनाने में सफल हुई है कि विकासशील देशों से व्यापार के क्रम में उन वस्तुओं के आयात पर प्रतिबंध लगाया जाए जिसमें बाल श्रम का उपयोग हुआ है। परिणामस्वरूप भारत जैसे विकासशील देशों में उत्पादन प्रक्रिया (Production Process) में बाल श्रम से बचने का प्रयास किया जा रहा है।

वैश्वीकरण ने सिविल सोसायटी के उद्भव को भी गति प्रदान की है तथा इनके द्वारा बच्चों के अमानवीय दशाओं (Inhuman Condition) के विरोध में सरकार पर दबाव दिया जा रहा है। फलतः सरकार द्वारा विभिन्न कानूनों एवं अधिकारों को लागू करने में तत्परता दिखाई जा रही। इसी का परिणाम है कि आज शिक्षा का अधिकार, मध्याह्न भोजन कार्यक्रम, निजी विद्यालयों में गरीब बच्चों को आरक्षण, खाद्य सुरक्षा अधिनियम लागू किए जा रहे हैं फलतः बच्चों में स्कूल जाने की प्रेरणा बढ़ी है और बाल श्रम में कमी आयी है।

वैश्वीकरण के प्रभाव में स्वयंसेवी संगठनों की भूमिका में भी वृद्धि हुई है और इन संगठनों द्वारा बाल श्रम उन्मूलन (Elimination of Child Labor) की दिशा में चलाए जा रहे अभियानों का भी सकारात्मक परिणाम दृष्टिगोचर हो रहा है तथा बाल श्रम के विरोध में जागरूकता बढ़ रही है व बाल श्रम में कमी आयी है।

आर्थिक सुधार एवं वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने योग्यता आधारित रोजगार के नए अवसरों को उत्पन्न किया है, जिससे उर्ध्वमुखी सामाजिक गतिशीलता में वृद्धि हुई है इससे निम्न वर्गीय लोगों के जीवन में सुधार हुआ है जिसका असर बाल श्रम पर भी हुआ है व बाल श्रम में कमी आयी है। संचार क्रांति ने उपभोक्तावादी संस्कृति के प्रसार से लोगों की महत्वाकांक्षाओं में तो वृद्धि की ही है वहीं

अभिभावकों की जागरूकता में भी वृद्धि हुई है, फलतः अभिभावकों में बच्चों को शिक्षा हेतु भेजने के लिए प्रेरणा मिली है फलतः बाल श्रम में कमी आई है।

परन्तु उपरोक्त विवेचन बाल श्रम पर वैश्वीकरण के पड़ने वाले प्रभावों के एक ही पहलू को दर्शाते है। वैश्वीकरण के बाल श्रम पर कई नकारात्मक प्रभाव भी देखे जा सकते हैं। वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप वैश्विक स्तर पर अर्थव्यवस्थाओं के एकीकरण की प्रक्रिया तीव्र हुई है। वैश्विक प्रतिस्पर्धा ने घरेलू उत्पादकों पर लागत कम करने के दबाव को बढ़ाया है उत्पादन लगात कम करने हेतु सस्ते श्रम की माँग बढ़ी है जिसकी आपूर्ति बालश्रम के द्वारा की जा रही फलतः बालश्रम में वृद्धि हुई है।

आज भारत में विदेशी निवेश को आकर्षित करने की होड़ मची है। FDI के आगमन से मजदूरी में सुधार हुआ है। यह बढ़ी हुई मजदूरी अभिभावकों को अपने बच्चों को बालश्रम के रूप में भेजने हेतु प्रेरक बल का कार्य कर रहा है तथा उत्पादकों पर सस्ते श्रम हासिल करने का दबाव है फलतः बालश्रम में वृद्धि देखी जा रही है। आर्थिक सुधार व वैश्वीकरण के परिणामस्वरूप कुशल श्रम के माँग में वृद्धि हुई है फलतः अकुशल श्रमिकों के महत्व में कमी आई है परिणामस्वरूप अकुशल श्रमिकों का सीमांतीकरण हुआ है तथा उनमें गरीबी, ऋणग्रस्तता आदि समस्याओं में वृद्धि हुई है जिसके दबाव में अभिभावकों द्वारा अपने बच्चों को बालश्रमिक के रूप में शामिल करने की प्रक्रिया में तीव्रता आयी है।

आर्थिक सुधार व वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने आर्थिक विषमता में वृद्धि की है साथ ही राज्य द्वारा सब्सिडी में भी भारी कटौती की जा रही है जिससे दैनिक वस्तुओं की कीमत में वृद्धि हुई है फलतः गरीबों द्वारा अपनी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु बालश्रम की ओर उन्मुखता बढ़ी है। वैश्वीकरण ने उपभोक्तावादी संस्कृति का प्रसार कर लोगों में भौतिक सुख साधनों की प्राप्ति की महत्वाकांक्षा में वृद्धि की है। लोग किसी भी प्रकार से अपनी भौतिक सुविधाओं को प्राप्त कर लेना चाहते हैं जिसकी परिणति बालश्रम में वृद्धि के रूप में हुई है।

वैश्वीकरण ने श्रम की विविधता को बढ़ाया है और ढेर सारे ऐसे कार्यों को उत्पन्न किया है जिसके लिए बाल श्रमिकों की मांग बढ़ी है फलतः इस मांग को पूरा करने के लिए बाल श्रम की आपूर्ति बढ़ी है और बालश्रम के आकार में वृद्धि हुई है।

वैश्वीकरण की प्रक्रिया में लोक कल्याणकारी राज्य कमजोर हुआ है तथा श्रम सुरक्षा मानक ढीले हुए हैं फलतः बालश्रम उन्मूलन के प्रयास कमजोर हुए हैं और बालश्रम में वृद्धि हुई है। वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप शिक्षा व्यवस्था में भी परिवर्तन हुआ फलतः शिक्षा का निजीकरण हुआ एवं शिक्षा व्यवस्था मंहगी हुई साथ ही सरकारी शिक्षा व्यवस्था के स्तर में गिरावट हुई परिणामस्वरूप वैश्वीकरण ने व्यक्तिवादिता को बढ़ावा देकर परम्परागत पारिवारिक मूल्यों को कमजोर किया है, जिससे बच्चों पर उनके नातेदारों व परिवार का नियंत्रण एवं समर्थन दोनों में कमी आयी है। जबकि उपभोक्तावादी संस्कृति ने बच्चों की जरूरतों को बढाया है (मोबाइल फोन आदि)। फलतः बालश्रम की निरंतरता में वृद्धि हुई है।

वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने सिविल सोसायटी, स्वयंसेवी संस्थाओं एवं अंतर्राष्ट्रीय मानवाधिकार संस्थाओं के महत्व में वृद्धि की है। इन संगठनों के दबाव में बाल श्रम उन्मूलन कानून को कठोरता से क्रियान्वयन का प्रयास हो रहा है परन्तु तद्नुरूप पुनर्वास (Rehabilitation) की समुचित व्यवस्था नहीं हो पायी है फलस्वरूप बाल श्रमिकों की स्थिति में गिरावट देखी जा रही है। वैश्वीकरण ने मंहगाई के स्तर को बढ़ाया है जबकि मुद्रा स्फीति की तुलना में मजदूरी दर में अपेक्षाकृत वृद्धि नहीं हुई है। फलतः बाल श्रमिकों के पोषण व स्वास्थ्य स्तर में गिरावट आई है व बाल श्रमिकों की स्थिति दयनीय हुई है।

भारत के किसान वर्ग पर वैश्वीकरण के प्रभाव (Effects of Globalization on the Peasant Class of India)

वैश्वीकरण के ऐजेंडों को वैश्विक स्तर पर प्रसार करने में जिन संस्थाओं ने अहम भूमिका निभाई है उसमें विश्व व्यापार संगठन (WTO) सर्वप्रमुख रहा है। विश्व व्यापार संगठन ने वैश्विक स्तर पर विभिन्न राष्ट्रों के मध्य व्यापार सम्बन्धी बाधाओं को दूर करने का प्रयास किया है। विश्व व्यापार संगठन (WTO) के उरूग्वे दौर की वार्ता के बाद आर्थिक सुधार के तहत तीन मुद्दों को शामिल किया गया था।

सर्वप्रथम इसके तहत घरेलू बाजार में विदेशी कंपनियों के प्रवेश को आसान बनाने की बात शामिल की गयी। द्वितीय इसके तहत कृषि को दिए जा रहे घरेलू समर्थन को समाप्त करने की बात की गयी तथा तृतीय मुद्दा कृषि निर्यात सहायता को कम करने से सम्बन्धित था। उपरोक्त समझौते के तहत भारत के कृषि नीति में निम्न मुद्दों पर बल दिया गया-

राज्य द्वारा कृषि क्षेत्र को दी जा रही सब्सिडी में कटौती की गयी तथा कृषि क्षेत्र में राज्य के निवेश में कमी करने का प्रयास प्रारम्भ हुआ। इसके साथ ही कृषि क्षेत्र में निजी क्षेत्र के निवेश को प्रोत्साहन दिया जाने लगा। साथ ही कृषि उत्पाद और इससे संबंधित वस्तुओं के अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को प्रोत्साहन दिया जाने लगा। कृषि का अधिकाधिक आधुनिकीकरण किया जाने लगा, इसमें कृषि का यंत्रीकरण, कृषि का विविधिकरण, उन्नत बीज, उर्वरक एवं कीटनाशक का प्रयोग, कृषि से संबंधित नवीन खोज एवं अनुसंधान कार्यों का संपादन, पौधे संरक्षण, मृदा संरक्षण आदि पर जोर दिया गया, किसान कॉल सेंटर, ई-चौपाल जैसी कई अन्य सुविधाओं की स्थापना की गयी।

वैश्वीकरण की प्रक्रिया के तहत किए गए उपरोक्त प्रयासों ने किसान वर्ग को व्यापक रूप से प्रभावित किया। यह प्रभाव सकारात्मक व नकारात्मक दोनों रूपों में दिखाई दिए। यदि हम वैश्वीकरण का भारतीय किसान वर्ग पर सकारात्मक प्रभाव की चर्चा करे तो यह कहना होगा कि वैश्वीकरण ने कृषि के आधुनिकीकरण एवं कृषि क्षेत्रों में नवीन प्रयोगों को बढ़ावा दिया फलतः प्रति हेक्टेयर उत्पादकता में वृद्धि हुई। 1991 में चावल की प्रति हेक्टेयर उत्पादकता 1740 किग्रा व गेहूँ की प्रति हेक्टेयर उत्पादकता 2251 किग्रा थी वहीं 2010 में चावल की प्रति हेक्टेयर उत्पादकता बढ़कर 2208 किग्रा व गेहूँ की प्रति हेक्टेयर उत्पादकता बढ़कर 2940 किग्रा हो गयी तथा कृषि भूमि के क्षेत्रफल में भी पर्याप्त वृद्धि हुई।

कृषि उत्पादकता में वृद्धि एवं कृषि भूमि के क्षेत्रफल में वृद्धि के फलस्वरूप किसानों की आय में वृद्धि हुई और उनके जीवन स्तर में सुधार हुआ। किसान वर्ग के शिक्षा का स्तर, उपभोग के स्तर, आयु प्रत्याशा, आवास के स्तर, स्वास्थ्य के स्तर आदि में भी सुधार हुआ। वैश्वीकरण ने कृषि उत्पादों के व्यापारीकरण को बढ़ावा दिया फलतः कृषि क्षेत्र में नगदी खेती, बागानी खेती, ठेके पर खेती जैसी नवीन प्रवृत्तियों का विकास हुआ जिससे कृषि कार्य लाभकारी हो गया। इससे जेन्टलमैन किसानों के वर्ग का विकास हुआ। ग्रामीण समाज में मध्यम वर्ग के आकार में वृद्धि हुई जो परम्परागत रूप से उच्च जातियों से सम्बन्धित न होकर मुख्यतः मध्य स्तर की जातियों से सम्बन्धित है।

कृषि के आधुनिकीकरण से किसानों के जीवन स्तर में सुधार हुआ साथ ही वैश्वीकरण से ग्रामीण क्षेत्रों में भी संचार क्रांति का प्रसार हुआ। इन सबके प्रभाव स्वरूप गांव के किसानों में भी तार्किक एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास हुआ तथा इनके जीवन में धर्म के प्रभाव में कमी आई व परम्परागत रूढ़िगत मान्यताएँ (Traditional Orthodox Beliefs) कमजोर हुई। फलतः परम्परागत जातीय असमानताओं (Traditional Caste Inequality) में कमी आयी, महिलाओं की प्रस्थिति में सुधार हुआ तथा ग्रामीण समाज का आधुनिकीकरण संभव हुआ।

कृषि क्षेत्र की तुलना में गैर कृषि क्षेत्र का विकास तीव्रता से हुआ फलतः इन क्षेत्रों में रोजगार के नवीन अवसर तेजी से विकसित हुए। इन अवसरों का लाभ लेने हेतु किसान वर्ग की देश के अन्य क्षेत्र में प्रवास की दर बढ़ी तथा इससे उनके लिए आय के नवीन स्त्रोतों का विकास संभव हुआ फलतः उनके जीवन स्तर में सुधार संभव हुआ। परन्तु वैश्वीकरण ने किसान वर्ग को सिर्फ सकारात्मक रूप से ही प्रभावित नहीं किया अपितु इसके कई नकारात्मक प्रभावों का भी किसान वर्ग को सामना करना पड़ रहा है।

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप विश्व व्यापार संगठन के निर्देशों के अनुरूप राज्य द्वारा कृषि को दिए जा रहे समर्थन में कमी की जा रही है तथा कृषि के क्षेत्र में राज्य के निवेश में भी कमी की जा रही है। 1991 में कृषि क्षेत्र में राज्य का निवेश 1.92% था जो 2002 में घटकर मात्र 1.28% रह गया, जिससे कृषि से संबंधित संरचनात्मक सुविधाओं का विकास उपेक्षित हो गया। फलतः 1991 के बाद से कृषि क्षेत्र में सकल घरेलू उत्पाद की संवृद्धि दर में गिरावट देखी गयी है जिससे बढ़ती जनसंख्या के अनुपात में कृषि उत्पादन के क्षेत्र में उपलब्धियाँ घटी है और भारतीय किसानों के जीवन स्तर में अपेक्षित सुधार नहीं हो पाया है।

वैश्वीकरण के दौर में कृषि उत्पादों के निर्यात में भी कमी आयी है और कृषि उत्पादों का अंतर्राष्ट्रीय व्यापार भी असंतुलित रहा है। 1990-91 में कुल निर्यात में कृषि निर्यात का हिस्सा 19.1% था जो 2006-07 में घटकर 10.3% हो गया। परिणामस्वरूप कृषि के व्यापारीकरण का अधिकांश भाग विकसित देशों के किसानों को प्राप्त हुआ और भारतीय किसानों पर इसका नकारात्मक प्रभाव पड़ा जैसे-कृषि उत्पादों को मिलने वाला मूल्य लागत खर्च की अपेक्षा कम होने के कारण कई बार किसानों द्वारा फसल को खेतों में छोड़ देना, कपास के मूल्यों को लेकर कपास उत्पादकों द्वारा की गयी आत्महत्याएँ व विभिन्न किसान आंदोलनों का उद्भव तथा उत्तर प्रदेश के गन्ना किसानों की समस्याएँ आदि के रूप में देखा जा सकता है।

कृषि का आधुनिकीकरण तो अवश्य हुआ पर यह असंतुलित रहा और इसका लाभ केवल कुछ क्षेत्रों के किसानों को प्राप्त हुआ फलस्वरूप क्षेत्रिय विषमता में वृद्धि हुई है और नक्सलीकरण जैसी समस्याएँ प्रोत्साहित हुई। वैश्वीकरण के प्रसार के प्रभाव में राज्य द्वारा कृषि सब्सिडी में कटौती की गयी। इससे उन्नत बीज, उर्वरक, कीटनाशक तथा कृषि यंत्र मंहगे हो गए जबकि सस्ते दर पर ऋण उपलब्ध कराने वाली संस्थाओं का अभाव रहा फलतः ग्रामीण गरीबी व बेरोजगारी आदि में वृद्धि हुई। वैश्वीकरण के प्रभाव से कृषि को लाभ तो प्राप्त हुआ परन्तु यह लाभ केवल बड़े किसानों तक सीमित रहा जिससे ग्रामीण समाज में आंतरिक विषमता में वृद्धि हुई व कई राज्यों में जाति संघर्ष की समस्या को उत्पन्न किया।

वैश्वीकरण ने कृषि का आधुनिकीकरण तो किया परन्तु आधुनिक कृषि कार्य मंहगा हो गया। संस्थागत साधनों (सिंचाई साधन, ऋण व्यवस्था, कृषि बीमा, भंडारण व विपणन आदि) के अभाव तथा शिक्षा व जागरूकता का अभाव ग्रामीण गरीबी आदि के परिणामस्वरूप छोटे किसानों में ऋणग्रस्तता की समस्या बढ़ी है तथा उनका सर्वहाराकरण (Proletarianization) हुआ है जिससे उनके प्रवास में वृद्धि हुई तथा आत्महत्या की दर बढ़ी तथा नक्सलीकरण में भी तेजी हुई।

वैश्वीकरण ने विदेशी निवेश में तेजी लाकर विकास की विभिन्न योजनाओं को तीव्रता प्रदान किया है। इन विभिन्न योजनाओं के लिए कृषि भूमि का गैर कृषि कार्य हेतु अधिग्रहण किया जा रहा है परिणामस्वरूप जहाँ एक तरफ कृषि भूमि की कीमतों में तेजी से इजाफा हो रहा जिससे किसान लाभान्वित हो रहे हैं तो दूसरी तरफ विस्थापन के विरोध में नवीन किसान आन्दोलनों का उद्भव हो

रहा है तथा अशांति व हिंसा की घटनाएँ बढ़ रही (भट्टा पारसौल, नंदीग्राम आदि) है।

विश्व व्यापार संगठन (WTO) के प्रावधानों के तहत बौद्धिक संपदा अधिकार तथा पेटेंट और कॉपीराइट से सम्बन्धित प्रावधान लागू किए गए परिणामस्वरूप वैश्वीकरण के लाभों से केवल विकसित देश के किसान लाभान्वित हुए और भारत के किसान इसका लाभ प्राप्त करने से वंचित रह गए है। फलत: कृषि विकास असंतुलित रहा है।

वैश्वीकरण का एक प्रभाव यह भी देखा गया की संचार क्रांति की पहुँच ग्रामीण किसान वर्ग तक भी हो गयी। परिणामस्वरूप जहाँ एक तरफ किसानों में उपभोक्तावादी संस्कृति का प्रसार हुआ जिससे ग्रामीण किसानों की जीवनशैली पश्चिमीकृत हुई व परम्परागत संस्कृति का अपघटन हुआ तो दूसरी तरफ इसके प्रतिक्रियास्वरूप भारतीय किसानों की अपनी परम्परागत सांस्कृतिक मान्यताओं, रीति-रीवाज, धर्म आदि के प्रति रूझान में पुन: वृद्धि हुई है, जिसने न केवल सकारात्मक प्रभावों को उत्पन्न किया है बल्कि कई नकारात्मक प्रभावों को भी फलित किया है। जैसे-आधुनिकीकरण की प्रक्रिया बाधित हुई है, खाप पंचायत जैसे परम्परागत रूढ़ियों में वृद्धि हुई है धार्मिक रूढ़िवाद व धार्मिक पुन:प्रर्वतनवाद जैसी घटनाओं का प्रसार हुआ व धर्मनिरपेक्षीकरण कमजोर हुआ है।

भारतीय मध्यम वर्ग पर वैश्वीकरण के प्रभाव
(Effects of Globalization on the Indian Middle Class)

मध्यम वर्ग सफेदपोश, नौकरी पेशा करने वाला वर्ग है, जो वर्ग संरचना में न तो उपर होता है न ही नीचे जैसे-डॉक्टर, इंजीनियर, मैनेजर, वकील, शिक्षक व छोटे व्यापारी इत्यादि। मध्यम वर्ग पर वैश्वीकरण के प्रभावों के विवेचन हेतु वैश्वीकरण से पूर्व की मध्यम वर्ग की स्थिति को जानना आवश्यक हो जाता है। वैश्वीकरण से पूर्व भारत में मध्यम वर्ग का आकार छोटा था यह मुख्यत: सरकारी एवं औद्योगिक क्षेत्र से सम्बन्धित था। मध्यम वर्ग में मुख्यत: ऊँची जातियाँ एवं मध्य वर्गीय जातियाँ ही सम्मिलित थी।

वैश्वीकरण ने भारतीय मध्यम वर्ग को व्यापक रूप से प्रभावित किया है। यहाँ सर्वप्रथम हम भारतीय मध्यम वर्ग पर वैश्वीकरण के सकारात्मक प्रभावों की चर्चा कर रहे हैं। वैश्वीकरण के प्रभाव स्वरूप प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के अन्तर्प्रवाह में वृद्धि हुई है जिससे उद्योग एवं सेवा क्षेत्र का तीव्र विकास हुआ है। परिणामस्वरूप कुशल श्रम पर आधारित रोजगार के नए अवसरों का सृजन हुआ है फलत: सफेदपोश नौकरी करने वालों की संख्या में वृद्धि हुई है। इस प्रकार मध्यम वर्ग के आकार में वृद्धि हुई है।

वैश्वीकरण के प्रभाव में उद्योग एवं सेवा क्षेत्र का तीव्र विकास हुआ है जिससे योग्यता आधारित रोजगार के नए अवसरों का सृजन हुआ है। इससे जनजातियों, निम्न जातियों एवं महिलाओं की उर्ध्वगामी गतिशीलता (Upward Mobility) में वृद्धि हुई है अर्थात् इन वर्ग के लोग भी मध्यम वर्ग में शामिल हुए एवं मध्यम वर्ग की संरचना की विविधता में वृद्धि हुई। वैश्वीकरण ने उद्योग व सेवा क्षेत्र का तीव्र विकास कर कुशल श्रमिकों की मांग में वृद्धि की है। परिणामस्वरूप कुशल श्रमिकों के पारिश्रमिक में भी वृद्धि हुई तथा कुशल श्रमिक के रूप में मध्यम वर्ग की आर्थिक स्थिति सुदृढ हुई है मध्यम वर्ग के आय में वृद्धि से उनकी बचत में वृद्धि हुई है तथा देश के पूंजी निर्माण कि प्रक्रिया में मध्यम वर्ग के योगदान में वृद्धि हुई है।

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप खुली अर्थव्यवस्था का विकास हुआ तथा वैश्विक अंतर्संबंधों में वृद्धि हुई। फलत: विदेशों में कुशल श्रमिकों के रोजगार के अवसरों में वृद्धि हुई एवं श्रम की सहज गतिशीलता के कारण मध्यम वर्ग के उत्प्रवास (Emigration) में वृद्धि हुई परिणामस्वरूप भारत के मध्यम वर्ग में एनआरआई की संख्या में वृद्धि हुई। वैश्वीकरण ने संचार साधनों का विकास कर पाश्चात्य जीवन शैली का प्रसार किया फलत: मध्यम वर्ग के रहन-सहन एवं जीवन शैली का पाश्चात्यकरण एवं अभिजातिकरण (Aristocracy) हुआ।

वैश्वीकरण के प्रभाव में उपभोक्तावाद का प्रसार हुआ है। उपभोक्तावादी संस्कृति को अपनाकर मध्यम वर्ग की महत्वाकांक्षा में वृद्धि हुई है। फलत: इस वर्ग में प्रतिस्पर्धा की भावना तीव्र हुई है जिससे इस वर्ग की आर्थिक समृद्धि में वृद्धि हुई है। मध्यम वर्ग की आर्थिक संवृद्धि में वृद्धि के परिणामस्वरूप मध्यम वर्ग के सामाजिक महत्व में वृद्धि हुई है। फलत: मध्यम वर्ग की भारतीय राजनीति में हस्तक्षेप में वृद्धि हुई है एवं मध्यम वर्ग का राजनीतिक सशक्तिकरण हुआ है।

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप वैश्विक लक्ष्यों को प्राप्त करने का दबाव तेज हुआ है फलत: सफेदपोश अधिकारी वर्ग के उत्तरदायित्व में वृद्धि हुई है एवं इनकी प्रशासनिक शक्तियों में वृद्धि हुई है। परिणामस्वरूप नीति निर्माण एवं क्रियान्वयन में मध्यम वर्ग की भूमिका सुदृढ हुई है।

वैश्वीकरण के फलस्वरूप धन के महत्व में वृद्धि हुई है। सामाजिक व्यवस्था में जाति स्तरीकरण की जगह वर्ग स्तरीकरण का प्रादुर्भाव हुआ है तथा आर्थिक आधार पर निम्न जातियों का मध्यम वर्ग में सम्मिलन हुआ है। इससे निम्न जातियों के अधिकारों एवं सामाजिक महत्व में वृद्धि हुई है। फलत: इनमें जातिगत मान्यताएँ कमजोर हुई है। इस क्रम में मध्यम वर्ग की जातिगत संरचना कमजोर हुई है।

वैश्वीकरण ने भारतीय मध्यम वर्ग पर केवल सकारात्मक प्रभाव ही नहीं डाले अपितु इसने भारतीय मध्यम वर्ग को नकारात्मक रूप में भी प्रभावित किया है। इसे हम निम्न प्रकार से समझ सकते हैं।

वैश्वीकरण ने संचार क्रांति एवं पश्चिमी जीवन शैली का तीव्र प्रसार किया है। भारतीय मध्यम वर्ग द्वारा इस पश्चिमी जीवन शैली को अपनाने के कारण इनका परंपरागत भारतीय संस्कृति से अलगाव (Isolation) एवं विचलन (Deviation) में वृद्धि हुई है। आज मध्यम वर्ग उपभोक्तावादी संस्कृति को अपनाकर तीव्र व्यक्तिवादिता की ओर उन्मुख हुआ है। फलत: मध्यम वर्ग में सामूहिकता का ह्रास हुआ है तथा अपने रिश्तेदारों, परिवार, मित्र आदि से अलगाव हुआ

है तथा फेसबुक, ट्विटर आदि की काल्पनिक साइबर संसार की ओर उन्मुखता बढ़ी है।

वैश्वीकरण के परिणामस्वरूप प्रत्यक्ष विदेशी निवेश का अंतर्प्रवाह तीव्र हुआ। परन्तु मुख्यत: यह शहरों में सीमित रहा। फलत: शहरों में रोजगार के नए अवसरों का सृजन हुआ एवं मध्यम वर्ग की रोजगार की तलाश एवं शहरी चमक दमक के आकर्षण में शहरों की ओर पलायन हुआ। परिणामस्वरूप मध्यम वर्ग का परिवार एवं ग्रामीण परिवेश से अलगाव एवं उनमें एकल परिवार व्यवस्था का विकास हुआ।

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप संचार क्रांति, आर्थिक विकास एवं उपभोक्तावादी संस्कृति का प्रसार हुआ। फलत: मध्यम वर्ग की प्रतिस्पर्धा में वृद्धि हुई और भाग दौड़ वाली जीवन प्रणाली का विकास हुआ। परिणामस्वरूप इनके जीवन में तनाव व कुंठा में वृद्धि हुई तथा अनेक प्रकार के शारीरिक व मानसिक बीमारियों के प्रकोप में वृद्धि हुई इससे मध्यम वर्ग की शारीरिक क्षमता का ह्रास हुआ एवं जीवन शैली आधारित बीमारियों (ब्लड प्रेशर, डायबिटीज, हृदय रोग आदि) के प्रचलन में वृद्धि हुई।

मध्यम वर्ग में उपभोक्तावादी पश्चिमी मूल्यों के प्रसार के परिणामस्वरूप इनका परंपरागत मान्यताओं एवं मूल्यों से अलगाव हुआ तथा मध्यम वर्ग के नैतिक स्तर में गिरावट हुई एवं इनमें नैतिक दुर्बलता का विकास हुआ।

वैश्वीकरण ने भौतिक संस्कृति एवं उपभोक्तावादी मूल्यों का प्रसार किया। मध्यम वर्ग इन उपभोक्तावादी मूल्यों को आत्मसात कर भौतिक सुख सुविधाओं के अंधी दौड़ में शामिल हो गया। फलत: इनके जीवन में तीव्र प्रतिस्पर्धा, अत्यधिक कार्य बोझ एवं समय का अभाव हो गया। परिणामस्वरूप मध्यम वर्ग जीवन के मूलभूत पक्षों से अलगावित हो रहा है।

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप पश्चिमी संस्कृति का प्रसार हुआ है एवं मध्यम वर्ग के समक्ष पहचान का संकट उत्पन्न हुआ है। जिसके समाधान हेतु मध्यम वर्ग की नृजातीय पहचान के तत्वों की ओर उन्मुखता बढ़ी है। फलत: आधुनिक जीवन शैली अपनाने वाला मध्यम वर्ग आज धार्मिक पुन:प्रवर्तनवाद एवं धार्मिक रूढ़िवाद का वाहक बनकर धर्मनिरपेक्षीकरण की प्रक्रिया में बाधक बन गया है।

वैश्वीकरण ने जिस पश्चिमी मूल्यों का प्रसार किया है उसे मध्यम वर्ग ने आगे बढ़कर अपनाया है तथा आर्थिक संवृद्धि को ही अपना प्राथमिक लक्ष्य बना लिया है जिससे मध्यम वर्ग का नैतिक स्तर का ह्रास हुआ है फलत: मध्यम वर्ग में सफेदपोश अपराध एवं भ्रष्टाचार आदि का प्रचलन बढ़ा है। वैश्वीकरण के परिणामस्वरूप जिस उपभोक्तावादी संस्कृति का प्रसार हुआ है उसे अपनाकर मध्यम वर्ग में दिखावा हेतु उपभोग का विकास हुआ है तथा मध्यम वर्ग द्वारा राष्ट्रीय आय का अनुत्पादक कार्यों में व्यय किया जा रहा है, जिससे राष्ट्रीय विकास में बाधा हो रही है।

भारतीय वृद्धों पर वैश्वीकरण के प्रभाव
(Effects of Globalization on Indian Elders)

वैश्वीकरण ने भारतीय समाज के हर वर्ग को व्यापक रूप से प्रभावित किया। भारतीय वृद्धों पर भी वैश्वीकरण के प्रभाव को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। यह प्रभाव सकारात्मक व नकारात्मक दोनों ही रूपों में दृष्टिगत हुआ है। वैश्वीकरण का भारतीय वृद्धों पर पड़ने वाले सकारात्मक प्रभावों की चर्चा हम निम्न रूप में कर सकते है–

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप भारतीय समाज में आर्थिक समृद्धि आयी है तथा सभी व्यक्तियों के जीवन स्तर में सुधार आया है जिसका प्रभाव वृद्धों पर भी पड़ा है एवं उनके जीवन स्तर में भी सुधार देखा जा सकता है। वैश्वीकरण के फलस्वरूप विज्ञान एवं तकनीक का प्रसार हुआ है तथा स्वास्थ्य सम्बन्धी सुविधाओं का प्रसार हुआ है फलत: वृद्धों को स्वास्थ्य सम्बन्धी नवीन सुविधाएँ उपलब्ध हो पायी है तथा उनके स्वास्थ्य स्तर में सुधार हुआ है।

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप स्वयं सेवी संस्थाओं का प्रसार हुआ है। कई स्वयंसेवी संस्थाओं द्वारा वृद्धों के कल्याण हेतु बेहतर प्रयास किए गए है। फलत: वृद्धों के समस्याओं के प्रति लोगों की जागरूकता में वृद्धि हुई है तथा इस प्रकार वृद्धों का कल्याण संभव हुआ है। वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप मनोरंजन के नए साधनों का विकास हुआ है, जैसे–टीवी, इंटरनेट आदि। वृद्ध जो परिवार में अकेलेपन की जिन्दगी व्यतीत कर रहे हैं, उनके लिए मनोरंजन के ये नवीन साधन अकेलेपन से बचने में कारगर साबित हो रहे हैं। वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप धर्म का बाजारीकरण हुआ है इससे विभिन्न धार्मिक चैनलों का प्रसार हुआ है। परिणामस्वरूप वृद्धों को घर बैठे धार्मिक ज्ञान की प्राप्ति संभव हो सकी है।

वैश्वीकरण ने भारतीय वृद्धों पर जहाँ उपरोक्त सकारात्मक प्रभाव पैदा किए वहीं इसके कुछ नकारात्मक परिणाम भी दृष्टिगत हुए हैं जिसे हम निम्न प्रकार से देख सकते हैं–

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप उपभोक्तावादी मूल्यों का प्रसार हुआ है। लोगों की महत्वाकांक्षा एवं प्रतिस्पर्धा में वृद्धि हुई है फलत: लोगों के पास समय का अभाव हो गया है एवं अकेलेपन की जिन्दगी जीने को मजबूर हो गए हैं। वैश्वीकरण के प्रभाव स्वरूप श्रम की गतिशीलता में वृद्धि हुई है तथा रोजगार के तलाश में लोगों का नए स्थानों पर पालायन हुआ है। परिणाम स्वरूप परिवार में वृद्ध अकेला व उपेक्षित जीवन जीने को मजबूर हुए हैं। वैश्वीकरण के प्रभाव स्वरूप संचार क्रांति का प्रसार हुआ है तथा आधुनिक विचारधारा का प्रसार हुआ है। जिसका प्रचलन मुख्यत: युवा वर्ग में हुआ है जबकि वृद्ध अभी भी परंपरागत विचारधारा के पोषक हैं। फलत: पीढ़ी अंतराल की समस्या में वृद्धि हुई है।

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप पश्चिमी जीवन शैली का प्रसार हुआ है। वृद्ध लोग अभी भी परंपरागत जीवन शैली के पोषक हैं तथा इन्हें इस नवीन जीवन शैली के साथ सामंजस्य की समस्या पैदा हुई

है। वैश्वीकरण के प्रभाव स्वरूप व्यक्तिवादिता में वृद्धि हुई है एवं संयुक्त परिवार व्यवस्था कमजोर हुई है तथा एकल परिवार व्यवस्था का प्रचलन तीव्र हुआ है ऐसे में वृद्ध उपेक्षित एवं अलगावित हुए है। वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप लोक कल्याणकारी राज्य कमजोर हुआ है। फलतः वृद्धों के कल्याण सम्बन्धी योजनाओं के प्रति राज्य की भूमिका कम हुई है एवं वृद्धों की स्थिति में गिरावट हुई है।

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप भारतीय युवा वर्ग में व्यक्तिवादी पश्चिमी जीवनशैली को अपनाने की होड़ मची है तथा वृद्धों के प्रति उनका आदर-भाव कम होता जा रहा है। परिणामस्वरूप वृद्धों को युवाओं के सामने परिवार की शांति हेतु घुटने टेकने पड़ रहे हैं। वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप उपयोगितावादी मूल्यों का प्रसार हुआ है फलतः उनको ही महत्व प्राप्त हो रहा जिनकी उपयोगिता (Utility) है। चूंकि वृद्धों की उपयोगिता खत्म मान ली जाती है जिससे उनको महत्वहीन समझा जाता है एवं उपेक्षा की दृष्टि से देखा जाता है।

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप मनोरंजन के नए साधनों का विकास हुआ है जैसे-टीवी, विडियो गेम, इंटरनेट आदि पहले बच्चे जहाँ मनोरंजन के लिए दादा-दादी एवं नाना-नानी से कहानियाँ सुनते थे एवं उनसे गहरा लगाव का अनुभव करते थे। परन्तु आज के दौर में बच्चे मनोरंजन के नवीन साधनों के प्रति आकर्षित हुए है एवं वृद्धों के प्रति उनका लगाव खत्म हुआ है।

वैश्वीकरण : संभावित प्रश्न

1. भारतीय समाज पर वैश्वीकरण के अंतर्विरोधी प्रभावों को स्पष्ट कीजिए।
2. आज वैश्वीकरण के इस दौर में भारतीय समाज संक्रमणकालीन अवस्था से गुजर रहा है। वर्णित कीजिए।
3. भारतीय समाज एवं संस्कृति पर संचार साधनों के अंतर्विरोधी प्रभावों की चर्चा कीजिए।
4. हाल के वर्षों में विवाह में उत्पन्न नवीन प्रवृत्तियों की वैश्वीकरण के साथ सहसम्बद्धता को स्पष्ट कीजिए।
5. हमारी परम्परागत सामाजिक संस्थाएँ वैश्वीकरण के इस दौर में क्रमिक क्षरण की प्रक्रिया से ग्रसित है, स्पष्ट कीजिए।
6. नागरिक समाज एवं नवीन जन-आन्दोलनों के उद्भव में वैश्वीकरण की भूमिका पर चर्चा कीजिए।
7. वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने पहचान के संकट को उत्पन्न किया है और भारतीय समाज को परम्परा की ओर उन्मूख किया है। स्पष्ट कीजिए।
8. वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने भारतीय महिलाओं को एक तरफ सशक्त किया है तो दूसरी तरफ उन्हें उपभोग की वस्तु के रूप में चित्रित करके उनका दैहिक शोषण को बढाया है। चर्चा कीजिए।
9. वैश्वीकरण की समकालीन प्रक्रिया ने धर्म को एक साथ कमजोर एवं मजबूत दोनों किया है। स्पष्ट कीजिए।
10. वैश्वीकरण ने भारतीय लोकतंत्र को एक साथ कमजोर एवं मजबूत दोनों किया है। चर्चा कीजिए।
11. सोशल नेटवर्किंग साइट्स क्या है? इसके भारतीय जन मानस पर पड़ने वाले प्रभावों की चर्चा कीजिए।
12. वैश्वीकरण ने एक आधुनिक परन्तु अलगावित मानव का निर्माण किया है। स्पष्ट कीजिए।
13. परम्परागत भारतीय लोक-कला एवं लोक-संस्कृति को वैश्वीकरण से अनुरक्षण हेतु उपायों की चर्चा कीजिए।
14. वैश्वीकरणजनित जीवनशैली ने हमारी कार्यशील जनसंख्या की मानसिकता में क्या परिवर्तन उत्पन्न किया है? उत्तर दीजिए।
15. जनजातीय समाज एवं संस्कृति पर वैश्वीकरण के अंतर्विरोधी प्रभावों को समझाइए।
16. धार्मिक पुन:प्रवर्त्तनवाद क्या है? इसकी सामाजिक उपयोगिता पर चर्चा कीजिए।
17. धार्मिक कट्टरतावाद क्या है? इसके दुष्परिणामों की चर्चा कीजिए और इसको रोकने हेतु उपाय सुझाएँ।
18. धर्म का लोगों के जीवन में क्या भूमिका है? वैश्वीकरण के इस दौर में धर्म के स्वरूप में हुए बदलावों की चर्चा कीजिए।
19. Globalization क्या है? क्या यह सिर्फ बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के द्वारा व्यवहृत बाजार की रणनीति है या सांस्कृतिक संश्लेषण की प्रक्रिया है जो हमारे समक्ष अपना स्थान निर्मित कर रहा है।
20. वैश्वीकरण ने किस प्रकार हमारी घरेलू कला तथा साहित्यिक परम्परा एवं ज्ञान के समक्ष समस्या को उत्पन्न किया है? स्पष्ट कीजिए।
21. उपभोग की संस्कृति क्या है? भारतीय समाज पर इसके प्रभावों को स्पष्ट कीजिए।
22. वैश्वीकरण का महिला श्रम तथा बाल श्रम पर पड़ने वाले प्रभावों की चर्चा कीजिए।
23. वैश्वीकरण एवं पहचान के संकट पर एक टिप्पणी लिखिए।
24. वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने भारत में सांस्कृतिक संकट को उत्पन्न किया है। टिप्पणी कीजिए।
25. श्रम के स्त्रीकरण से आपका क्या तात्पर्य है? वैश्वीकरण के प्रभावों के संदर्भ में इसको स्पष्ट कीजिए।
26. वैश्वीकरण की प्रक्रिया का भारत के युवा वर्ग पर पड़ने वाले प्रभावों की समीक्षा कीजिए।
27. वैश्वीकरण एवं जनजातीय नृजातीयता से संबंध को दर्शाइए और इसके प्रभावों की समीक्षा कीजिए।

✪✪✪✪✪

9 भारत में विविधता (Diversity in India)

भारतीय समाज में विविधता (Diversity in Indian Society)

भारत विविधताओं का देश है। भारतीय समाज और संस्कृति के विभिन्न पक्षों में सर्वत्र अनेकता के दर्शन होते हैं। क्षेत्रगत, भाषागत, जातिगत, प्रजातिगत तथा धार्मिक विभिन्नता सम्पूर्ण समाज में व्याप्त है। इसी कारण भारतीय समाज एंव संस्कृति को एक रंगीन साड़ी नहीं वरन् बहु-रंगी चुनरी की संज्ञा दी जाती है। इस कथन का तात्पर्य है कि भारतीय संस्कृति में विभिन्न प्रकार के सांस्कृतिक तत्वों का एक अनुपम समन्वय देखने को मिलता है। भारतीय समाज में सैकड़ों जातियाँ और उपजातियाँ (Caste and Sub-castes) पायी जाती हैं। विभिन्न भाषा-भाषी लोग भी यहाँ मौजूद हैं।

साथ ही यह अनेक धर्मों का जन्म-स्थल भी है। यहाँ कोई हिन्दू है, तो कोई मुसलमान, कोई ईसाई है तो कोई बौद्ध, सिख आदि। यह देश भौगोलिक दृष्टि से भी अनेक क्षेत्रों में बंटा हुआ है। यहाँ जलवायु संबंधी भिन्नताएँ भी कम नहीं हैं। साथ ही यहाँ लोगों के रहन-सहन, खान-पान और वेशभूषा में भी कई प्रकार की भिन्नताएं दिखाई पड़ती हैं। भारतीय समाज में पायी जाने वाली विविधता का हम निम्न रूप में विवेचन कर सकते हैं:–

धार्मिक विविधता (Religious Diversity)

भारत विभिन्न धर्मों की भूमि है। कालान्तर में विभिन्न संस्कृतियों के लोगों के आगमन के फलस्वरूप यहाँ अन्य धर्मों का भी प्रसार हुआ जिससे धार्मिक विविधता और बढ़ती गयी।

यहाँ विभिन्न धर्मों को मानने वाले लोगों की संख्या का प्रतिशत इस प्रकार है- हिन्दू 79.8 प्रतिशत, मुसलमान 15.2 प्रतिशत, ईसाई 2.3 प्रतिशत, सिख 1.7 प्रतिशत, बौद्ध 0.7 प्रतिशत, जैन 0.4 प्रतिशत तथा अन्य 0.9 प्रतिशत। हिन्दू धर्म में अनेक देवी देवताओं की पूजा आराधना की जाती है। धार्मिक उत्सव, दान, व्रत, हवन, यज्ञ, तीर्थ-यात्रा आदि का विशेष महत्व है। बौद्ध धर्म में सुदृष्टि, सद्भाव, सद्भाषण, सद्कर्म, सद्निर्वाह, सद्प्रयत्न, सद्विचार और सद्ध्यान इन आठ संयमों पर बल दिया जाता है। जैन धर्म ने त्याग और अहिंसा पर बल दिया है। इस्लाम धर्म एक एकेश्वरवादी धर्म है। सिख धर्म एकेश्वरवादी व मूर्तिपूजा विरोधी है, धर्मों की विविधता भारत की अपनी रोचक विशेषता है। भारत में विभिन्न धर्मों में पायी जाने वाली विविधता की चर्चा हम निम्न रूपों में कर सकते हैं:–

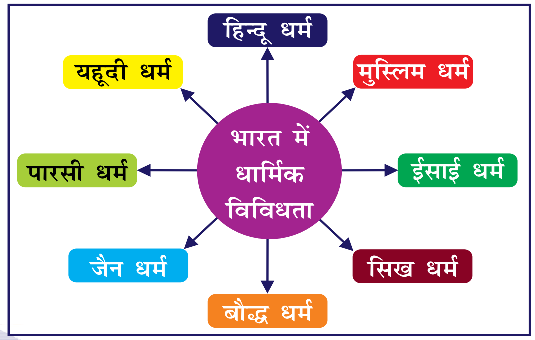

1. हिन्दू धर्म

मूल रूप से 'हिन्दू' शब्द न तो धर्म का प्रतीक था और न ही किसी विचारधारा का, इसके पीछे भौगोलिक परिस्थितियाँ (Geographical Conditions) थीं। प्राचीन ईरानियों ने सिंधु नदी के पूर्वी क्षेत्र को 'हिन्द' कहा और इस क्षेत्र में रहने वाले 'हिन्दू' कहलाए। कालांतर में हिन्दू शब्द धर्म और संस्कृति से जुड़कर रूढ़ हो गया और उस समय प्रचलित धर्म को 'हिन्दू धर्म' की संज्ञा दी गयी।

हिन्दू धर्म को समस्त ऊर्जा वेदों से मिलती है। वेदों की संख्या चार मानी गयी है–ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद। सबसे प्राचीन ऋग्वेद है, जिसके कुछ भागों की रचना 1000 ई.पू. से पहले हुई थी। शेष वैदिक साहित्य की रचना बाद में हुई। आर्यों के जीवन और संस्थाओं के ऐतिहासिक पुनर्निर्माण का आधार यही साहित्य हैं।

हिन्दू धर्म में सबसे अधिक सम्प्रदाय और उप-सम्प्रदाय (Sects and Sub-sects) हैं। हिन्दुओं में शिव, विष्णु और मातृदेवी जिसकी पूजा दुर्गा, काली और अन्य रूपों में की जाती है, महत्वपूर्ण देवी देवता हैं। अधिकतर पंथों संप्रदायों, उपसम्पद्रायों का उद्गम इन्हीं तीनों से हुआ है। इन पंथों में शिव और पार्वती के सम्प्रदाय सबसे प्राचीन हैं जबकि कृष्ण पंथ अपेक्षाकृत नया है।

हिन्दू धर्म के सम्प्रदाय एवं उप सम्प्रदाय निम्नलिखित हैं:-

- **वैष्णव सम्प्रदाय:–** इस सम्प्रदाय के लोग विष्णु को कृष्ण या राम के रूप में पूजते हैं। इसके प्रमुख सम्प्रदाय और उपसम्प्रदाय इस प्रकार हैं:-

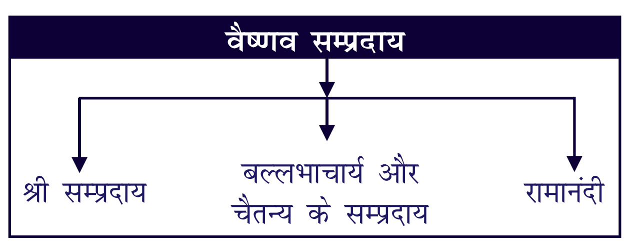

- ***शैव सम्प्रदाय:–*** इस सम्प्रदाय में भगवान शिव के विभिन्न रूपों की पूजा अर्चना की जाती है। इस सम्प्रदाय के उपसम्प्रदाय निम्नलिखित हैं:-

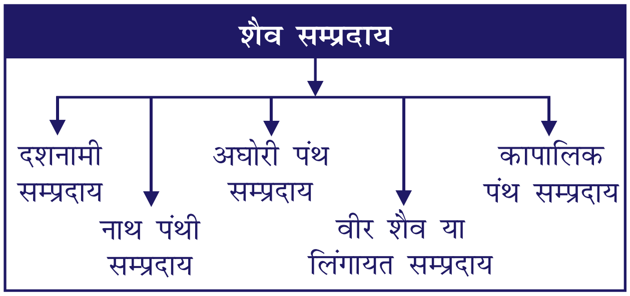

- ***शाक्त सम्प्रदाय:–*** शाक्त योग दर्शन में शक्ति (नारी शक्ति) को सर्वोच्च सत्ता माना गया है। इस सम्प्रदाय में दुर्गा, काली, भगवती, चामुण्डा, त्रिपुरा सुन्दरी, राजराजेश्वरी, पार्वती, सीता, राधा आदि देवियों की आराधना की जाती है। इस सम्प्रदाय के उपसम्प्रदाय निम्नलिखित हैं:–

हिन्दू धर्म विश्व के पुराने धर्मों में से एक है। यह एक बहुदेववादी (अनेक देवी-देवताओं) धर्म है। हिन्दुओं का सबसे अधिक प्रतिशत (95.17%) हिमाचल प्रदेश में है तथा सबसे कम प्रतिशत (2.75%) मिजोरम में है। हिन्दू धर्मावलम्बियों का अनुपात आंध्र प्रदेश, बिहार, गुजरात, हिमाचल प्रदेश, हरियाणा, कर्नाटक, मध्य प्रदेश, ओड़िसा, राजस्थान, तमिलनाडु एंव त्रिपुरा में राष्ट्रीय औसत से अधिक है तथा जम्मू एंव कश्मीर, मिजोरम, मेघालय, नागालैंड तथा पंजाब में राष्ट्रीय औसत से कम है।

जनगणना 2011 के अनुसार देश की लगभग 79.8 प्रतिशत आबादी हिन्दू है। देश के ज्यादातर भाग में यह मुख्य धर्म है लेकिन कुछ क्षेत्रों में, जैसे- कश्मीर घाटी, पंजाब, मिजोरम, मेघालय, नागालैंड तथा केरल के कुछ भागों में हिन्दू अल्पसंख्यक हैं।

2. मुस्लिम धर्म

अरबी मूल के शब्द 'इस्लाम' का अर्थ है, 'आत्म-समर्पण' (Surrender) इस धर्म के प्रवर्तक हजरत मोहम्मद थे। इस्लाम एकेश्वरवादी धर्म है। इस्लाम में दो मत हैं-शिया और सुन्नी। भारत में मुसलमानों की अधिकतम संख्या सुन्नियों की है। अपने आगमन के समय से लेकर वर्तमान काल तक इस्लाम लगभग हर क्षेत्र में भारतीय संस्कृति (Indian Culture) को प्रभावित करता रहा है। कला, संगीत, साहित्य, स्थापत्य कला के क्षेत्र में इस्लामी संस्कृति का व्यापक प्रभाव पड़ा। सूफी आंदोलन मध्य भारत के भक्ति आंदोलन (Bhakti Movement) और इस्लामी विचारों के संसर्ग का ही प्रभाव था।

मुस्लिम धर्मावलम्बियों की जनसंख्या के लिहाज से भारत का स्थान पाकिस्तान और इण्डोनेशिया के बाद विश्व में तीसरा है। मुस्लिम देश के सभी भागों में मौजूद हैं लेकिन इनका सबसे अधिक संकेन्द्रण उत्तर-प्रदेश, बिहार, आंध्र प्रदेश, महाराष्ट्र, केरल, जम्मू एंव कश्मीर तथा उत्तराखण्ड के दक्षिणी-जिलों में हैं। जम्मू एंव कश्मीर में मुस्लिमों का सबसे अधिक प्रतिशत (68%) है तथा यह मिजोरम में नगण्य (1.35%) है। असम, बिहार, झारखण्ड, जम्मू एंव कश्मीर, केरल, उत्तर प्रदेश तथा पश्चिम बंगाल में इनका अनुपात राष्ट्रीय औसत से अधिक है।

3. ईसाई धर्म

ईसा मसीह ने ईसाई धर्म की नींव डाली थी। यह धर्म चौथी शताब्दी में रोम साम्राज्य का राज्य धर्म बना गया था। बाद में रोमन चर्च दो समूहों में बंट गया था-रोम में पोप के अधीन पश्चिमी तथा एंटीओक, अलेक्जेन्ड्रिया और कुस्तुतुनिया के प्राधिधर्माध्यक्ष के अधीन पूर्वी चर्च, बाद में रोमन चर्च भी प्रोटेस्टेंट के रूप में टूटा और पूर्वी चर्चों के कई समुदायों ने अपने प्राधिधर्माध्यक्ष बनाए। ईसाई धर्म एक सर्वव्यापक (Omnipresent) धर्म है, जिसके अनुयायी विश्व में सबसे अधिक हैं। जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि यह धर्म भारत में पहली सदी ई॰ में आया जब सीरियाई गिरिजाघर की स्थापना केरल में की गई।

केरल में ईसाईयों की सबसे अधिक जनसंख्या है- कुल जनसंख्या का 18.4%। आंध्र प्रदेश, मेघालय, नागालैंड तथा तमिलनाडु में ईसाई 1 मिलियन से अधिक हैं। मिजोरम तथा गोवा में भी वे अधिक मात्रा में पाए जाते हैं। नागालैंड (88.1%) तथा मिजोरम (87.16%) की जनसंख्या में इनकी उच्चतम प्रतिशतता है।

4. सिख धर्म

सिख धर्म की स्थापना गुरु नानक साहेब द्वारा पंद्रहवीं सदी में की गई। इनका समय 1469-1538 ईसवी माना गया है। 'सिख' शब्द संस्कृत के 'शिष्य' से लिया गया है। गुरु नानक ने हिन्दू-मुस्लिम एकता पर बल देते हुए ऐसे मत का प्रवर्तन किया, जिसमें दोनों धर्मो की समर्पण भावना झलकती है। सिख धर्म में सम्प्रदायों का उदय ज्यादातर धार्मिक सुधारों और आंदोलनों के रूप में हुआ है। इनमें से कई सम्प्रदायों में हिन्दू और सिख दोनों इसके अनुयायी हैं। निरंकारी व्यास के राधास्वामी और नामधारी कुछ प्रमुख सम्प्रदाय हैं।

सिख देश की कुल आबादी का 2 प्रतिशत हिस्सा हैं (जनगणना, 2011)। सिख धर्म ने सामाजिक सौहार्द (Social Harmony) बनाने का प्रयास किया, यह धर्म हिन्दू जाति व्यवस्था को हटाना चाहता था एंव विधवा विवाह के पक्ष में था। लेकिन लम्बे समय तक यह पंजाब तक सीमित रहा तथा गुरुमुखी को अपनी भाषा माना। देश के सिखों की कुल जनसंख्या का 79% पंजाब में है। पंजाब के अलावा

सिख धर्मानुयायी हरियाणा, चंडीगढ़, दिल्ली, राजस्थान एंव उत्तर प्रदेश व उत्तराखण्ड (ऊधमसिंह नगर) के तराई क्षेत्रों में भी निवास करते हैं। वर्तमान में सिख देश के सभी भागों में देखे जा सकते हैं तथा ये विश्व के कई देशों ब्रिटेन, कनाडा, संयुक्त राज्य अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, केन्या, पाकिस्तान, अफगानिस्तान, सिंगापुर तथा हांगकांग में भी मौजूद हैं।

5. बौद्ध धर्म

बौद्ध धर्म की स्थापना उत्तर भारत में गौतम बुद्ध (563-483 ई॰ पू॰) द्वारा की गई। बुद्ध का ज्ञान दर्शन इस प्रकार है-दुख है, दु:ख का हेतु और दु:ख का निरोध है तथा दु:ख निरोध का मार्ग है। इन्हें 'चत्वारि आर्य सत्यानि' कहा जाता है। 'बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय' ही उनके उपदेश का सार है और आत्मसंयम उसका आधार है। वैशाली में 383 ई.पू. में द्वितीय बौद्ध सभा आयोजित हुई। इसमें नियमों में कुछ शिथिलता लायी गयी परिणामस्वरूप, बौद्धमत का दो सम्प्रदायों में विभाजन हो गया-स्थविर और महासंघिक।

बौद्ध मतावलम्बी देश के कुल जनसंख्या में एक प्रतिशत से भी कम हैं। 80% बौद्ध मतावलम्बी महाराष्ट्र में रहते हैं। बौद्ध धर्म का परम्परागत गढ़ लद्दाख, जम्मू एंव कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, सिक्किम, अरुणाचल प्रदेश तथा त्रिपुरा है।

6. जैन धर्म

भारत जैन धर्म का जन्म स्थान है। जैन धर्म के 24वें तीर्थंकर महावीर का जन्म वैशाली के पास कुंडलग्राम में वज्जि गण के जातृक कुल के राजा सिद्धार्थ के यहाँ ई.पू. 540 में हुआ था। महावीर स्वामी को ही जैन धर्म का वास्तविक संस्थापक माना जाता है। महावीर के दो वर्ष बाद जब मगध में भीषण अकाल पड़ा, तब भद्रबाहु के नेतृत्व में कुछ जैन धर्मावलम्बी दक्षिण दिशा की ओर चले गये और बाकी स्थल-बाहु के नेतृत्व में मगध में रहे। पाटलिपुत्र में मगध के जैनों ने एक संगति (Fallowship) बुलाई जिसमें दक्षिण वाले शामिल नहीं हुए। तब से दक्षिण वाले दिगंबर और मगध वाले श्वेताम्बर कहलाए।

भारत में यह एक अल्पसंख्यक धर्म है (0.1%)। अन्य देशों में इस धर्म के अनुयायियों की संख्या नगण्य है। इस धर्म के अनुयायी महाराष्ट्र, राजस्थान, गुजरात , मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, उत्तराखण्ड तथा कर्नाटक में देखे जा सकते हैं, खासकर शहरी क्षेत्रों में जैनियों का व्यवसाय तथा राजनीति पर अच्छा खासा प्रभाव है।

7. पारसी धर्म

पारसी संत जरथुस्त्र इस धर्म के संस्थापक माने जाते हैं। इनका समय ई.पू. 6ठीं सदी या 7वीं सदी माना जाता है। इस धर्म का केन्द्र बिन्दु यह है कि अच्छे और बुरे के बीच संघर्ष होता है। देश में पारसियों की संख्या लगभग 1.67 लाख है। पारसी साम्राज्य के दिनों में यह एक प्रमुख धर्म था। इस धर्म के नीतिशास्त्र (Ethics of Religion) का सार तीन शब्दों से समझा जा सकता है: हुमाता (अच्छे विचार), हुकता (अच्छी बोली) तथा हुवर्सता। पारसियों का धार्मिक ग्रंथ किनकरी है।

पारसी सबसे पहले भारत में 766 ई॰ में आए (दीव)। उन्होंने अपनी 'कॉलोनी' (उपनिवेश) को भारत स्थानान्तरित किया (1490) । वहाँ से उनका विस्तार नवसारी तथा उदवाड़ा तक हुआ। उन पर हिन्दू रीति-रिवाजों (Custom and Tradition) का प्रभाव पड़ा है लेकिन वे ब्रह्मचर्य की वकालत नहीं करते हैं। पारसी धर्म पुनर्विवाह की इजाजत देता है। लगभग 80% पारसियों की आबादी वृहत् मुंबई में केन्द्रित है तथा अन्य नवसारी, उदवाड़ा, सूरत तथा अहमदाबाद में हैं।

8. यहूदी धर्म

विश्व के प्रमुख प्राचीनतम धर्मों में से एक यहूदी धर्म एकेश्वरवाद में विश्वास रखता है। यहूदियों के इस धर्म से ही ईसाइयत और इस्लाम विकसित हुए। इस धर्म के आधारभूत नियम व शिक्षा 'तोराह-मूल' हिब्रू बाइबिल की प्रथम पांच पुस्तकों-पर आधारित हैं। भारत में यहूदियों के दो समुदाय हैं-मलयालम भाषी 'कोचीनी' और मराठी भाषी 'बेने इजराइल'। लगभग 2000 वर्ष पहले यहूदी शरणार्थी भारत के पश्चिमी तट पर आकर बसे थे। यद्यपि उनकी संख्या कम है, किन्तु प्रारम्भ से ही उन्हें अपने अंदाज में जीने, अपने सिनागॉग (यहूदी प्रार्थना भवन) बनवाने की अनुमति प्रदान की गयी है।

भारत के अधिकांश भाग में हिन्दू धर्म एंव संस्कृति का प्रभुत्व है तथा कहीं-कहीं मुस्लिम, ईसाई, सिख, बौद्ध मतावलम्बी एंव जनजातियों की भी आबादी देखी जा सकती है। उत्तर पूर्वी पहाड़ी राज्यों में ईसाइयों, जनजातियों, हिन्दुओं तथा मुस्लमानों की मिश्रित जनसंख्या है। इस्लाम धर्म के अनुयायियों की बहुसंख्या वाला क्षेत्र जम्मू एंव कश्मीर राज्य का कश्मीर प्रखण्ड तथा कारगिल क्षेत्र है। मुस्लिम उत्तरी केरल, आगरा, मेरठ, लखनऊ, रोहेलखण्ड तथा उत्तर प्रदेश के सहारनपुर प्रखण्ड में भी अच्छी खासी संख्या में हैं। पंजाब तथा केन्द्र शासित प्रदेश चंडीगढ़ देश का सिख बहुल क्षेत्र है।

भाषायी विविधता (Linguistic Diversity)

मानवीय अभिव्यक्ति (Expression) का सर्वोत्तम साधन मानव की भाषा होती है। भाषा के माध्यम से ही विभिन्न सांस्कृतिक तत्वों को एक पीढ़ी दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित किया जाता है। भारत विभिन्न भाषा-भाषी लोगों का देश है। हमारे देश में 189 भाषाएँ तथा 544 बोलियाँ प्रचलित हैं। भारतीय संविधान में 22 भाषाओं को मान्यता दी गयी है। इन 22 भाषाओं के अतिरिक्त मालवी, मारवाड़ी, भोजपुरी, पहाड़ी, राजस्थानी आदि भाषाएँ भी यहाँ महत्वपूर्ण हैं जिनका प्रयोग लोग बोलचाल में करते हैं।

भारत में बोली जाने वाली भाषाओं का संबंध निम्नलिखित भाषायी समूहों (Linguistic groups) से हैं:-

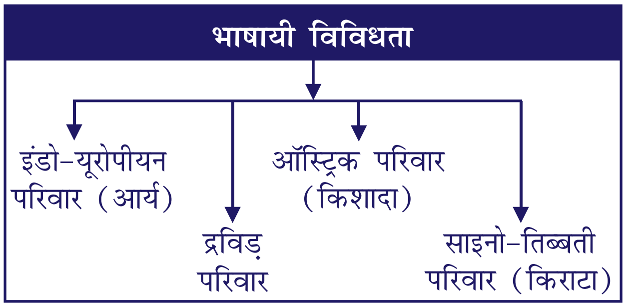

इंडो यूरोपीयन परिवार (आर्य)

यह भारतीय भाषाओं का सबसे प्रमुख भाषाई समूह है, जो उत्तरी भारत के ज्यादातर लोगों द्वारा बोली जाती है। इस भाषा का प्रमुख क्षेत्र खड़ी बोली का प्रदेश कहलाता है, जिसमें हरियाणा तथा पश्चिमी उत्तर प्रदेश शामिल हैं। इस क्षेत्र से दूर जाने पर इस भाषा से विभिन्न रूप तथा इससे बनी उप-भाषाएँ (Sub-languages) देखी जा सकती हैं। प्रो॰ ए॰ अहमद ने प्रमुख केन्द्र (Core Area) से दूर विभिन्न दिशाओं में खड़ी बोली के विसरण (Diffusion) का एक आरेख निरूपण (Formulation) किया है।

दार्दी, कोहिस्तानी, कश्मीरी, लहनदा, सिन्धी, गुजराती, मराठी, बंगाली, असमिया, बिहारी, अवधी, बाघेली, कच्छी, उड़िया, छत्तीसगढ़ी, हिन्दी, पंजाबी, राजस्थानी, नेपाली तथा पहाड़ी इस भाषा की शाखाएँ हैं।

हिन्दी (राष्ट्रीय भाषा) इंडो-यूरोपीयन परिवार की मुख्य भाषा है, जो देश की 40% आबादी द्वारा बोली जाती है। यह मुख्य रूप से बिहार, दिल्ली, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान, उत्तर प्रदेश तथा उत्तराखण्ड में बोली जाती है।

उर्दू का नजदीकी संबंध हिन्दी भाषा से है। उर्दू बिहार, दिल्ली, हैदराबाद, जम्मू एंव कश्मीर, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश तथा नगरीय भारत के ज्यादातर स्थानों में लोकप्रिय है।

द्रविड़ परिवार

भारतीय भाषाओं के द्रविड़ परिवार में तेलुगू (आंध्र प्रदेश), कन्नड़ (कर्नाटक), तमिल (तमिलनाडु) तथा मलयालम (केरल) शामिल हैं, जो देश में 22% लोगों द्वारा बोली जाती हैं।

ऑस्ट्रिक परिवार

ऑस्ट्रिक भाषा छत्तीसगढ़, झारखण्ड, मध्य प्रदेश, मेघालय, उड़ीसा तथा पश्चिम बंगाल के जनजातीय समूहों द्वारा बोली जाती है। यह भाषा दो मुख्य शाखाओं से संबंध रखती है- (1) मुंडा (संथाली), तथा (2) मोन-खमेर (खासी तथा निकोबारी)। मोन खमेर (खासी) खासी तथा जयंतिया पहाड़ों (मेघालय) तक ही सीमित है तथा निकोबारी निकोबार द्वीप तक ही सीमित है। मुंडा भाषा छत्तीसगढ़, झारखण्ड, मध्य प्रदेश, उड़ीसा तथा पश्चिम बंगाल के जनजातियों द्वारा बोली जाती है।

चीनी-तिब्बती परिवार

चीनी-तिब्बती भाषा मुख्यत: हिमालय क्षेत्र में बोली जाती है। इसके तीन प्रमुख उप-विभाजन (Sub-division) हैं:-

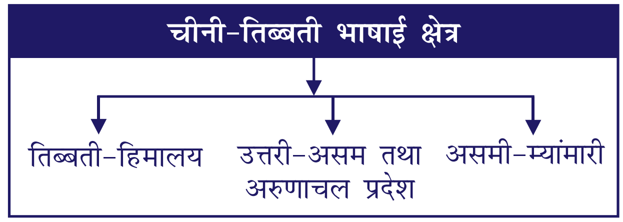

1. ***तिब्बती-हिमालय–*** इसमें हिमाचल प्रदेश की चम्बा, लाहौली, किन्नौरी तथा लेपचा भाषाएँ शामिल हैं। बालटी,भूटिया, लद्दाखी तथा तिब्बती -भाषा जम्मू एंव कश्मीर राज्य के उत्तरी भाग में बोली जाती हैं।
2. ***उत्तरी-असम तथा अरुणाचल प्रदेश–*** उत्तरी असम तथा अरुणाचल प्रदेश की मुख्य भाषाएँ हैं- अबोर, अका, असमियाँ, डाफला, मिरि तथा मिशिंग।
3. ***असमी-म्यांमारी–*** ये भाषा असम के लोगों, बोडो, कोच्चि, कुकीचीन, मिरी, नागा तथा जाकसा जनजातियों द्वारा बोली जाती है।

भारतीय राज्यों की रूपरेखा (Framework) 1956 में भाषा के आधार पर तय की गई। प्रत्येक अनुसूचित भाषा का एक विशेष प्रदेश होता है, जहाँ अधिकांश आबादी द्वारा इस भाषा को बोला जाता है। इस प्रदेश (राज्य) में ही उस भाषा का केन्द्र (Core) भी होता है। भाषाई प्रदेश की सीमा एक निर्धारित रेखा नहीं होती, बल्कि एक परिवर्ती (Variable) क्षेत्र होता है, जहाँ धीरे-धीरे एक भाषा अपना प्रभाव खो देती है तथा दूसरी भाषा का प्रभाव क्षेत्र शुरू हो जाता है। अनेक क्षेत्रों में भाषाओं का मिश्रण भी देखने को मिलता है। इसके अलावा कई राज्यों में निकटवर्ती राज्य की मुख्य भाषा उस राज्य की दूसरी प्रमुख भाषा होती है, जिसे उस राज्य के दूसरे सबसे बड़े समूह द्वारा बोला जाता है, उदाहरण के लिये केरल में तमिल दूसरी प्रमुख भाषा है तथा तमिलनाडु में तेलगु दूसरी प्रमुख भाषा है। उर्दू कर्नाटक तथा आंध्र प्रदेश में दूसरी प्रमुख भाषा है।

हिन्दी भाषा देश की अधिकारिक भाषा है, जिसे देश के लगभग 40% लोगों द्वारा बोला जाता है। हिन्दी भाषा के क्षेत्र में उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश, राजस्थान, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखण्ड तथा दिल्ली शामिल हैं, जहाँ 90% आबादी हिन्दी बोलती है।

उर्दू मूलत: हिन्दी का एक रूपभेद (Formdifference) है, जिसे देवनागरी-लिपि की बजाय अरबी/ फारसी लिपि में लिखा जाता है। इसका जन्म भारत में हुआ, लेकिन एक ठोस प्रादेशिक आधार के अभाव में यह भाषा वास्तव में 'बेघर' है। जम्मू एंव कश्मीर ने इस भाषा को राज्य की आधिकारिक भाषा माना है। यह देश के लगभग 8% आबादी की मातृ-भाषा है। यह मुख्यत: उत्तर प्रदेश,

बिहार, हरियाणा, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, दिल्ली तथा उत्तराखण्ड में बोली जाती है। गुजराती तथा कन्नड़ का इस क्रम में अगला स्थान है। द्रविड़ भाषाओं में मलयालम को बोलने वाले सबसे कम लोग हैं। इस भाषा का केन्द्र केरल (92%) है तथा विस्तार तमिलनाडु, महाराष्ट्र व आंध्र प्रदेश तक है।

बंगाली भाषा भारत के पश्चिम बंगाल और बांग्लादेश की आधिकारिक भाषा है, लेकिन यह इसके आस-पास असम, बिहार, झारखण्ड, उड़ीसा तथा त्रिपुरा राज्य में भी बोली जाती है। उड़िया की एक विशेषता यह है कि यह पुरानी अपभ्रंश है तथा इसे संस्कृत द्वारा समृद्ध किया गया है। असमिया भाषा का एक भिन्न उच्चारण तथा व्याकरण है लेकिन इसे अक्सर बंगाल-असम समूह में शामिल किया जाता है।

सांस्कृतिक विविधता (Cultural Diversity)

भारत के विभिन्न प्रदेशों में भाषा, रहन-सहन, खान-पान, वेश-भूषा, कला, संगीत, तथा नृत्य, लोकगीत, लोकगाथा, विवाह-प्रणाली तथा जीवन संस्कारों में हमें अनेक रोचक व आकर्षक भेद देखने को मिलते हैं। ग्रामीण और नगरीय लोगों की, हिन्दू और मुसलमानों की, परम्परावादी और आधुनिक कहे जाने वाले लोगों की वेश-भूषा और खान-पान में रात दिन का अंतर है। यहाँ विभिन्न नृत्य शैलियों के अतिरिक्त तुर्की, ईरानी, भारतीय व पाश्चात्य चित्रकला मूर्तिकला तथा वास्तुकला के विविध रूप देखने को मिलते हैं। यहाँ मंदिरों, मस्जिदों, गिरजाघरों, स्तूपों आदि में कला की भिन्नताओं का सरलता से पता लगाया जा सकता है।

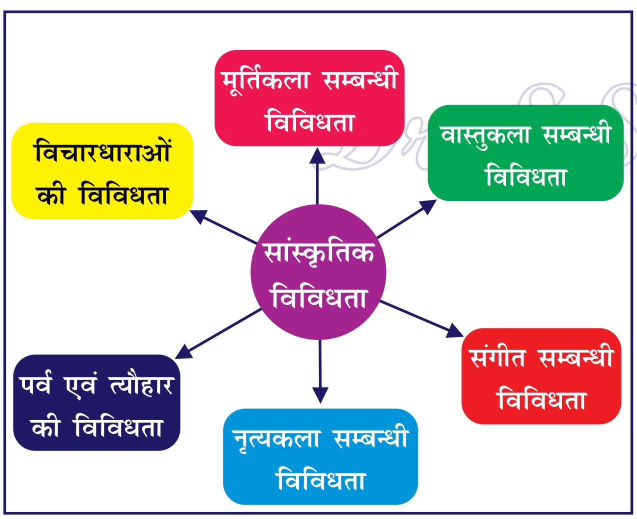

मूर्तिकला सम्बन्धी विविधता (Sculptural Variety)

भारत में मूर्तिकला की दो परम्परागत शैली प्रचलित रही है। पहली गंधार शैली है, यह शैली रोमन प्रभाव से मुक्त है इसमें मुख्यत: काले पत्थरों का प्रयोग किया जाता है। इसमें बुद्ध को घुंघराले बालों में चित्रित किया गया है। मूर्तिकला की दूसरी शैली मथुरा शैली है, यह देशी शैली है इसमें लाल बलुआ पत्थरों का प्रयोग किया गया है।

वास्तुकला सम्बन्धी विविधता (Architectural Diversity)

भारत में वास्तुकला की तीन शैलियाँ प्रचलित रही हैं। प्रथम नागर शैली है, जिसका विस्तार उत्तर भारत में रहा है, द्वितीय द्रविड़ शैली है, जिसका विस्तार दक्षिण भारत में रहा है एवं तीसरी बेसर शैली है जो उपरोक्त दोनों शैलियों का मिश्रित रूप है, इसका विस्तार मध्य भारत में देखा जा सकता है।

संगीत सम्बन्धी विविधता (Musical Diversity)

भारत में शास्त्रीय संगीत की दो मुख्य शैलियाँ प्रचलित रही हैं। पहली हिन्दुस्तानी शैली है, जिसका प्रसार मुख्यत: उत्तर भारत में देखा जाता है। द्वितीय कर्नाटक शैली रही है, जिसका प्रसार मुख्यत: दक्षिण भारत में रहा है।

शास्त्रीय संगीत के अतिरिक्त विभिन्न क्षेत्रों में लोक संगीत की भी अपनी परम्परा रही है।

नृत्यकला सम्बन्धी विविधता (Choreographic Diversity)

आधुनिक विश्व में नृत्य को सर्वाधिक चित्ताकर्षक (Captivating) व माधुर्यपूर्ण (Melodious) कला माना जाता है। प्राचीनतम कला के रूप में भी नृत्य कला स्वीकृत है। आदिम युग में मानव अपने हृदयावेग को सर्वदा अंग-प्रत्यंग की गति की सहायता से प्रकट करते थे। वही क्रमशः नृत्यकला के रूप में विकसित हुआ।

भारत में नृत्य परंपरा 2000 वर्षों से भी ज्यादा वर्षों से निरन्तर चली आ रही है। नृत्य की विषयवस्तु धर्मग्रंथों, लोककथाओं और प्राचीन साहित्य पर आधारित रहती है। इसकी दो प्रमुख शैलियाँ- शास्त्रीय नृत्य और लोकनृत्य। शास्त्रीय नृत्य वास्तव में प्राचीन नृत्य परंपराओं पर आधारित होते हैं और इसकी प्रस्तुति के नियम कठोर हैं। इसमें प्रमुख हैं-'भरतनाट्यम', 'कथककली', 'कत्थक', 'मणिपुरी', 'कुचिपुड़ी', और 'ओडिसी'। 'भरतनाट्य' मुख्यत: तमिलनाडु का नृत्य है। 'कथकली' केरल की नृत्यशैली है। 'कत्थक' भारतीय संस्कृति पर मुगल प्रभाव से विकसित नृत्य का एक अहम शास्त्रीय रूप है। मणिपुर की नृत्य शैली 'मणिपुरी' में कोमलता और गीतात्मकता है जबकि 'कुचिपुड़ी' की जड़ें आंध्र प्रदेश में हैं। उड़ीसा का 'ओडिसी' प्राचीनकाल में मंदिरों में नृत्य रूप में प्रचलित था जो अब समूचे भारत में प्रचलित है। लोकनृत्य और आदिवासी नृत्य की भी विभिन्न शैलियाँ प्रचलित हैं।

पर्व एवं त्यौहारों की विविधता (Diversity of Religion and Festivals)

नानाविध धर्मों एवं भाषाओं की इंद्रधनुषी आभा से दीप्तिमान भारत देश के रंग-बिरंगे पर्व त्यौहार और मेले इसके सामाजिक जीवन के अभिन्न अंग हैं, जिनके बिना इस देश की संस्कृति अधूरी है। भारत के विभिन्न धर्मों एवं क्षेत्रों में मनाए जाने वाले पर्व एवं त्यौहारों के भी विविध रूप रहे हैं, जिसकी चर्चा हम निम्न रूपों में कर सकते हैं-

- हिन्दुओं के पर्व त्यौहार पूरे वर्ष बनाए जाते हैं। इनमें से कुछ तो हिन्दुओं के सभी सम्प्रदायों व वर्गों (Sects and Class) द्वारा

मनाए जाते हैं और कुछ क्षेत्रीय स्तर पर मनाए जाते हैं। कुछ प्रमुख हिन्दू पर्व एवं त्यौहार निम्नलिखित हैं:– मकर सक्रांति, लोहड़ी, पोंगल, बिहू, होली, दशहरा, दीपावली, रक्षाबंधन, गुरुपूर्णिमा इत्यादि।

- मुसलमानों के त्यौहार एवं धार्मिक दिन निश्चित तिथि को नहीं पड़ते, किन्तु प्रत्येक वर्ष लगभग 11 दिन पहले आते हैं। मुस्लिम त्यौहारों में ईद-उल-फितर, रमजान, ईद-उल-जुहा (बकरीद), मोहर्रम प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त सूफी संतों की कब्र पर उर्स का मेला लगता है। अजमेर में ख्वाजा मोइनुद्दीन चिश्ती की दरगाह पर उर्स का मेला लगता है, जिसमें हिन्दू और मुसलमान दोनों ही बड़ी श्रद्धा से भाग लेते हैं।
- ईसाइयों के भी अपने पर्व-त्योहार हैं। इनमें 'ईस्टर', 'क्रिसमस' इत्यादि प्रमुख हैं। ईस्टर एक समारोही उत्सव है। यह ईसा मसीह के क्रूस पर लटकाए जाने के बाद उनके जीवित होने का उत्सव है। ईस्टर में समाप्त होने वाले पवित्र सप्ताह से जुड़े दिन हैं-'पाम संडे', इसे यीशु के जेरूसलम में प्रवेश का दिन मानते हैं, 'मॉन्डी थर्सडे', जो ईसा का आखिरी भोजन का दिन है, इस दिन उन्हें गिरफ्तार कर कैद में रखा गया था, 'गुड फ्राइडे', यह क्रूस पर ईसा के मरने का दिन है-यह शोक का दिन है, 'होली सैटरडे', यह पूरी रात जगने से जुड़ा है और 'ईस्टर संडे' को ईसा के पुनर्जीवन (Resuscitation) का दिन मानते हैं।
- 'क्रिसमस' ईसाइयों के लिए अत्यंत खुशी का दिन है। यह ईसा मसीह का जन्मोत्सव है। 25 दिसम्बर को यह उत्सव मनाया जाता है।
- सिख अपने गुरुओं का जन्मोत्सव 'गुरुपर्व' मनाते हैं। गुरु नानक का गुरुपर्व कार्तिक पूर्णिमा को पड़ता है और इसे बड़ी धूम-धाम से मनाया जाता है। गुरु गोविंद सिंह का गुरुपर्व भी उतनी ही श्रद्धा व धूम-धाम से मनाया जाता है।
- बौद्ध वैशाख पूर्णिमा को बुद्ध जयंती मनाते हैं। यह बुद्ध के जन्म के साथ-साथ उनके ज्ञान प्राप्त करने का भी परिचायक है। लद्दाख के हेमस बौद्ध विहार में गोम्पा के संरक्षक इष्टदेव गुरु पद्मसम्भव के जन्म का वार्षिक उत्सव मनाया जाता है।
- जैनियों के 24वें और अंतिम तीर्थंकर महावीर का जन्म दिन महावीर जयंती के रूप में मनाया जाता है।
- पारसियों का सबसे महत्त्वपूर्ण त्योहार 'नवरोज' है यानि नया दिन। यह वसंत विषुव यानि 20 मार्च को मनाया जाता है। यह शाश्वत नवरोज का उल्लास भरा उत्सव है, जब अहुर मजदा का साम्राज्य पृथ्वी पर आएगा। पारसियों का एक सम्प्रदाय 'फासलिस' नवरोज को नववर्ष के रूप में मनाते हैं। अगस्त-सितंबर में पारसी, अपना नव वर्ष 'पतेती' मनाते हैं। इसके एक सप्ताह पश्चात् वे जरथुस्त्र का जन्म 'खोरदद साल' मनाते हैं। इन उत्सवों पर दिए जाने वाले प्रीतिभोज 'गहम्बर' कहलाते हैं।

विचारधाराओं की विविधता (Diversity of Ideologies)

प्राचीन काल से भारत में अनेक दार्शनिक विचारधाराओं का अस्तित्व रहा है। वास्तव में, अनेक विचारधाराओं का सहअस्तित्व (Coexistence) व एक दूसरे के प्रति सहिष्णुता (Tolerance) का भाव प्राचीन काल से ही भारतीय संस्कृति की अद्वितीय विशेषता रही है। इन दार्शनिक विचारधाराओं में अद्वैतवाद, द्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद, द्वैताद्वैतवाद, जैन, बौद्ध, न्याय, मीमांसा, वैशेषिक, योग, चार्वाक आदि दर्शनों का प्रमुख स्थान है।

भौगोलिक विविधता (Geographical Diversity)

भारत में यदि एक ओर हिम से ढकी हुई व आकाश को छूती पर्वतों की चोटियाँ और हिमालय की लम्बी व ऊंची पर्वत श्रेणियाँ हैं, तो दूसरी ओर समुद्र की लहरों से खेलते हुए विस्तृत उपजाऊ मैदान है। यदि एक ओर राजस्थान का शुष्क मरुस्थल है जहाँ मीलों मानव का नामोनिशान तक नहीं है, तो दूसरी ओर सिन्धु-गंगा का मैदान भी है, जहाँ कोटि-कोटि मानव-जीवन हिलोरें ले रहे हैं। यहाँ दोमट और कछारी, काली और लाल विभिन्न प्रकार की मिट्टियां पायी जाती हैं। किसी क्षेत्र की जमीन सोना उगलती है, तो किसी क्षेत्र की जमीन में बबूल भी नहीं उगता। इस भौगोलिक विविधता का प्रभाव यहाँ के निवासियों के रंग-रूप, बनावट, रहन-सहन, वेश- भूषा, साज-सज्जा, भाषा, धर्म और विधि- विधानों पर पड़ता है।

भारत की जलवायु में भी बड़ी भिन्नता देखने को मिलती है। भारत को भौगोलिक दृष्टि से पांच बड़े प्राकृतिक खण्डों में विभाजित किया गया है।

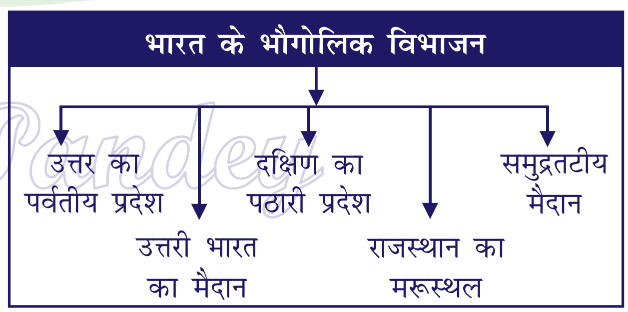

इन विभिन्न क्षेत्रों में जलवायु संबंधी काफी भिन्नता देखने को मिलती है। मैदानी क्षेत्रों में ऋतु एवं तापमान में परिवर्तन आता रहता है। पहाड़ी क्षेत्रों में अधिकांशतः सर्दी का मौसम रहता है, तो दूसरी ओर रेगिस्तानी प्रदेशों में गर्मी का। कई प्रदेशों में भारी वर्षा होती है, तो कई क्षेत्रों में साल भर में मुश्किल से दो-चार इंच वर्षा होती है। अतएव विभिन्न स्थानों की सांस्कृतिक भिन्नता (Cultural Differences) का एक कारण जलवायु संबंधी भिन्नता भी है।

प्रजातीय विविधता (Racial Diversity)

भारत प्रजातियों का एक अजायबघर है। यहाँ प्रमुखतः नीग्रीटो, प्रोटो ऑस्ट्रेलियाड, नार्डिक, भूमध्य सागरीय, मंगोल और आर्य भाषा-भाषी

प्रजाति जैसे अल्पाइन, दीनारिक, अर्मीनियाई आदि पायी जाती है। यही कारण है कि भारत की अपनी कोई विशुद्ध प्रजाति नहीं है। यह कहा जाता है कि 'स्मरणातीत युगों से भारत परस्पर विरोधी प्रजातियों और सभ्यताओं का संगम स्थल रहा है और इसमें आत्मसातीकरण (Assimilation) तथा समन्वय की प्रक्रियाएं चलती रही हैं। सभी प्रजातियों में शारीरिक विविधताओं के साथ-साथ रहन-सहन, खान-पान, वेश-भूषा, रीति-रिवाज एवं प्रथा परंपराओं संबंधी भिन्नताएँ भी पायी जाती हैं।

गुहा का वर्गीकरण (Classification of Guha)

डॉ. बी॰एस॰ गुहा (भारत के मानव वैज्ञानिक सर्वेक्षण के पूर्व निदेशक) ने भारत की प्रजातियों का वर्गीकरण 1913 की जनगणना संचालन से प्राप्त भौतिक मापन के आधार पर किया है। गुहा द्वारा दिया गया भारतीय प्रजातियों का वर्गीकरण, सबसे विश्वसनीय माना जाता है। गुहा ने भारत में निम्नलिखित छः प्रजातीय समूहों (Ethnic Groups) को मान्यता दी है:—

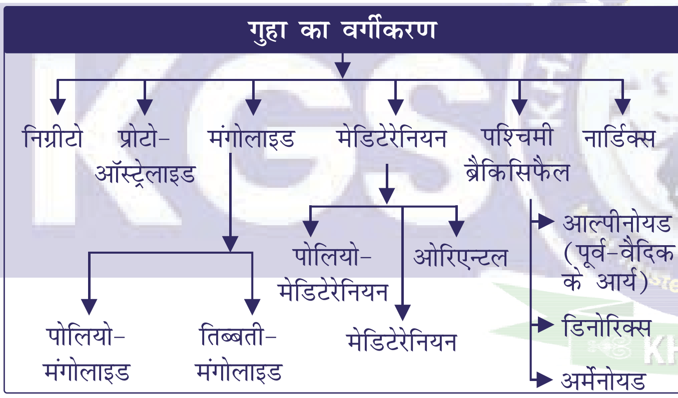

1. ***निग्रीटो—*** संभवतः निग्रीटो भारत में सबसे पहले आने वाली मानव प्रजाति थी। इस प्रजाति की विशेषता इनका छोटा कद (150 से॰मी॰), घुँघराले बाल, गोल ललाट, चपटी नाक, बाहर की ओर निकला हुआ जबड़ा, छोटी ठुड्डी, काला रंग, कमजोर हाथ तथा लम्बी भुजाएं हैं। इस प्रजाति के प्रतिनिधि हैं- अंडमानी तथा निकोबारी (अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह), इरूला, कादार, कनिकार, मुथाईवान, पनियन, पुलियन, तथा उराली जो तमिलनाडु, केरल तथा कर्नाटक के पहाड़ों पर रहते हैं।

   अंगामी-नागा में निग्रीटो की कुछ विशेषता पाई जाती हैं। यह माना जाता है कि निग्रीटो प्रजाति के लोग अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह में (जारवा, ओंगे, सेंटिनलीज, शैम्पेन इत्यादि) मलेशिया के प्रायद्वीप से आए थे। रूप रंग, संस्कृति तथा रिवाजों में ये प्रजातियां मलेशियाई प्रायद्वीप की सेमाँग तथा सकाई जनजाति के अत्यंत करीब हैं।

2. ***प्रोटो-ऑस्ट्रेलाइड—*** निग्रीटो के बाद, भारत में प्रोटो ऑस्ट्रेलाइड का प्रवेश संभवतः आस्ट्रेलिया से हुआ। उनके प्रतिनिधि अभी भी भील, चेंचु, होस, कुरूम्बा, मुंडा, संथाल तथा येरूवा जनजातियों में मौजूद हैं। इस प्रजाति के लोग गहरे भूरे या काले-भूरे रंग के होते हैं, उनकी नाक चौड़ी होती है, बाल घुँघराले, कद छोटा तथा होंठ मोटे व बाहर की ओर निकले हुए होते हैं।

3. ***मंगोलाइड—*** मंगोलाइड चीन, मंगोलिया, तिब्बत, मलेशिया, थाइलैंड तथा म्यांमार से भारत आए। इस प्रजाति ने जम्मू एवं कश्मीर के लद्दाख क्षेत्र, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखण्ड, सिक्किम, हिमालय तथा हिमालय के सीमांत क्षेत्रों (Marginal Areas) एवं भारत के उत्तर-पूर्वी राज्यों को अधिकृत किया।

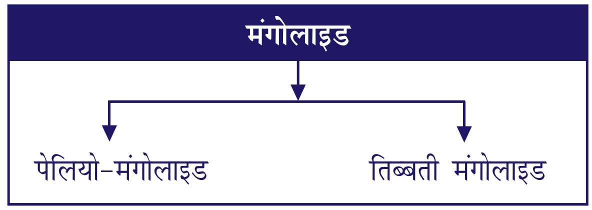

डॉ॰ बी॰एस॰ गुहा ने मंगोलाइड के दो उप-समूहों को मान्यता दी:—

(a) पेलियो-मंगोलाइड— सबसे आदिम मंगोलाइड प्रजाति का प्रकार है। इसके लम्बे बदन पर कम बाल होते हैं। यह प्रजाति हिमालय के सीमांत प्रदेश में पाई जाती हैं, विशेषकर अरुणाचल, असम तथा भारत म्यांमार सीमा से लगे जिलों में। डफला, गारो, कचारी, खासी, कुकी-नागा, लालुंग, माची, मिरी तथा टिप्पेरा इस प्रजाति के प्रतिनिधि हैं।

(b) तिब्बती-मंगोलाइड— भूटान, हिमाचल प्रदेश, नेपाल, सिक्किम तथा उत्तराखण्ड में पाए जाते हैं। इस प्रजाति की विशेषता लम्बा कद, हल्का पीला रंग, बदन पर प्रचुर मात्रा में बाल, तिरछी आँखे, लम्बी नाक तथा चपटा चेहरा है। भूटिया, गोरखा, लद्दाखी, किन्नौरी तथा थारू तिब्बती-मंगोलाइड प्रजाति समूह के प्रतिनिधि हैं।

4. ***मेडिटेरेनियन—*** डॉ॰ गुहा के अनुसार यह प्रजाति मेडिटेरेनियन क्षेत्र से भारत आयी। डॉ॰ गुहा ने मेडिटरेनियन प्रजाति के तीन उप-समूहों की खोज की, ये हैं:—

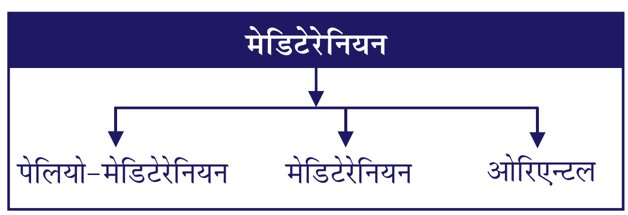

(a) पेलियो-मेडिटेरेनियन— पेलियो मेडिटेरेनियन सबसे पुराना समूह है। इनकी विशेषता इनका छोटा कद, लम्बा सिर, छोटी तथा मध्यम नाक एवं भूरा रंग है। इस प्रजाति का भारतीय उपमहाद्वीप में प्रवेश संभवतः नवपाषाण काल में हुआ तथा वे विंध्य पर्वत के दक्षिण के एकाकी एवं सापेक्षिक (Isolated and Relative) एकाकी क्षेत्रों में फैल गए।

(b) मेडिटेरेनियन– इस प्रजाति का मध्यम कद, जैतूनी–भूरा रंग, लम्बा सिर तथा बड़ी आँखे होती हैं। यह प्रजाति हरियाणा, पंजाब, उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र तथा केरल में पायी जाती है।

(c) ओरिएन्टल मेडिटेरेनियन– यह प्रजाति भारत में प्रवेश करने वाली अंतिम प्रजाति है। यह प्रजाति अपने लम्बे एवं उत्तल नाक तथा गोरे रंग से पहचानी जाती है। यह प्रजाति राजस्थान, पंजाब, हरियाणा, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, तथा उत्तराखण्ड के दक्षिणी भाग (हरिद्वार तथा ऊधमसिंह नगर) तक सीमित हैं।

5. ***पश्चिमी ब्रैकिसिफैल*–** डॉ॰ गुहा ने इस प्रजाति को तीन उप-समूहों (Sub-group) में विभाजित किया–

पश्चिमी ब्रैकिसिफैल

- आल्पीनोयड (पूर्व-वैदिक काल के आर्य)
- डिनेरिक्स
- अर्मेनोयड

(a) आल्पीनोयड (पूर्व-वैदिक काल के आर्य)– इस प्रजाति का प्रवेश सिन्धु घाटी में हुआ तथा वे गुजरात, महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, केरल तथा तमिलनाडु में फैल गए। बाद में इनका प्रवेश गंगा की घाटी में हुआ तथा वे पश्चिम बंगाल तथा उड़ीसा तक जा पहुंचे। इस प्रजाति की विशेषता मध्यम कद, गोल चेहरा, लम्बे सीधे बाल तथा गोरा रंग होता है।

(b) डिनेरिक्स– डिनेरिक्स ने आल्पीनोयड का अनुसरण (Pursuance) किया तथा गुजरात, महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, केरल तथा तमिलनाडु तक जा पहुंचे इस प्रजाति की विशेषता इनका लम्बा कद, भूरा रंग, लम्बा चेहरा तथा तीखी नाक है। यह प्रजाति आल्पीनोयड के साथ मिल गई है। इस प्रजाति के मुख्य प्रतिनिधि मुख्यत: काठियावाड़ तथा कुर्ग (कर्नाटक) में पाए जाने वाले लोग हैं।

(c) अर्मेनोयड– अर्मेनोयड अर्मेनिया से भारत आए। इस प्रजाति की विशेषता इनका मध्यम कद, चौड़ा सिर, लम्बी नाक तथा इनके बदन पर बाल है। इस प्रजाति के मुख्य प्रतिनिधि मुख्यत: मुंबई तथा गुजरात के पारसी हैं।

6. ***नार्डिक्स*–** नार्डिक्स अथवा वैदिक आर्य लगभग दूसरे मिलेनियम ईसा पूर्व में उत्तर पश्चिम दिशा से भारत पहुंचने वाली अंतिम प्रजाति थी। नार्डिक्स ने द्रविड़ को हराकर उत्तरी भारत के मैदान (आर्यवर्त अथवा मध्य प्रदेश) में अपना गढ़ स्थापित किया। बाद में वे दक्षिण भारत पहुंचे तथा वहां बड़े राज्यों की स्थापना की। इस प्रजाति की मुख्य विशेषता इनका लम्बा कद, लम्बा सिर, लम्बा चेहरा, नीली आँखे तथा सुनहरे बाल हैं। इस प्रजाति के प्रतिनिधि पंजाब, हरियाणा, राजस्थान, पश्चिमी उत्तर प्रदेश तथा दक्षिणी उत्तराखण्ड में ऊंची जातियों, जैसे-राजपूत अथवा ब्राह्मण के बीच देखे जा सकते हैं। पश्चिम बंगाल तथा महाराष्ट्र में स्थानीय रूप से इस प्रजाति का अन्तर-मिश्रण अन्य प्रजातियों तथा मानवजातीय समूहों (Ethnic Groups) से हुआ।

यद्यपि भारतीय प्रजातियों तथा मानवजातीय समूहों का गुहा द्वारा दिया गया वर्गीकरण सबसे विश्वसनीय माना जाता है लेकिन वर्तमान विश्व में विभिन्न समूहों का अन्तर-मिश्रण अधिक हो रहा है। एकाकी तथा सापेक्षिक एकाकी के क्षेत्रों को सड़कों के द्वारा राष्ट्रीय व राज्य राजमार्ग से जोड़ा गया है, जिसके कारण विभिन्न प्रजातियों, धर्मों तथा जातियों के बीच परस्पर-क्रिया (Mutual Action) बढ़ गई है। 21वीं सदी के सांस्कृतिक परिदृश्य में कोई एकाकी समूह (Isolated Group) शायद ही ऐसा है, जो अपने प्रजाति तथा मानवजातीय समूह का सही तथा प्रारूपिक प्रतिनिधि है। प्रजातीय, मानवजातीय तथा जाति समूहों में लोगों का विभाजन उप-राष्ट्रवाद को जन्म देता है, जो राष्ट्रीय एकीकरण के प्रक्रिया के विपरीत है।

जनजातीय विविधता (Tribal Diversity)

कारकों की बहुलता (Multiplicity of Factors) तथा समस्या की जटिलता के कारण भारतीय जनजातियों का विभिन्न समूहों में वर्गीकरण करना बहुत सरल नहीं है। फिर भी भारत की जनजातियों को निम्नलिखित आधारों पर वर्गीकृत किया जा सकता है:–

जनजातीय विविधता

- भूखण्डीय वितरण
- व्यवसाय अथवा अर्थव्यवस्था
- सांस्कृतिक संपर्क
- धार्मिक विश्वास

जनजातियों का भौगोलिक वितरण (Geographical Distribution of Tribes)

भारत के भौतिक मानचित्र को देखते हुए तथा जनजातीय जनसंख्या के वितरण के अनुसार हम पाते हैं कि भूगोल तथा जनजातीय जनसांख्यिकी भी क्षेत्रीय समूहीकरण (Grouping) तथा मण्डलीय वर्गीकरण की अनुमति देते हैं। बी.एस. गुहा ने भारतीय जनजातियों को तीन मण्डलों में वर्गीकृत किया है।

जनजातियों का भौगोलिक वितरण

- उत्तर-पूर्वी तथा उत्तरी मंडल
- केन्द्रीय अथवा मध्य मंडल
- दक्षिण मंडल

1. ***उत्तर-पूर्वी तथा उत्तरी मण्डल*–** इसमें हिमालय के नीचे का क्षेत्र तथा भारत की पूर्वी सीमाओं की पहाड़ी घाटियाँ सम्मिलित

हैं। असम, मणिपुर तथा त्रिपुरा के जनजातीय लोगों को इस भौगोलिक मण्डल के पूर्वी भाग में सम्मिलित किया जा सकता है, जबकि उत्तरी भारत में पूर्वी कश्मीर, पूर्वी पंजाब, हिमाचल प्रदेश तथा उत्तर प्रदेश की जनजातियों को सम्मिलित किया जा सकता है।

असम तथा तिब्बत के मध्य रहने वाली कुछ महत्त्वपूर्ण जनजातियाँ अका, डफ़ला मिरी, गुरुंग व अपतानी सुबनसिरी नदी के पश्चिम में बसती हैं। 'मिश्मी' जनजाति देवांग तथा लोहित नदियों के बीच उच्च क्षेत्रों में बसती हैं तथा इसके पूर्व में खामती तथा हिंसको जनजाति पायी जाती हैं। नागा पर्वतों के दक्षिण में मणिपुर, त्रिपुरा राज्य के मध्य होकर तथा चिरागम पहाड़ियों की श्रृंखला में कुकी, लुशाई, खासी तथा गारों (अब नवगठित मेघालय राज्य के निवासी) जनजातियाँ रहती हैं। सिक्किम हिमालय के निचले क्षेत्र में तथा दार्जिलिंग के उत्तरी भाग में अनेक जनजातियाँ रहती हैं, उनमें लेप्चा सबसे अधिक प्रसिद्ध है। उत्तर प्रदेश के हिमालयी क्षेत्र में थारू, भोकसा, जौनसारी (खासा), मोठिया, राजी जैसी महत्वपूर्ण जनजातियाँ पायी जाती हैं।

सम्पूर्ण भौगोलिक मण्डल में विरल जनसंख्या पायी जाती है। (यद्यपि यह क्षेत्र पर्याप्त रूप से विस्तृत है) भौगोलिक समानता के फलस्वरूप इस मण्डल की अधिकांश जनजातियाँ या तो सोपान कृषि (टेरेस खेती) करती हैं, जिसे स्थानीय भाषा में झूम खेती भी कहते हैं। ये जनजातियाँ अधिकांशतया (Mostly) अत्यन्त निर्धन व आर्थिक दृष्टि से पिछड़ी हुई हैं।

2. ***केन्द्रीय अथवा मध्य मण्डल***– इस मण्डल में उत्तर भारत के गंगा मैदान तथा मोटे तौर पर दक्षिण में कृष्णा नदी के मध्य पठारों तथा पहाड़ी पट्टी सम्मिलित हैं तथा यह उत्तरी पूर्वी मण्डल से गारो पहाड़ियों तथा राजमहल पहाड़ियों के लुप्तांश द्वारा पृथक् हो जाती है। इस मण्डल में हम मध्य प्रदेश की जनजातीय जनसंख्या का एक जबरदस्त जमाव पाते हैं, जिसका विस्तार उत्तर प्रदेश, मध्य भारत, दक्षिणी राजस्थान, उत्तरी महाराष्ट्र, बिहार तथा उड़ीसा तक है। उत्तरी राजस्थान, दक्षिणी महाराष्ट्र तथा बस्तर इस मण्डल की परिधि (Circumference) का निर्धारण करते हैं। इस मण्डल में बसने वाली महत्वपूर्ण जनजातियाँ सवारा, गदवा, गंजाम जनपद की वोरिडो, जवांग, खारिया, खोंड़, भूमिज तथा ओडिशा की पहाड़ियों की भुइयाँ हैं। छोटा नागपुर के पठार में मुण्डा, सन्थाल, ओराँव, हो व बिरहोर जनजातियाँ बसती हैं इसके और पश्चिम में विंध्य श्रृंखला के साथ कटकारी, कोल तथा भील जनजातियाँ रहती हैं। गोंड सबसे बड़े समूह की संरचना (Group Structure) करते हैं तथा 'गोंडवाना प्रदेश' के नाम से पुकारे जाने वाले क्षेत्र में रहते हैं। सतपुड़ा के दोनों ओर तथा मैकाल पहाड़ियों के चारों ओर भी जनजातियाँ पायी जाती हैं जैसे-कोराकू, अगारिया, परधान तथा वैगा, बस्तर की पहाड़ियों में कुछ सबसे रंगारंग (Colorful) जनजातियाँ रहती हैं जैसे मुरिया अबुझमार पहाड़ियों के पहाड़ी मुरिया तथा इन्द्रावती घाटी की गौर के सीमा वाली मारिया जनजातियाँ। इस मण्डल की अधिकांश जनजातियाँ अस्थायी कृषि (शिफ्टिंग खेती) के द्वारा अपना जीवनयापन करती हैं, किन्तु ओराँव, संथाल, मुण्डा तथा गोंड जनजातियों ने पड़ोसी ग्रामीण लोगों से सांस्कृतिक सम्पर्क के फलस्वरूप हल से कृषि करना सीख लिया है।

3. ***दक्षिण मण्डल***– इस मण्डल में दक्षिणी भारत का वह भाग आता है जो कृष्णा नदी के दक्षिण में है तथा जो वायनाड से केप केमोरिन तक फैला हुआ है। आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक, कुर्ग, ट्रावनकोर, कोचीन, तमिलनाडु आदि इस मण्डल में सम्मिलित हैं। इस मण्डल के उत्तर-पूर्व से प्रारम्भ करके चेंचू कृष्णा के उस पार नल्ली-मलाई पहाड़ियों के क्षेत्र तथा पूर्ववर्ती हैदराबाद राज्य में बसे हैं। दक्षिण किनारा के लोरागा से पश्चिमी घाटों के साथ-साथ यरुवा और टोडा कूर्म पहाड़ियों के निचले ढलान पर रहते हैं। जबकि इरुला, पलियन तथा कुरुम्बा वायनाड क्षेत्र में बसते हैं। भारतीय जनजातियों में सबसे आदिम जैसे-कडार, कानिक्कर, मालवादन, मलाकुखन आदि कोचीन तथा ट्रावनकोर के घने जंगलों में बसते हैं। वे विश्व के आर्थिक दृष्टि से सबसे अधिक पिछड़े लोगों में सम्मिलित हैं किन्तु उपरोक्त कथन के कुछ अपवाद (Exception) भी हैं जैसे टोडा, बदागा तथा कोटा जो नीलगिरि पहाड़ियों में रहते हैं। इस क्षेत्र के अधिकांश जनसमूह अपने भोजन संग्रह के लिए आखेट तथा मछली पकड़ने पर निर्भर रहते हैं।

- यद्यपि गुहा ने अण्डमान तथा निकोबार द्वीपों के निवासियों को इन मण्डलों में भी सम्मिलित नहीं किया है तथापि इन जनजातीय लोगों को, चतुर्थ मण्डल की संरचना करने वाला कहा जाता है। इस मण्डल में रहने वाली मुख्य जनजातियाँ-जारवा, ओंगे, उत्तरी सेंटिनलीज, अण्डमानी, शैम्पेन तथा निकोबारी हैं। यद्यपि ये भारतीय जनजातियों की मुख्य धारा से अलग हैं, फिर भी दक्षिण भारतीय जनजातियों से सजातीय दृष्टि से अधिक निकट हैं।

भारत की कुछ प्रमुख जनजातियाँ
(Same Major Tribes of India)

भारत की कुछ प्रमुख जनजातियों का संक्षिप्त विवरण नीचे दिया गया है:–

गोंड

गोंडों की आबादी लगभग एक करोड़ बत्तीस लाख (2011) है तथा भारत का सबसे बड़ा जनजातीय समूह (Tribal Group) है। यह जनजाति छत्तीसगढ़, झारखण्ड, मध्य प्रदेश, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, गुजरात, महाराष्ट्र, बिहार तथा पश्चिम बंगाल में पायी जाती है। इस जनजाति का मुख्य संकेन्द्रण विंध्य तथा सतपुड़ा के बीच वन तथा

पहाड़ी क्षेत्रों में है। इस जनजाति की विशेषता इनका गहरा रंग, चपटी नाक, मोटे होंठ, सीधे बाल तथा छोटा कद है। इनकी भाषा गोंडी है, जिसका संबंध ऑस्ट्रिक जाति से है।

यह जनजाति 20-30 परिवारों के छोटे गांवों में रहती हैं तथा अपने घरों का निर्माण पूर्व-पश्चिम दिशा में सड़कों के दोनों ओर करते हैं। इनमें से ज्यादातर कृषि मजदूर अथवा छोटे स्थानाबद्ध (Localized) कृषक होते हैं। इनमें से कुछ, जैसे- ढीमर तथा केवट मत्स्यन पर निर्भर हैं, वही रावत मवेशी पालक हैं।

गोंड घोटुल (युवा-आवास) का निर्माण करते हैं। यह एक क्लब की ही भांति हैं, जहाँ अविवाहित लड़के तथा लड़कियां अलग-अलग कोठरी में सोते हैं तथा एक दूसरे को पसंद कर वैवाहिक बंधन में बंध जाते हैं। वे संगीत तथा नृत्य में भाग लेते हैं। वे गांव को रात्रि में सुरक्षा भी प्रदान करते हैं।

ऐसे प्रेम प्रसंगों को विवाह से पहले गुप्त रखा जाता है। लेकिन यह एक सामान्य सूझबूझ की बात है कि शायद ही कोई लड़की वैवाहिक संबंध से पहले कुंवारी रहती है। वास्तव में यह समुदाय शादी से पहले के यौन संबंधों की अनदेखी कर देता है, लेकिन शादी के बाद पति तथा पत्नी एक दूसरे के प्रति निष्ठावान होते हैं। इस समुदाय में सजातीय (Endogamy) विवाह होता है। इस जनजाति में बहुविवाह (Polygamy) प्रथा प्रचलित है। इस जनजाति में तलाक भी आम बात है। यह जनजाति जड़त्ववादी (जीववादी) धर्म में विश्वास रखती है तथा अपने वंश देवता का पूजन करती है।

गोंड परिश्रमी तथा ईमानदार होते हैं एवं चोरी को एक गंभीर अपराध मानते हैं। गोंड अंधविश्वासी (Superstitions) होते हैं तथा जादू-टोना व काला जादू में विश्वास करते हैं।

भील

भील जनजाति की कुल आबादी 1.7 करोड़ (2011) से अधिक है। भीलों के वास स्थान की विशेषता यहाँ पाए जाने वाले मैदान, पहाड़ियाँ, पठार तथा वन क्षेत्र हैं। वे एकाकी तथा सापेक्षिक रूप से एकाकी स्थानों में रहते हैं।

'भील' शब्द की उत्पत्ति द्रविड़ शब्द 'बिल्लू (अर्थ-धनुष)' से हुई है। दरअसल प्राचीन काल में भील अपनी धनुर्विद्या के लिये प्रसिद्ध थे, एकलव्य भी एक भील था।

कुछ मानव विज्ञानी भील को द्रविड़ से पहले की एक जनजाति मानते हैं, जिसका शासन राजपूतों से पहले राजस्थान पर था। भील भाषा राजस्थानी भाषा की एक शाखा है।

पहले भील जनजाति का मुख्य कार्य शिकार करना, खाद्य एकत्रण तथा चरागाही था। उनकी अर्थव्यवस्था स्थानीय संसाधनों पर आधारित थी। धीरे-धीरे यह जनजाति एक स्थान पर बसने लगी तथा इन्होंने स्थानाबद्ध कृषि (Local Agriculture) की शुरूआत की। उनके आर्थिक क्रियाकलाप में पशुपालन, मुर्गीपालन, चराई, वन उत्पादों का एकत्रण, लम्बरिंग, मत्स्यन तथा सेवा प्रदान करना शामिल हैं।

भील आर्थिक रूप से पिछड़ी तथा अत्यधिक गरीब जनजाति है। मदिरा सेवन तथा जुआ खेलने के कारण उनकी आर्थिक स्थिति और भी बिगड़ गई है। प्रायः वे दूसरे समुदायों के साहूकारों से धोखा खाते हैं। कृषि क्रियाकलापों में पुरुष तथा महिला दोनों भाग लेते हैं।

भील समाज विभिन्न राज्यों में 41 वंशों में विभाजित हैं। चूँकि भीलों का हिन्दुओं तथा मुसलमानों के साथ सांस्कृतिक सम्पर्क रहा है, इसलिये उनकी प्रथाएँ तथा रिवाज (Custom and Traditions) इस जनजाति में देखी जा सकती हैं। देश के कई भागों में वे लगभग हिन्दू जनजाति बनकर रह गए हैं क्योंकि वे जन्म, मुंडन, विवाह तथा मृत्यु पर हिन्दू संस्कारों का अनुसरण (Pursuance) करते हैं।

भील जनजाति में विवाह न केवल सर्वव्यापक है, बल्कि अनिवार्य भी है क्योंकि अविवाहित पुरुष एवं महिला समाज द्वारा अच्छी नजर से नहीं देखे जाते हैं। लड़के लड़कियों को विवाह की पर्याप्त स्वतंत्रता है, वे अपने जीवन साथी का चयन करते हैं तथा इनका गांव के समुदाय द्वारा सामाजिक अनुमोदन (Approval) होता है। लेकिन निमर के ठाकुर भील इस स्वतंत्रता की इजाजत नहीं देते तथा वैवाहिक बंधन से पहले सगाई को प्रमुखता देते हैं।

तलाक दोनों पक्षों में से किसी के द्वारा गांव पंचायत की सहमति से लिया जा सकता है। इस जनजाति में बाल विवाह प्रथा प्रचलित नहीं है।

भील प्रकृति से जड़त्ववादी (जीववादी) होते हैं तथा यह उनके लोक संगीत एवं कला द्वारा प्रतिबिम्बित होता है। वे पुनर्जन्म में तथा आत्मा के स्थानांतरण में विश्वास रखते हैं। मोक्ष के लिये वे अच्छे आचरण पर बल देते है, वे अपदूतों, भूतों तथा काले जादू पर भी विश्वास रखते हैं। बीमारियों से बचने के लिये बड़वा (जादूगर) की सेवा ली जाती है। वे अंधविश्वासी भी होते हैं। इस जनजाति की महिलाओं में गोदना का प्रचलन है। वे अपने घरों के दीवार को लोक आकृतियों से सुसज्जित करते हैं। वे नृत्य तथा संगीत में भी रूचि रखते हैं तथा समुदाय के उत्सवों के लिये नौटंकी का भी आयोजन करते हैं।

समाज मूल रूप से पितृ प्रधान होता है। इस जनजाति के परिवार देवी तथा देवताओं के लिये आदर की भावना रखते हैं। इसके अलावा वे 'बाबा देव' तथा 'घट देव' की भी अर्चना करते हैं।

वे सामान्यतः छोटे-छोटे पुरवा बस्तियों में रहते हैं तथा अपने घरों का निर्माण करते हैं तथा अपने एकाकी परिवार का ध्यान रखते हैं।

संथाल

यह जनजाति, एक बड़ा जनजातीय समूह है। मानव वैज्ञानिक साक्ष्यों के अनुसार इस जनजाति का उद्गम द्रविड़ों से हुआ है, जिसकी संपुष्टि उनकी ऑस्ट्रिक भाषा (संथाली भाषा तथा कोल चिका लिपि) करती हैं। संथाली विचारक यह मानते हैं कि संथालों ने ही सिन्धु घाटी सभ्यता को विकसित किया।

संथाल मूल रूप से कृषक होते हैं (68%)। इस जनजाति की संपत्ति भूमि के रूप में होती है तथा शायद ही कोई संथाल भूमिहीन होता है। इसके अतिरिक्त यह जनजाति शिकार, मत्स्यन तथा वन उत्पादों के एकत्रण में भी जुटे रहते हैं। बढ़ती साक्षरता तथा सांस्कृतिक सम्पर्क (Cultural Contact) के कारण यह जनजाति सेवा, व्यापार तथा संविदा व्यापार के क्षेत्र में कार्य कर रही है। इस जनजाति की माँग वृहत झारखण्ड के लिये है, जिसका विस्तार पश्चिम बंगाल तथा उड़ीसा के संथाल क्षेत्रों में है।

संथालों की एक संस्कृति तथा एक सुस्पष्ट सामाजिक व्यवस्था होती है। विधवा-विवाह की इजाजत इस जनजाति में दी गई है। संथालों का समाज पितृ-प्रधान (Patriachal) होता है। संथाली महिलाएँ भी परिवार के आय में योगदान करती हैं। ये महिलाएँ कृषि क्रियाकलापों में भाग लेती हैं तथा वंदना उत्सव से पहले अपने घरों को सुसज्जित करती हैं।

कर्मा महिलाओं का एकमात्र त्योहार है, जो भादो के महीनों में मनाया जाता है। इस जनजाति के अन्य प्रमुख त्योहार रक्षाबंधन अथवा सोहराई (शीत ऋतु में फसल कटने के बाद) हैं।

संथाल जीववादी होते हैं तथा कई देवी व देवताओं में आस्था रखते हैं। चांदो (चाँद) सबसे बड़ी शक्ति है। जाहिर-एरा इस जनजाति के ग्रामदेव हैं।

नागा

नागा (जनसंख्या लगभग 2 मिलियन) उत्तर-पूर्वी भारत की एक बड़ी तथा राजनीतिक दृष्टि से जागरूक जनजाति है। इस जनजाति का सांस्कृतिक केन्द्र नागालैंड है, जहाँ वे कुल आबादी का लगभग 89 प्रतिशत हिस्सा हैं। वे मणिपुर, असम तथा मेघालय में अच्छी खासी संख्या में हैं। वे म्यांमार से सटे सीमावर्ती जिलों में भी देखे जा सकते हैं। जिस भू-भाग में नागा जनजाति रहती है, उसकी विशेषता ब्रेल श्रेणी तथा अराकान योमा का दंतुरित कटक है। नागालैंड में शीत ऋतु ठंडी होती है तथा ग्रीष्म ऋतु साधारण रूप से गर्म व आर्द्र होती है। अंग्रेजी नागालैंड की आधिकारिक भाषा है। यह भाषा नागालैंड के सांस्कृतिक एवं राजनीतिक एकीकरण में सहायक हुई है। नागाओं का गाँव सुरक्षा के कारण कटकों के ऊपर स्थित होता है। वे पहाड़ के ढालों का उपयोग वेदिका कृषि के लिये करते हैं।

जहाँ वेदिकाओं का विकास मुश्किल होता है, वे वहां स्थानांतरित कृषि (Shifting Agriculture) के अभ्यस्त हैं।

प्रत्येक गाँव में अविवाहितों के लिये एक मोरंग (समुदायिक शयनशाला) होता है जहाँ लड़के व लड़कियां दोनों रात में रहते हैं। यह एक युवा क्लब की तरह कार्य करता है, जहाँ युवाओं को जनजातीय प्रथाओं से अवगत कराया जाता है। उन्हें यौन शिक्षा भी दी जाती है तथा अक्सर विवाह के पूर्व के उनके संबंध ग्रामीण समुदाय की सहमति से स्थायी संबंधों (विवाह) में परिवर्तित हो जाते हैं।

नागा मुख्यत: कृषक समुदाय के होते हैं (87%)। वे स्थानांतरित कृषि (झूम कृषि) के अभ्यस्त हैं। कोहिमा के नजदीक अंगामी जनजाति ने धान की खेती के लिये वेदिकाओं का निर्माण किया है। वे धान, दलहन, सब्जी तथा कपास की खेती करते हैं। नागा अपने कलात्मक हस्तशिल्प के लिये मशहूर हैं खासकर बुनाई तथा लकड़ी पर नक्काशी के लिए।

नागाओं का एक सुव्यवस्थित सामाजिक संगठन है, जो अनेकता में एकता का उदाहरण है। संयुक्त परिवार व्यवस्था भी इस जनजाति में प्रचलन में है। परिवारिक तथा सामुदायिक मामलों में गाँव का मुखिया एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

नागाओं में बाल विवाह का चलन नहीं है। यह जनजाति विवाह से पहले लड़कियों को अधिक आजादी देती है। वे एक सुखद जीवन जीते हैं। महिलाओं तथा पुरुषों दोनों के पहनावे अच्छे होते हैं। सामुदायिक अवसरों पर इस जनजाति के सदस्य नृत्य भी करते हैं। परम्परागत रूप से वे जीववादी हैं, लेकिन अब अधिकांश नागा ईसाई बन गए हैं। शिक्षा के क्षेत्र में भी यह जनजाति आगे हैं।

थारू

थारू (जनसंख्या लगभग 1.25 लाख) उत्तर प्रदेश तथा उत्तराखण्ड की सबसे प्रमुख जनजाति है। थारू का सबसे अधिक संकेन्द्रण ऊधमसिंह नगर के खटीमा तथा सितारगंज तहसील में है, जहाँ इनकी आबादी कुल जनसंख्या का लगभग 55% है। वे पीलीभीत, खीरी, गोरखपुर तथा बहराइच में भी पाए जाते हैं।

थारू मुख्य रूप से कृषक हैं। कृषि के मन्द महीनों में मत्स्यन इस जनजाति का मुख्य व्यवसाय हो जाता है।

इस जनजाति के कुछ लोगों के लिये शिकार करना तथा खाद्य एकत्रण मुख्य व्यवसाय है। थारू मुख्य रूप से मंगोलाइड प्रजाति के हैं, जिनमें कुछ गैर-मंगोलाई विशेषताएँ भी देखी जा सकती है।

थारू एक सुव्यवस्थित समुदाय है तथा इनके प्रत्येक गांव में एक ग्राम पंचायत होती है, जिसका प्रमुख प्रधान होता है, जो समुदाय के सब मामलों में एक अहम भूमिका निभाता है।

यद्यपि इस जनजाति का समाज पितृ प्रधान होता है लेकिन महिलाओं को ऊंचा दर्जा दिया गया है। थारू अपने आप को राजपूत मानते हैं। इस जनजाति में ज्यादातर हिन्दू धार्मिक रिवाज प्रचलन में हैं। वे होली, दीवाली तथा दशहरा भी मनाते हैं। वे जादू-टोना में भी विश्वास करते हैं। मूलत: इस जनजाति के लोग ईमानदार, शान्तिप्रिय तथा सीधे-साधे होते हैं, लेकिन बाहरी सम्पर्क के कारण इनके आचरण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। थारू अत्यधिक अंधविश्वासी होते हैं तथा अपने पुरोहित में पूर्ण रूप से आस्था रखते हैं।

टोडा

तमिलनाडु के नीलगिरि जिले में तथा निकटवर्ती कर्नाटक के कुरनूल जिले में पायी जाने वाली टोडा एक लघुसंख्यक जनजाति है। यह जनजाति पशुचारणिक चलवासिता (Pastoral nomadism) का एक उदाहरण है। 'टोडा' शब्द की उत्पत्ति 'टांड्रा' से हुई है, जो इस जनजाति के लिये एक पवित्र वृक्ष है।

टोडा एक पशुचारी जनजाति (Pastoral Tribe) है। इस जनजाति की अर्थव्यवस्था मुख्य रूप से भैंसों के प्रजनन तथा डेरी उत्पादों पर आधारित है। इस जनजाति में भ्रातृ बहुपति-प्रथा (Fratenral Polyandry) देखा जाता है। सबसे बड़े भाई का विवाह जिस लड़की के साथ होता है, उस पर सभी छोटे भाइयों का समान अधिकार होता है। इस जनजाति का समाज पितृ-प्रधान है। विवाह एक साधारण समारोह होता है तथा तलाक यदा-कदा ही देखने को मिलता है। महिलाओं को आदर भाव के साथ देखा जाता है। यह जनजाति जीववादी है। वे टिकिरजी की पूजा करते हैं। अब ईसाई धर्म भी टोडा तक पहुंच रहा है।

इस देश में जनसंख्या की दृष्टि से अनेक भिन्नताएं पायी जाती हैं। यहाँ विभिन्न जनजातीय लोगों की कुल जनसंख्या वर्तमान में 10.43 करोड़ (2011) से कुछ अधिक ही है। प्रत्येक जनजातीय समूह के जीवन की एक विशिष्ट पद्धति है, जो अन्य जनजातियों की जीवन पद्धति से भिन्न है।

शीर्ष पाँच अनुसूचित जनजाति जनसंख्या वाले राज्य / के.शा.प्र.	
• मध्य प्रदेश (14.7%)	1,53,16,784
• महाराष्ट्र (10.1%)	1,05,10,213
• ओडिशा (9.2%)	95,90,756
• राजस्थान (8.9%)	92,38,534
• गुजरात (8.6%)	89,17,174

जनजातियों का भाषायी वर्गीकरण

भारत के जनजातीय लोग मुख्यत: तीन भाषा परिवारों में वर्गीकृत किये जा सकते हैं:- 1. द्रविड़, 2. ऑस्ट्रिक, 3. तिब्बती-चीनी।

द्रविड़ भाषागत परिवार के अन्तर्गत आने वाली भाषाओं को बोलने वाले जनजातीय लोग मध्य तथा दक्षिणी भारत में बसते हैं।

गोंड द्रविड़ परिवार में बोली जाने वाली जनजातीय बोलियों में प्रमुख स्थान रखती है तथा यह गोंड जनजाति द्वारा, जो मध्य प्रदेश से आन्ध्र प्रदेश तक फैली है, विस्तार के साथ बोली जाती है। इसका कोई साहित्य नहीं है, किन्तु इसके बोलने वालों की संख्या बल को ध्यान में रखते हुए इसे जनजातीय भाषाओं के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया गया है। इस समूह की एक अन्य महत्वपूर्ण भाषा 'कोई' है जो उड़ीसा के कांध, छोटा नागपुर की ओराँव तथा राजमहल पहाड़ियों के माल्टो द्वारा बोली जाती है। टोडा, पलियन, चेन्चू, इरुला तथा कादार भी द्रविड़ परिवार में सम्मिलित किए जाते हैं।

ऑस्ट्रिक परिवार की बोलियाँ मुण्डा भाषा परिवार के रूप में भी जानी जाती हैं। मैक्समूलर प्रथम विद्वान् थे जिन्होंने उसे द्रविड़ भाषा परिवार से अलग किया तथा उन्होंने ही इस समूह को मुण्डा बोली परिवार का नाम प्रदान किया। इस परिवार की बोलियाँ मुख्यत: छोटानागपुर क्षेत्र की जनजातियों द्वारा बोली जाती हैं किन्तु उनका प्रचलन, कुछ कम सीमा तक मध्य प्रदेश, उड़ीसा, पश्चिम बंगाल, मद्रास तथा बिहार से शिमला की पहाड़ियों तक हिमालय के तराई क्षेत्रों में फैला है। बंगाल, बिहार तथा उड़ीसा की संथाली बोली तथा बिहारी क्षेत्र की मुण्डारी, हो, खरिया, भूमिज व कुछ अन्य बोलियाँ भी इस परिवार में सम्मिलित हैं।

तिब्बती-चीनी बोलियाँ मंगोल प्रजाति समूह की अधिकांश जनजातियों द्वारा बोली जाती हैं। यह परिवार दो शाखाओं में विभाजित किया जाता है- 1. तिब्बत-बर्मी, 2. सियामी- चीनी। असम, मेघालय तथा उत्तर-पूर्वी भारत के अन्य भागों की जनजातियाँ इस परिवार की एक न एक बोली बोलते हैं।

जातीय विविधता (Caste Diversity)

जाति व्यवस्था भारतीय समाज की मौलिक विशेषता है, जो प्राय: भारत के प्रत्येक धर्म में किसी न किसी रूप में पायी जाती है। यह भारतीय समाज में सामाजिक स्तरीकरण (Social Stratification) के एक प्रमुख स्वरूप को परिलक्षित करती है।

जाति व्यवस्था के अंतर्गत भारतीय समाज कुछ जातीय समूहों में वर्गीकृत है और ये समूह सोपानिक रूप से एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। इसके अंतर्गत एक जाति समूह एक अंतर्विवाही समूह होता है जिसकी सदस्यता जन्मजात होती है, उसका एक निश्चित व्यवसाय होता है और जो कुछ विशेषाधिकारों और निर्योग्यताओं (Privileges and Disabilities) के साथ खान-पान और सामाजिक सहवास संबंधी निषेधों का पालन करता है।

हिन्दू समाज अनेक जातियों एवं उपजातियों में विभक्त है। इसे हम निम्न प्रकार से देख सकते हैं:-

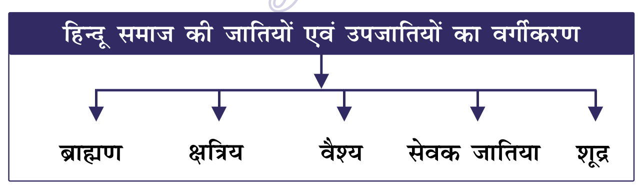

1. ***ब्राह्मण-*** नम्बूदरी, चितपावन, सारस्वत, कान्यकुब्ज, सरयूपारणी, बंगाली, तमिल एवं कश्मीरी।
2. ***क्षत्रिय-*** सूर्यवंशी, चन्द्रवंशी, राजपूत: परिहार, चौहान, राठौर, कुशवाह आदि।
3. ***वैश्य-*** अग्रवाल, गुप्ता, चेट्टियार, मारवाड़ी, गहोई, साहू, महाजन, सेठ आदि।
4. ***सेवक जातिया-*** अहीर, कुर्मी, सोनार, नोनिया, काछी, कहार, कोटार, नाई, लोहार, बढ़ई, माली, बारी आदि।
5. ***शूद्र-*** चमार, महार, मांग, धोबी, हेला, भंगी, दुसाध, धरकार।

भारतीय समाज में विविधताओं में मौलिक एकता
Fundamental Unity in Diversity in Indian Society

उपरोक्त तथ्यों के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि भारत एक बहुलवादी समाज है जिसमें विभिन्न जाति, धर्म, सम्प्रदाय के लोग रहते हैं। यहाँ जलवायुवीय एवं भाषायी विविधता के साथ अनेक संस्कृतियाँ हैं। कला एवं साहित्य, परंपरा एवं विश्वासों में विभिन्नता है। लेकिन इस विभिन्नताओं के बावजूद भारतीय समाज में एकता की विभिन्न कड़ियां मौजूद है। ये कड़ियां यद्यपि कभी-कभी सांस्कृतिक संघर्षों एवं नृजातीय संघर्षों के कारण कमजोर होती दिखती है, किंतु वे स्वत: मजबूत भी हो जाती है। वर्तमान वैश्वीकरण एवं आधुनिकीकरण के युग में यह विभिन्नता कम हुई है, जिससे भारतीय समाज के विविध समुदायों में पहचान की समस्या उत्पन्न होती दिखाई दे रही है। इसके बावजूद वर्तमान परिवर्तनशील विश्व में जहाँ भारत के पड़ोसी देश अपने एकरंगी समाज को भी एक सूत्र में नहीं बांध पाए एवं असफल राष्ट्र बन गए है, वहीं भारतीय समाज ने अपनी ग्रहणशीलता एवं लचीलेपन के कारण अपनी बहुरंगी छवि को कायम ही नहीं रखा बल्कि उसे और मजबूत बनाया है। भारत की यह बहुरंगी संस्कृति एवं अनेकता भारत की कमजोरी नहीं बल्कि उसकी मजबूती को बयां करती है तथा उसे विश्व में एक विशिष्ट प्रस्थिति (Status) प्रदान करती है।

भारतीय समाज में एकता के लक्षणों को निम्न बिन्दुओं के अन्तर्गत देखा जा सकता है:–

भौगोलिक विविधता में एकता (Unity in Geographical Diversity)

भारत एक बड़ा भौगोलिक क्षेत्र है, जहाँ की प्रकृति एवं पर्यावरण में भिन्नता दिखाई पड़ती है, किंतु ये विभिन्न भौगोलिक क्षेत्र मिलकर भारत को एक उपमहाद्वीप के रूप में निर्मित करते हैं। यहाँ विभिन्न क्षेत्र इतने अलग नहीं है कि इनको पार करते हुए वहां तक पहुंच नहीं बनायी जा सकती दक्षिण भारत का व्यक्ति आराम से हिमालयी राज्यों एवं पूर्वोतर क्षेत्र में आ जा सकता है। भारत के अधिकांश क्षेत्र एक ही ऋतु चक्र से प्रभावित है। मानसूनी वर्षा भारत के अधिकांश क्षेत्रें को प्रभावित करती है हिमालय की नदियों का पानी विभिन्न राज्यों से बहता हुआ दक्षिण पूर्वी तट पर समुद्र में गिरता है तथा समुद्र का जल वाष्पित होकर हिमालय को पुन: हिमाच्छादित करता है।

यद्यपि भारतवर्ष को भौगोलिक दृष्टिकोण से कई क्षेत्रों में विभक्त किया गया है फिर भी भारत एक सम्पूर्ण भौगोलिक इकाई है। प्रायद्वीप का सीमा क्षेत्र दुर्गम हिमाच्छादित पर्वतों, सागरों का बना है जो इस देश के लोगों को अन्य देशों व वहां की संस्कृतियों से पृथक तो करता ही है, साथ ही इस भू-भाग में बसने वालों को राष्ट्रीय स्वरूप भी प्रदान करता है। यहाँ की पर्वतमालाएँ, नदियां, कछार, पठार, मैदान तथा सागर तट एक दूसरे के पूरक होकर जनजीवन को प्रभावित करते हैं तथा किसी एक भू-भाग पर आक्रमण अथवा अतिक्रमण होने पर समूचा देश उद्वेलित हो उठता है।

धार्मिक विविधता में एकता (Unity in Religious Diversity)

भारत में विभिन्न धर्मावलम्बी (Religious) रहते हैं उनके देवता या आदर्श भिन्न दिखाई पड़ते हैं किंतु उन सभी धर्मावलम्बियों में एकता के तत्व विराजमान हैं। सभी धर्मावलम्बियों में एकेश्वरवाद, आध्यात्मवाद, मुक्ति की अवधारणा, उपासना की एक निश्चित पद्धति, कर्म की अवधारणा, माया विचार, जगत की शाश्वतता (Eternity) का मूल्य, आध्यात्मिक सत्ता से संबंध जोड़ने की प्रवृत्ति पायी जाती है। विभिन्न धर्मावलम्बियों के त्यौहारों में अन्य धर्म के लोग भाग लेते हैं जो कि भारत की सांस्कृतिक एकता (Culture Unity) का प्रतीक है। भारत की धर्मनिरपेक्ष राजनीतिक व्यवस्था ने भी विभिन्न धर्मों के बीच भिन्नता के होते हुए भी उनको एकता के सूत्र में बांध दिया है क्योंकि भारत का कोई राजधर्म नहीं है और राज्य की नजर में सभी धर्मों का समान महत्व है।

देश में विभिन्न धर्मावलम्बी हैं जो अपनी पद्धति के अनुसार उपासना करते हैं। ये धर्म व्यक्ति के जन्म व जाति से जुड़े रहते हैं। देश के सभी क्षेत्रों में धर्मावलंबियों के तीर्थस्थल हैं। आध्यात्म, मत-मतान्तर एंव साहित्य ने एक दूसरे धर्म से बहुत कुछ अंगीकार किया है और जनजीवन पर गंगा-जमुना ने बहुरंगी छवि छोड़ी है। धार्मिक सहिष्णुता का पराक्रम ऐसा रहा है कि सभी धर्म एक ही रंग में रंग से गये हैं।

सामाजिक-सांस्कृतिक विविधता में एकता (Unity in Socio-Cultural Diversity)

भारत के विभिन्न क्षेत्रों में बसे लोगों के परिवार, विवाह, रीति-रिवाज, वस्त्र शैली, आदि में भी पर्याप्त भिन्नता के बावजूद समाज व्यवस्था में सांस्कृतिक एकता के दर्शन होते हैं। संयुक्त परिवार-प्रणाली, जाति प्रथा, ग्राम पंचायत, गोत्र व वंश-व्यवस्था भारतीय समाज के आधार रहे हैं। रक्षाबंधन, दशहरा, दीपावली, होली, ईद, मोहर्रम आदि त्यौहारों का फैलाव समूचे भारत में है। इसी प्रकार सारे देश में जन्म-मरण के संस्कार व विधियां, विवाह-प्रणालियां, शिष्टाचार, आमोद-प्रमोद, उत्सव, मेलों, सामाजिक रूढ़ियों और परंपराओं में पर्याप्त समानता देखने को मिलती है। भारतीय जीवन में कला की एकता भी कम उल्लेखनीय नहीं है। स्थापत्य कला, मूर्तिकला, चित्रकला, नृत्य, संगीत आदि के क्षेत्र में हमें अखिल भारतीय समानता देखने को मिलती है।

देश के विभिन्न भागों में बने मन्दिरों, मस्जिदों, गिरजाघरों, आवास भवनों तथा इमारतों में भी कला के अपूर्व संयोजन का आभास होता है। दरबारी, ध्रुपद, भजन, टप्पा, गजल, यहाँ तक कि पाश्चात्य धुनों का भी विस्तार सारे भारतवर्ष में है। इसी प्रकार भरतनाट्यम, कथककली, कत्थक आदि नृत्य भारत के विभिन्न भागों में प्रचलित हैं। अत: कला के क्षेत्र में भारत में अखण्ड एकता है।

भारतीय समाज में यद्यपि संगीत एवं कलाएं विविध रूपों में विराजमान रही है, किंतु अखिल भारतीय स्तर पर इन कलाओं का प्रचलन हर क्षेत्र में दिखाई देता है। उदाहरण के लिए यद्यपि द्रविड़ शैली दक्षिण भारत एवं नागरशैली उत्तर भारत की मंदिर निर्माण कला शैली है किंतु इनका फैलाव सम्पूर्ण भारत में दिखाई पड़ रहा है। इसी प्रकार संगीत के विभिन्न घरानों का संगीत अखिल भारतीय स्तर पर विराजमान है।

भाषाई विविधता में एकता (Unity in Linguistic Diversity)

भारत वर्ष में भाषाओं की बहुलता (Multiplicity of Languages) है परन्तु रोचक तथ्य तो यह है कि वे सभी एक ही सांचे में ढली हुई हैं। अधिकांश भाषाओं की वर्णमाला एक ही है व उन सभी पर संस्कृत भाषा का प्रभाव देखने को मिलता है। डॉ॰ लूनिया ने लिखा है कि ईसा से पूर्व तृतीय शताब्दी में इस विशाल देश की एक ही राष्ट्रभाषा प्राकृत भाषा थी। कतिपय शताब्दी पश्चात संस्कृत जैसी एक अन्य भाषा ने इस उप-महाद्वीप के दूरस्थ भागों में भी अपना प्रभाव जमा लिया। त्रिभाषा फार्मूले के अंतर्गत शिक्षण संस्थाओं में छात्रों को हिन्दी, अंग्रेजी व एक अन्य प्रान्त की भाषा सिखायी जाती है। इससे विभिन्न भाषा-भाषियों के बीच एकता के भाव पैदा हुए हैं। समस्त देश को एक सूत्र में पिरोने का काम पहले प्राकृत व संस्कृत भाषा ने किया, वर्तमान में यह अंग्रेजी एंव हिन्दी भाषा द्वारा किया जा रहा है।

प्रजातीय विविधता में एकता (Unity in Racial Diversity)

यह सच है कि भारत वर्ष प्रजातियों का एक अजायबघर है। यहाँ विश्व की तीन प्रजातियां श्वेत, पीत, और श्याम वर्ण तथा इनकी उप शाखाओं के लोग निवास करते हैं। प्रजातीय भिन्नता (Racial Difference) होने पर भी अमेरिका एंव अफ्रीका की भांति यहाँ प्रजातीय संघर्ष (Racial Conflict) एंव टकराव रंगभेद के आधार पर नहीं हुए वरन पारस्परिक सद्भाव और सहयोग ही पनपा है। बाहर से आयी आर्य, द्रविड़, शक, हूण, तुर्क, पठान, मंगोल आदि प्रजातियाँ हिन्दू समाज में इतनी घुल मिल गई है कि इनके पृथक अस्तित्व को आज पहचानना कठिन है। उपर्युक्त विवरण से स्प्ष्ट है कि बाहरी तौर पर भारतीय समाज, संस्कृति व जनजीवन में विभिन्नताएं दिखलाई देने पर भी भारत एक है, मौलिक व अखण्ड रूप से एक है। एक ही है इसकी संस्कृति, धर्म, भाषा और राष्ट्रीयता। इस एकता को नष्ट नहीं किया जा सकता।

भारतीय समाज में विविधताजनित चुनौतियाँ
Challenges Arising from Diversity in Indian Society

भारतीय समाज विविधताओं से युक्त है। भारतीय समाज की विविधता जहाँ इसे कई रूपों में मजबूती प्रदान करती है तो वहीं इसके समक्ष कई चुनौतियाँ भी प्रस्तुत करती है।

भारत एक बहुधार्मिक समाज (Multi-religious Society) है। यहाँ हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई, सिख, पारसी आदि धार्मिक समुदाय के लोग निवास करते हैं। भारतीय समाज की यह धार्मिक विविधता सम्प्रदायवाद के रूप में भारतीय समाज के समक्ष एक महत चुनौती प्रस्तुत कर रही है। स्वतंत्रता के पश्चात् से हमें लगातार सम्प्रदायिक दंगों का सामना करना पड़ रहा है। सम्प्रदायवाद का विस्तार कश्मीर से तमिलनाडु एवं गुजरात से असम तक देखा जा सकता है। 1984 के सिख दंगे, 2002 के गुजरात दंगे तथा अभी हाल ही में हुए असम दंगे एवं मुजफ्फरनगर दंगे भारतीय विविधता के समक्ष गंभीर चुनौती पेश कर रहे हैं। आज धर्म आधारित आतंकवाद भी भारतीय समाज की एकता व अखंडता के समक्ष एक वृहद चुनौती प्रस्तुत कर रहा है।

भारतीय समाज की नृजातीय विविधता (Ethnic Diversity) क्षेत्रवाद व अलगाववाद के रूप में चुनौती पेश कर रही है। क्षेत्रवाद व अलगाववाद भारतीय समाज की एकता व अखंडता के समक्ष लगातार खतरा प्रस्तुत कर रहा है। क्षेत्रीयता की वैचारिकी ने भूमि पुत्र (Sun of the soil) के नारे के आधार पर क्षेत्रीय पृथकतावादी आन्दोलन उभारा है। गोरखालैंड, बोडोलैंड तथा खालिस्तान के निर्माण से सम्बन्धित आन्दोलनों ने भारतीय एकता, अखंडता व स्थायित्व के समक्ष गंभीर चुनौती पेश की है। क्षेत्रवाद से सम्बन्धित एक प्रमुख समस्या स्थानीय बनाम बाहरी का भी रहा है। असम में बिहारी मजदूरों की हत्या एवं भगाया जाना, महाराष्ट्र के क्षेत्रीय दलों द्वारा बाहरी लोगों का विरोध आदि घटनाएँ भी भारतीय समाज की विविधता में एकता के समक्ष गंभीर चुनौती पेश कर रही हैं।

भारत में जाति व्यवस्था एक संस्था के रूप में अत्यंत प्राचीन है। भारतीय जाति व्यवस्था के अन्तर्गत सैकड़ों जातियों की उपस्थिति जातीय विविधता का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत करती है। किन्तु जातिवाद भारतीय समाज के जातीय विविधता के समक्ष कई रूपों में गंभीर चुनौती पेश कर रहा है। जातिवाद का आधुनिक स्वरूप भारत में औपनिवेशिक काल में उभरा है। आधुनिक काल में जातिवाद ने अगड़ी एवं पिछड़ी जातियों को सामाजिक दृष्टि से एक दूसरे के विरूद्ध लामबंद किया है। जातीय ध्रुवीकरण ने जातीय संघर्ष को बढ़ाया है। इसका विकराल रूप जातीय नरसंहारों के रूप में दृष्टिगत होता है। आज हमारा समाज जातीय हिंसा एवं जातीय संघर्ष आदि का सामना कर रहा है। इसके कारण विभिन्न जाति समूहों के मध्य कटुता का फैलाव हुआ है।

भारतीय समाज में भाषा के आधार पर भी विविधता दृष्टिगत होती है। भाषायी विविधता (Linguistic Diversity) भाषावाद के रूप में चुनौती प्रस्तुत कर रही है। दक्षिण भारत में हिन्दी विरोधी आन्दोलनों को इसके उदाहरण के रूप में देखा जा सकता है। भाषायी आधार पर अक्टूबर, 1953 में तेलगु भाषी राज्य आन्ध्र प्रदेश के निर्माण के

पश्चात् भारत के विविध क्षेत्रों-गुजरात, पंजाब, हरियाणा, नागालैंड आदि में भी पृथकतावादी आन्दोलन का दौर शुरू हुआ तथा कालांतर में भाषायी आधार पर राज्यों का पुनर्गठन किया गया। भाषायी आधार पर राज्य पुनर्गठन की प्रक्रिया ने कई क्षेत्रीय आन्दोलनों को जन्म दिया जैसे-तेलंगाना का पृथकतावादी आन्दोलन, विदर्भ आन्दोलन, द्रविड़स्तान आन्दोलन इत्यादि। इसका दूसरा परिणाम यह हुआ कि विभिन्न राज्यों में गैर भाषायी अल्पसंख्य समूहों के प्रति बैर की भावना विकसित हुई। उपरोक्त घटनाएँ भारतीय समाज की विविधता में एकता के समझ एक महत्वपूर्ण चुनौती पेश कर रहे हैं।

उपरोक्त विवेचन भारतीय समाज की विविधता जनित चुनौतियों को स्पष्ट करते हैं। परन्तु उपरोक्त चुनौतियों का एक मात्र कारण विविधता को ठहराना तार्किक नहीं होगा क्योंकि विविधता तो भारतीय समाज की प्राचीन काल से ही प्रमुख विशेषता रही है, परन्तु अधिकतर विविधता जनित चुनौतियाँ नवीन परिघटना है। अतः यह कहना अधिक तार्किक होगा कि कई कारकों ने भारतीय समाज के विविधता युक्त वातावरण ने कई कारकों के साथ संयुक्त होकर उपरोक्त चुनौतियों को उत्पन्न किया है।

भारतीय समाज-विविधता में एकता : संभावित प्रश्न

1. भारतीय समाज की विविधता के विभिन्न पहलुओं की चर्चा कीजिए। भारतीय समाज एकता में अनेकता एवं अनेकता में एकता का उदाहरण प्रस्तुत करता है। स्पष्ट कीजिए।
2. भारतीय समाज की विविधता ने भारत का एक राष्ट्र के रूप में समेकन में किस प्रकार की बाधाएँ उत्पन्न की है। चर्चा करें।
3. वर्तमान वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने भारतीय समाज की विविधता को किस प्रकार प्रभावित किया है? उत्तर दीजिए।
4. "वर्तमान सम्प्रदायिक हिंसा व क्षेत्रवाद की बढ़ती घटनाएँ भारतीय समाज की अनेकता में एकता पर प्रश्न चिह्न लगाते हैं।" स्पष्ट कीजिए।
5. भारतीय समाज की विविधता को एकता के सूत्र में पिरोने वाले कारकों को स्पष्ट कीजिए।
6. लुप्त होती जनजातियाँ जनजातीय विविधता के समक्ष एक महत्वपूर्ण चुनौती हैं। इस चुनौती से निपटने के उपाए सुझाएँ।
7. भारत में भाषाई विविधताजनित चुनौतियों से निपटने हेतु भाषाई आधार पर राज्यों के पुनर्गठन की नीति कहाँ तक सफल रही, अपना मत प्रस्तुत कीजिए।

✪✪✪✪✪

KGS IAS KHAN SIR
Dr. S.S. Pandey

10

जनसंख्या संबंधी मुद्दें
(Population Related Issues)

पारिभाषिक शब्दावली (Glossary Term)

- ***जनसंख्या (Population):*** किसी क्षेत्र विशेष में रहने वाले व्यक्तियों के समूह को जनसंख्या कहते हैं।
- ***जनगणना (Census):*** जनगणना जनसंख्या के आँकड़ों को संकलित करने की सबसे विश्वसनीय विधि है। इसका अभिप्राय, किसी देश या उसके द्वारा सीमांकित क्षेत्र में किसी विशिष्ट समय पर सभी व्यक्तियों से सम्बन्धित जनांकिकी, आर्थिक एवं सामाजिक आँकड़ों को संकलित करने, एकत्रित करने व प्रकाशित करने की सम्पूर्ण प्रक्रिया से है।
- ***डी फैक्टो विधि (De-facto Method):*** इस पद्धति के अनुसार सारे देश में सभी व्यक्तियों की गणना पूर्व निर्धारित रात या दिन में उसी स्थान पर कर ली जाती है जहाँ वह जनगणना के समय उपस्थित होता है। इसमें गणना का कार्य एक ही रात या दिन में पूरा कर लिया जाता है। इसे One Night Enumeration या date system भी कहते हैं।
- ***डी जुरे विधि (De-jure Method):*** इस पद्धति के अंतर्गत व्यक्तियों की गणना उनके निवास स्थान के आधार पर एक पूर्व निर्धारित अवधि में की जाती है।
- ***जनसंख्या पिरामिड (Population Pyramid):*** यदि आयु और लिंग संरचना का आरेखीय चित्रण प्रस्तुत किया जाए तो यह एक पिरामिड का आकार ग्रहण कर लेता है। इस रेखीय चित्रण को ही जनसंख्या पिरामिड या आयु लिंग पिरामिड कहते हैं।
- ***जनसंख्या घनत्व (Population Density):*** किसी देश में निवास करने वाली जनसंख्या व सम्बन्धित क्षेत्र के क्षेत्रफल के पारस्परिक अनुपात को जनसंख्या घनत्व कहा जाता है, जिसको किसी क्षेत्र विशेष की जनसंख्या में उस क्षेत्र विशेष के क्षेत्रफल का भाग देकर प्राप्त किया जाता है।
- ***लिंग अनुपात (Sex Ratio):*** यह किसी विशिष्ट समय में किसी देश या स्थान के स्त्री तथा पुरुष जनसंख्या के बीच अनुपात को प्रदर्शित करता है।

$$\text{लिंग अनुपात} = \frac{\text{स्त्रियों की कुल जनसंख्या}}{\text{पुरुषों की कुल जनसंख्या}} \times 1000$$

- ***प्रजननशीलता व उर्वरता (Fertility and Fecundity):*** प्रजननशीलता का अभिप्राय: किसी स्त्री या स्त्री समूह द्वारा समय विशेष में कुल सजीव जन्में बच्चों की वास्तविक संख्या से है। उर्वरता (Fecundity) से तात्पर्य किसी स्त्री में बच्चों को जन्म देने की क्षमता से है चाहे उसने बच्चों को जन्म दिया हो या न दिया हो।
- ***अशोधित जन्म दर (Crude Birth Rate):*** यह किसी वर्ष विशेष में जन्में कुल बच्चों की संख्या तथा उस वर्ष की कुल जनसंख्या के मध्य अनुपात को प्रदर्शित करता है, जिसे सामान्यत: प्रति एक हजार में व्यक्त किया जाता है।
- ***कुल प्रजनन दर (Total Fertility Rate):*** यह बच्चों की वह संख्या है जो किसी भी स्त्री के सम्पूर्ण प्रजनन काल में उत्पन्न होते हैं।
- ***अशोधित मृत्यु दर (Crude Death Rate):*** यह किसी वर्ष विशेष में कुल मृत्युओं की संख्या तथा उस वर्ष के कुल जनसंख्या के मध्य अनुपात को प्रदर्शित करता है, जिसे सामान्यत: एक हजार में व्यक्त किया जाता है।
- ***शिशु मृत्यु दर (Child Death Rate):*** किसी निश्चित वर्ष में एक वर्ष से कम आयु वाले बच्चों की मृत्यु संख्या और उसी वर्ष में सजीव जन्में बच्चों की संख्या का अनुपात, शिशु मृत्यु दर कहलाता है।

जनांकिकी संक्रमण सिद्धांत (Demographic Transition Theory)

जनांकिकी संक्रमण का तात्पर्य यह है कि जनसंख्या वृद्धि आर्थिक विकास के समग्र स्तरों से जुड़ी होती है एवं प्रत्येक समाज विकास से संबंधित जनसंख्या वृद्धि के एक निश्चित स्वरूप का अनुसरण (Pursuance) करता है। इस सिद्धांत के द्वारा ऐसे सामान्य नियमों का प्रतिपादन (Rendering) करने का प्रयास किया गया है जो औद्योगीकरण के फलस्वरूप मानवीय जनसंख्या की मात्रा और संरचना में होने वाले परिवर्तन की व्याख्या करते हैं। इस सिद्धांत के अनुसार यह माना जाता है कि जनसंख्या विकास तीन अवस्थाओं से गुजरा है।

1. ***प्रथम अवस्था:*** पूर्व औद्योगिक समाजों में जनसंख्या लगभग स्थिर थी अर्थात् इस काल में जन्मदर व मृत्यु दर दोनों ही ऊँची थी।
2. ***द्वितीय अवस्था:*** स्वास्थ्य, पोषण, स्वच्छता आदि में प्रगति के फलस्वरूप मृत्युदर में कमी आती है परन्तु जन्मदर यथावत रहती है। फलत: जनसंख्या में तीव्र गति से वृद्धि होती है।
3. ***तृतीय अवस्था:*** जीवन स्तर में सुधार व सामाजिक विकास के कारण जन्म दर व मृत्यु दर दोनों कम होते हैं। फलत: जनसंख्या लगभग स्थिर होती है।

भारत में जनांकिकी संक्रमण
(Demographic Transition in India)

भारत में जनसंख्या संबंधी आंकडों का अध्ययन किया गया है और इसकी निम्न अवस्थाओं की चर्चा की गयी है:-

1. **Ist Stage (1891-1921)—** स्थिर जनसंख्या/मंदवृद्धि का काल
2. **IInd Stage (1921-1971)—** जनसंख्या विस्फोट का काल
3. **IIIrd Stage (1971-1991)—** जनसंख्या वृद्धि धीमी गति से, जन्मदर के साथ मृत्युदर में भी गिरावट
4. **IVth Stage (1991-2020 या 2045)-** जहाँ अनुमानित किया गया है कि जन्मदर-मृत्युदर दोनों कम हो जायेंगे और जनसंख्या वृद्धि स्थिर होगी।

भारत की जनसंख्या-आकार, संगठन एवं वितरण
(Population of India - Size, Organization Distribution)

जनसंख्या की दृष्टि से चीन के बाद विश्व का दूसरा सबसे बड़ा देश भारत है। 1991 में भारत की जनसंख्या विश्व के विकासशील देशों की कुल जनसंख्या का 19.1 प्रतिशत थी। आज वह सम्पूर्ण विश्व की जनसंख्या के लगभग 17.5 प्रतिशत तक पहुँच चुकी है, जबकि उसका भू-क्षेत्र विश्व के कुल भू-क्षेत्र का मात्र 2.4 है। जनसंख्या में इस तीव्र वृद्धि का कारण मृत्युदर में हुई तीव्र गिरावट है। 1981 की जनगणना के अनुसार देश की प्रत्येक हजार की जनसंख्या पर जन्म-दर 33.3 और मृत्युदर 12.5 थी जबकि 1991 में जन्म दर व मृत्युदर के आँकड़े प्रति हजार की जनसंख्या पर क्रमशः 30.0 और 10.0 थे जो 2001 में क्रमशः 26.1 व 8.3 तथा 2011 में क्रमशः 20.22 व 7.4 पहुंच गए। इस प्रकार जन्म-दर और मृत्युदर दोनों में गिरावट आई है किन्तु जनसंख्या की तीव्र वृद्धि को देखते हुए यह गिरावट पर्याप्त नहीं है।

भारत में जनसंख्या वृद्धि (Population Growth in India)

जनगणना का वर्ष	आबादी (करोड़ में)	औसत वार्षिक वृद्धि दर%
1901	23.83	0.30
1911	25.20	0.56
1921	25.13	-0.03
1931	27.89	1.04
1941	31.86	1.33
1951	36.10	1.25
1961	43.91	1.96
1971	54.82	2.22
1981	68.52	2.20
1991	84.63	2.16
2001	102.87	1.97
2011	121.05	1.64

भारत में जन्मदर एवं मृत्यु दर
(Birth Rate and Death Rate in India)

वर्ष	प्रति 1000 व्यक्तियों पर जन्म दर	प्रति 1000 व्यक्तियों पर मृत्यु दर
1901	-	-
1911	49.2	42.6
1921	48.1	47.2
1931	46.4	36.6
1941	45.2	31.2
1951	40.8	25.1
1961	40.9	22.8
1971	41.1	18.9
1981	33.9	12.5
1991	30.0	10.0
2001	26.1	8.8
2011	20.22	7.4

भारत में जनसंख्या घनत्व
(Population Density in India)

जनगणना का वर्ष	प्रतिवर्ग किलोमीटर क्षेत्र में जनसंख्या घनत्व
1901	77
1911	82
1921	81
1931	90
1941	103
1951	117
1961	142
1971	177
1981	216
1991	267
2001	325
2011	382

भारत में जनसंख्या की सघनता (Density) या जन घनत्व 1901 के 77 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर से बढ़कर 2011 में 382 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर हो गया। इस प्रकार जनसंख्या की सघनता में 5 गुना वृद्धि हुई है।

भारत में जन घनत्व क्षेत्रीय स्तर पर अत्यंत विविधता लिए हुए है। सबसे कम सघनता अरुणाचल प्रदेश में है जहाँ एक वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में केवल 17 व्यक्तियों का अनुपात है। कम जनघनत्व वाले अन्य राज्य मिजोरम, सिक्किम, मणिपुर, नागालैण्ड हैं। असम और त्रिपुरा को छोड़कर सभी पूर्वोत्तर राज्यों में जनसंख्या की सघनता कम है। समान रूप से हिमाचल प्रदेश और जम्मू-कश्मीर जैसे पहाड़ी राज्यों

में भी जनघनत्व कम है। दिल्ली, चण्डीगढ़ और पुदुचेरी में जनसंख्या की सघनता सबसे ज्यादा है। जिन स्थानों में जनसंख्या की सघनता राष्ट्रीय औसत से तिगुना से अधिक है वे हैं दमन और दीव, जहाँ दोगुना या उससे ज्यादा हैं, वे हैं बिहार, केरल और पश्चिमी बंगाल, जिन राज्यों में जनसंख्या की सघनता राष्ट्रीय औसत से ऊपर है वे हैं-गोवा, असम, झारखण्ड, पंजाब, तमिलनाडु, हरियाणा और दादर नगर हवेली। राष्ट्रीय औसत से कम सघनता वाले राज्य हैं- महाराष्ट्र, त्रिपुरा, कर्नाटक, गुजरात और आंध्र प्रदेश।

भारत में स्त्री-पुरुषों का परस्पर अनुपात लम्बे समय से पुरुषों के पक्ष में है। 1901 में जहाँ स्त्रियों का अनुपात प्रति एक हजार पुरुष पर 972 था, वहीं 2011 में स्त्रियों की यह संख्या घटकर 943 हो गयी है। इस प्रकार स्पष्ट है कि भारत में स्त्री पुरुष लिंगानुपात में निरन्तर गिरावट देखी जा सकती है। यद्यपि 2001 की तुलना में 2011 की जनगणना के लिंगानुपात (Sex Ratio) में 10 अंक तक की वृद्धि हुई है।

जनसंख्या से जुड़ा दूसरा महत्त्वपूर्ण विषय साक्षरता की दर है। 'पोस्टकार्ड लिख और पढ़ सकने वाली' साक्षरता (Literacy) की परिभाषा के अनुरूप भारत में 2011 की जनगणना के अनुसार 74. 04 प्रतिशत साक्षरता है। पुरुषों में साक्षरता की दर 82.14 प्रतिशत है जबकि स्त्रियों में यह केवल 65.46 प्रतिशत है। स्त्री-पुरुषों के बीच साक्षरता सम्बन्धी यह अन्तराल बहुत ही स्पष्ट है। केरल देश का पहला राज्य है जहाँ लगभग शत-प्रतिशत लोग साक्षर हैं। हिन्दी भाषी राज्यों में साक्षरता दर कम है।

भारत की कुल आबादी के लगभग 16.6 प्रतिशत लोग अनुसूचित जातियों के हैं। यह आबादी लगभग एक हजार जातियों में बंटी हुई है अनुसूचित जातियों में प्रमुख हैं- चमार (जिनकी संख्या कुल अनुसूचित जातियों की एक चौथाई है), भंगी, आदि-द्रविड़, पासी, मडिगा, दुसाध, माली, परियन, कोली या कोरी, महार, नामशूद्र आदि।

अनुसूचित जातियों की आबादी का लगभग आधा हिस्सा हिन्दी भाषी राज्यों में रहता है। दक्षिण में अनुसूचित जातियों की आबादी मुख्यत: तमिलनाडु और आन्ध्र प्रदेश में केन्द्रित है। पूर्व में उनकी आबादी पश्चिम बंगाल में केन्द्रित है। कुल आबादी में अनुसूचित जातियों के लोगों का सर्वाधिक अनुपात (28.9 प्रतिशत) पंजाब में है इसके बाद हिमाचल प्रदेश (25 प्रतिशत), पश्चिम बंगाल (22 प्रतिशत), उत्तर प्रदेश (20.69 प्रतिशत) और हरियाणा (19 प्रतिशत) का स्थान है। देश में जनसंख्या की दृष्टि से सर्वाधिक अनुसूचित जाति वाला राज्य उत्तर प्रदेश है। अनुसूचित जातियों की ज्यादातर आबादी (84 प्रतिशत) ग्रामीण क्षेत्रों में रहती हैं और वे लोग खेतिहर मजदूर, बटाईदार, छोटे किसान और कारीगर के रूप में जीविका अर्जित करते हैं।

जनजातियों की संख्या देश की कुल आबादी का लगभग 8.6 प्रतिशत है। उनकी गणना देश के दुर्बलतम वर्गों में की जाती है। उनकी भाषा व बोलियाँ भिन्न-भिन्न प्रकार की हैं और वे देश के सभी प्रकार के भू-जलवायु क्षेत्रों में रहते हैं। जनजातियों की आबादी का 55 प्रतिशत हिस्सा देश की पूर्वी और केन्द्रीय जनजाति पट्टी में केन्द्रित है। भारत में सर्वाधिक अनुसूचित जनजाति मध्य प्रदेश में पायी जाती है जो राज्य की समस्त जनसंख्या का 21.1% है। उनकी लगभग 28 प्रतिशत आबादी गुजरात, महाराष्ट्र, राजस्थान, दादर-नगर हवेली और गोवा, दमन एवं दीव की पश्चिमी जनजाति पट्टी में रहती है और 6 प्रतिशत आबादी दक्षिण के आन्ध्र प्रदेश, केरल और तमिलनाडु के कुछ हिस्सों में पाई जाती है। देश में चार राज्य और दो केन्द्र शासित प्रदेश ऐसे हैं जहाँ कि 65 प्रतिशत से अधिक आबादी अनुसूचित जनजातियों के वर्ग में आती है, जैसे-मेघालय (80.58 प्रतिशत), नागालैण्ड (83.99 प्रतिशत), अरुणाचल प्रदेश (66.82 प्रतिशत), मिजोरम (93.55 प्रतिशत), दादर नगर हवेली (76.82 प्रतिशत) और लक्षद्वीप (93.82 प्रतिशत)। पाँच राज्य ऐसे भी हैं जहाँ 20 प्रतिशत से अधिक आबादी जनजातियों की है, जैसे-मध्य प्रदेश (22.97 प्रतिशत), मणिपुर (37.30 प्रतिशत), उड़ीसा (22.43 प्रतिशत), सिक्किम (23.22 प्रतिशत) और त्रिपुरा (28.44 प्रतिशत)।

प्रमुख जनजातियों में भीलों की संख्या (60 लाख) सबसे ज्यादा है। भीलों के बाद आते हैं गोंड (लगभग 50 लाख), संथाल (लगभग 40 लाख) और ओराँव (लगभग 20 लाख)। जनजातियों में ग्रेट अण्डमान जनजाति के अब केवल 30 लोग शेष हैं, इनकी बस्तियाँ तेजी से उजड़ रही है। अण्डमान निकोबार द्वीप समूह की सेंटिनलीज, जरवा और ओंगे जनजाति के लोगों की संख्या 200 से ज्यादा नहीं है। देश के सम्पूर्ण भू-क्षेत्र के लगभग 15 प्रतिशत भाग पर जनजातियों की आबादी है, लेकिन देश की 70 प्रतिशत वन और खनिज सम्पदा भी इन्हीं क्षेत्रों में स्थित है।

भारतीय समाज सदैव से बहुधर्मी और बहुजातीय (Multireligion and Multicaste) रहा है जहाँ विश्व के सभी धर्मों के अनुयायी रहते हैं, उदाहरणार्थ- हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, सिख, बौद्ध, जोरोस्ट्रियन (पारसी) और यहूदी। देश में हिन्दू कुल आबादी का लगभग 79. 8% है। उनके बाद मुसलमान (लगभग 14%) आते हैं। पारसी और यहूदी बहुत कम संख्या में हैं। बड़ी संख्या वाले समुदायों के लोग अर्थात् हिन्दू, मुसलमान और ईसाई (2.3) देश के लगभग सभी क्षेत्रों में निवास करते हैं और स्थानीय भाषाएँ व बोलियाँ बोलते हैं। धार्मिक रूप से अल्पमत समुदायों में बहुमत वाले समुदायों की तुलना में शिक्षा और साक्षरता अधिक है। पारसी, जैन, यहूदी और ईसाई समुदाय इसके प्रमाण हैं।

भारत में जनसंख्या वृद्धि / विस्फोट (Population Growth in India)

जनसंख्या वृद्धि वर्तमान भारत की एक महत्त्वपूर्ण समस्या के रूप में उभरी है क्योंकि यहाँ आज विश्व के कुल क्षेत्र के 2.4% भाग में विश्व की 17.5% जनसंख्या निवास कर रही है।

1961 से 2011 तक के 50 वर्षों की अवधि में जनसंख्या में विस्फोटक वृद्धि (17.64% दशकीय वृद्धि दर) दर्ज की गयी है जहाँ प्रतिवर्ष एक ऑस्ट्रेलिया की जनसंख्या (1.85 करोड़) भारत की जनसंख्या में जुड़ जाती है। इस तरह 1951 में 36.11 करोड़ से यह बढ़कर 2001 में 102.87 करोड़ और 2011 में 121 करोड़ हो गयी है और यही हाल रहा तो 2035 तक चीन को पीछे छोड़कर विश्व का प्रथम सर्वाधिक जनसंख्या वाला देश बन जाएगा।

जनसंख्या वृद्धि के सामाजिक कारक
(Social Factors of Population Growth)

भारत में जनसंख्या वृद्धि हेतु जन्मदर एवं मृत्युदर (Birth Rate and Death Rate) में बढ़ता हुआ अन्तर प्रमुख रूप से उत्तरदायी है। चूंकि चिकित्सीय सुविधाओं के विस्तार से मृत्युदर बहुत हद तक नियंत्रित हो गई। (1931 में मृत्यु 36.3 प्रति हजार से घटकर 2011 में 7.4 प्रति हजार) परंतु जन्मदर में अपेक्षित कमी नहीं हो पाई (2011 में 20.22 प्रति हजार) अतः भारत में जनसंख्या वृद्धि के लिए प्रमुख रूप से जन्मदर बढ़ाने वाले कारक ही उत्तरदायी रहे हैं; जैसे:-

1. भारत एक धर्म प्रधान देश रहा है। यहाँ की धार्मिक मान्यताएँ, जैसे- विवाह की अनिवार्यता, मोक्ष प्राप्ति हेतु पुत्र की प्राप्ति और संतानों को ईश्वर की देन मानना और 'पैदा करने वाला भोजन भी देगा' जैसी भाग्यवादी (Fatalis) मान्यताओं व परिवार नियोजन को न अपनाने जैसी समस्याएं जनसंख्या वृद्धि के लिये उत्तरदायी रही हैं।
2. अशिक्षा और अज्ञानता के कारण बच्चों के पालन-पोषण एवं उनके उच्चतर जीवनस्तर सम्बन्धी दूरदर्शिता का अभाव भी अधिक जन्मदर व जनसंख्या वृद्धि का महत्त्वपूर्ण कारण है।
3. गरीबी और निम्न जीवनस्तर के लोगों में बच्चों को आय का साधन माना जाता है साथ ही गरीबों में मनोरंजन के साधनों के अभाव में यौन-आनन्द ही मनोरंजन का एक मात्र साधन होता है जो जन्म दर को बढ़ाकर जनसंख्या में वृद्धि करते हैं।
4. कम आयु में विवाह (यूनिसेफ द्वारा जारी बच्चों की स्थिति की रिपोर्ट 2007 के अनुसार आज भी भारत में औसतन 46% महिलाओं का विवाह 18 वर्ष से कम आयु में कर दिया जाता है) के कारण जनन क्षमता (Fertility) काल का पूरा उपभोग होता है जिससे अधिक संतानें उत्पन्न होती हैं।

   अशिक्षा के कारण विवाह की आयु, प्रजनन व्यवहार, शिशु मृत्युदर, परिवार नियोजन कार्यक्रम आदि नकारात्मक रूप में प्रभावित होते हैं जिससे जनसंख्या वृद्धि होती है।
5. पितृसत्तात्मक (Patriarchal) व्यवस्था में प्रजनन व्यवहार पर पुरुषों का नियंत्रण होता है और महिलाओं की सहमति का महत्त्व बहुत कम होता है जिसके कारण जन्म दर अधिक होती है। भारत में संयुक्त परिवारों में बच्चों के पालन-पोषण की सहज व्यवस्था उपलब्ध होती है जिसके कारण भी बच्चों का प्रजनन (Reproduction) अधिक होता है।
6. अधिक शिशु मृत्युदर (आज 30.15 प्रति हजार है) से जन्मदर में वृद्धि में होती है। 'पुत्र बुढ़ापे का सहारा है' ऐसी मान्यताएँ भी जनसंख्या वृद्धि में सहायक होती हैं।
7. चिकित्सा सुविधाओं में वृद्धि के कारण मृत्युदर नियंत्रित (मृत्युदर 1951 के 27.4 प्रति हजार से घटकर 2011 में 7.4 प्रति हजार तथा शिशु मृत्युदर 1951 के 149 प्रति हजार से घटकर 30.15 प्रति हजार) हो गया है। परन्तु जन्म दर पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा है जिससे जनसंख्या में तीव्र वृद्धि हुई है।

जनसंख्या वृद्धि के सामाजिक परिणाम
(Social Consequences of Population Growth)

भारत में तेजी से बढ़ती इस जनसंख्या ने अनेक सामाजिक, आर्थिक एवं प्रशासनिक समस्याएँ पैदा कर दी हैं। जनसंख्या वृद्धि ने देश के योजनाबद्ध विकास के समक्ष अनेक बाधाएँ उत्पन्न की हैं। जनाधिक्य (Over Population) के कारण उत्पन्न समस्याएँ निम्न हैं:-

1. जनसंख्या-वृद्धि के परिणामस्वरूप बचत का अधिकांश भाग जनसंख्या के भरण-पोषण पर खर्च होने से शुद्ध राष्ट्रीय आय एवं प्रति व्यक्ति आय बहुत ही कम रह जाती है।
2. जनसंख्या के बढ़ने से वस्तुओं की मांग में भी वृद्धि हो जाती है, किन्तु उसी मात्रा में पूर्ति न होने पर वस्तुओं की कीमतें बढ़ जाती हैं।
3. जनसंख्या-वृद्धि होने पर लोगों को बसाने और उनके लिए स्वस्थ्य प्रद मकानों की समस्या पैदा होती है। लोग काफी मात्रा में गाँवों से नगरों में आते हैं जिससे गन्दी बस्तियों एवं आवास की समस्या बढ़ जाती है।
4. देश में जनसंख्या बढ़ने किन्तु उसकी तुलना में उपलब्ध साधनों एवं पूंजी आदि की कमी के कारण बढ़ी हुई श्रमशक्ति का प्रयोग नहीं हो पाता, परिणामस्वरूप बेरोजगारी बढ़ती है।
5. जनसंख्या में तीव्र वृद्धि होने से देश के लोगों को सन्तुलित भोजन नहीं मिल पाता है जिसके कारण उनका पर्याप्त शारीरिक एवं मानसिक विकास नहीं हो पाता है और स्वास्थ की समस्याएँ पैदा हो जाती हैं।
6. जनसंख्या वृद्धि के साथ-साथ देश में निरक्षरों (Illiterate) की संख्या में वृद्धि होती है और जनसंख्या-वृद्धि के कारण बच्चों की संख्या बढ़ती है जो शिक्षा के विस्तार में समस्या खड़ी कर देती है।
7. देश में प्राकृतिक संसाधन एवं भूमि सीमित मात्रा में हैं। जनसंख्या वृद्धि के परिणामस्वरूप प्रति व्यक्ति संसाधनों की उपलब्धता

कम हो जाती है। इसका प्रभाव राष्ट्रीय उत्पादन एवं राष्ट्रीय आय तथा प्रति व्यक्ति आय पर भी पड़ता है। फलत: देश में सामान्य गरीबी बनी रहती है।

8. जनसंख्या-वृद्धि ने औद्योगीकरण से सम्बन्धित अनेक समस्याओं को जन्म दिया है। लोग गाँव छोड़कर नगरों की ओर जाने लगे हैं। परिणामस्वरूप औद्योगिक एवं नगरीय केन्द्रों में अनेक सामाजिक समस्याएँ उत्पन्न हुई हैं।
9. जनसंख्या-वृद्धि के कारण परिवार में सदस्यों की संख्या बढ़ जाने से सीमित आय को सभी पर खर्च करना होता है जिससे सदस्यों के लिए सुविधाएँ समुचित रूप से नहीं जुटाई जा सकती और जीवनस्तर निम्न हो जाता है।
10. जनसंख्या-वृद्धि तीव्र होने पर सभी के भरण-पोषण (Maintenance) के लिए साधन जुटा पाना सम्भव नहीं होता है। ऐसी दशा में देश में गरीबी और बेकारी बढ़ जाती है जिससे सामाजिक विघटन एवं अपराध की दर बढ़ जाती है।
11. परिवार में सदस्यों की संख्या बढ़ने पर माता-पिता परिवार के सदस्यों के भरण-पोषण की व्यवस्था के लिए घर से बाहर कमाने चले जाते हैं तो बच्चे नियन्त्रण के अभाव में पारिवारिक मूल्यों की अवहेलना करने लगते हैं जिससे पारिवारिक विघटन की स्थिति पैदा होती है।

मूल्यांकन एवं सुझाव (Evaluation and Suggestions)

उपरोक्त विवरणों से यह स्पष्ट है कि जनसंख्या में विस्फोटक वृद्धि वर्तमान भारत की एक महत्त्वपूर्ण चुनौती है जिसने देश के समक्ष अनेक समस्याओं को उत्पन्न किया है। वर्तमान आर्थिक सुधारों ने जहाँ व्यक्ति की महत्त्वाकांक्षा एवं जागरूकता को प्रोत्साहित किया है वहीं आर्थिक विषमता में वृद्धि करके कहीं न कहीं जनसंख्या वृद्धि हेतु भी अभिप्रेरक (Motivator) रहा है।

वैश्वीकरण के वर्तमान दौर में जहाँ मनुष्य संसाधन के रूप में स्थापित हो रहा है, जहाँ ज्ञान-समाज का उद्‌भव (Emergence) हो रहा है अथवा जहाँ ज्ञान को शक्ति के रूप में देखा जा रहा है तथा जहाँ ज्ञान अर्थव्यवस्था का महत्त्व बढ़ता जा रहा है जनसंख्या वृद्धि के प्रति परंपरागत दृष्टिकोण में भी बदलाव आ रहा है और जनसंख्या को समस्या के बजाय संसाधन के रूप में देखा जा रहा है।

अत: भारत के संदर्भ में भी हमें इन दृष्टिकोणों को ध्यान में रखना होगा और भारत में जनसंख्या वृद्धि के समाधान में जनसंख्या नियंत्रण के निम्न उपायों पर अमल करना होगा-

1. सामाजिक आर्थिक विकास को तीव्र कर इसके परिणामों को निचले स्तर तक पहुँचाना होगा।
2. आधुनिक शिक्षा तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण का प्रसार करना और जनसामान्य तक इनकी पहुँच सुनिश्चित करना चाहिए।
3. परिवार कल्याण कार्यक्रम का प्रचार-प्रसार और इसके प्रति एक सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित करने का प्रयास होना चाहिए।
4. गर्भपात के नियमों को उदार बनाना एवं इसको प्रोत्साहन देने से भी अनचाहे गर्भों को समाप्त किया जा सकता है।
5. बाल-विवाह पर प्रतिबंध और अधिक आयु में विवाह को प्रोत्साहन देना चाहिए।
6. स्त्री-पुरुष समानता की स्थापना करने का प्रयास किया जाना चाहिए।
7. स्वस्थ मनोरंजन की व्यवस्था करनी चाहिए।

जन्म दर को कम करने हेतु उपरोक्त सुझावों पर अमल करने के साथ-साथ विद्यमान जनसंख्या को एक संसाधन के रूप में विकसित करके आर्थिक विकास के लक्ष्य को प्राप्त करना होगा तभी हम जनसंख्या वृद्धि के दुष्परिणामों से बचते हुए इसको एक वरदान के रूप में स्थापित कर सकते हैं।

भारत में जन्म दर (Birth Rate in India)

जन्म दर किसी भी देश की जनसंख्या संरचना (Population Structure) का महत्त्वपूर्ण निर्धारक तत्व है और इसकी अधिकता जनसंख्या वृद्धि का प्रमुख कारक होती है। भारत में अधिक जन्म दर एक महत्त्वपूर्ण जनसांख्यिकीय (Demographic) परिघटना और जनसंख्या वृद्धि के लिए प्रमुख उत्तरदायी कारक रही है। यद्यपि 1921-31 के 46.4 प्रति हजार से घटकर 2011 में 20.22 प्रति हजार हो गया है तथापि यह अन्य देशों की तुलना में अभी भी अधिक है।

भारत में जन्म दर के संदर्भ में क्षेत्रीय विविधता भी देखी जाती है, जैसे-यह शहरों की तुलना में गांवों में अधिक है तथा तमिलनाडु, केरल, महाराष्ट्र की तुलना में बिहार, उत्तर प्रदेश, पश्चिम बंगाल, असम आदि में जन्म दर अधिक है।

उच्च जन्म दर के सामाजिक निर्धारक (Social Determinants of High Birth Rates)

भारतीय स्त्रियों की उच्च प्रजनन क्षमता को कई तथ्य प्रभावित करते हैं, जो उच्च जन्म दर के निर्धारक के रूप में जाने जाते हैं; जैसे:-

1. वैवाहिक संस्था की सार्वभौमिकता ने उच्च जन्मदर को आधार प्रदान किया है। हिन्दुओं में एक पुरुष से यह आशा की जाती है कि वह अपने आश्रम के कर्त्तव्यों को पूरा करे, जिसमें विवाह भी एक कर्त्तव्य है। हिन्दू औरतों के लिए विवाह आवश्यक समझा जाता है क्योंकि वे मात्र इसी संस्कार की अधिकारी हैं।
2. बौद्ध धर्म को छोड़कर दुनिया का हर धर्म अपने अनुयायियों को जन्म देने और वृद्धि करने के लिए प्रोत्साहित करता है। धर्मों तथा सामाजिक संस्थाओं द्वारा प्रबलता से समर्थित उच्च जनन

क्षमता की प्रवृत्ति ने पारंपरिक भारत में परिवार के आकार के स्तर को अपने अनुसार तय किया।

3. भारत में बाल विवाह प्रथा प्रचलित रही है जो बाल विवाह निरोधक कानून के बाद भी जारी है। कम उम्र में विवाह के परिणामस्वरूप प्रजनन काल की अवधि बढ़ जाती है जिससे अधिक बच्चों के पैदा होने की संभावना बढ़ जाती है। अत: भारत में, स्त्रियाँ अपने पूरे प्रजनन काल में बच्चों को जन्म देती हैं। अल्पवयस्क (Minor) अवस्था में विवाह होने से प्रजनन हेतु तार्किक दृष्टिकोण का विकास भी नहीं हो पाता जिसके कारण बाल विवाह के परिणामस्वरूप अधिक बच्चे पैदा होते हैं।
4. परंपरागत समाज की तरह, भारत में बच्चों के जन्म के प्रति अत्यंत सकारात्मक दृष्टिकोण है। अधिक बच्चे पैदा करना जहाँ एक ओर पुरुषत्व के प्रतीक के रूप में मान्यता प्राप्त है तो दूसरी तरफ परिवार की शक्ति के रूप में भी बड़े परिवार एवं अधिक बच्चों के प्रति सशक्त दृष्टिकोण है जिसके परिणामस्वरूप लोग अधिक से अधिक बच्चे पैदा करते हैं।
5. पारिवारिक क्रम की निरंतरता बनाए रखने के लिए और माता-पिता की बुढ़ापे में देख-रेख करने के लिए लड़कों की आवश्यकता ने भी जन्म दर को बढ़ाए रखा है।
6. भारतीय समाज में बच्चे पैदा करना सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और धार्मिक मूल्य हैं। यहाँ बच्चों की संख्या सीमित रखने का कोई आर्थिक अभिप्रेरण (Motivation) नहीं होता है क्योंकि बच्चों की आवश्यकताओं को पूरा करने की जिम्मेदारी संयुक्त परिवार की होती है।
7. भाग्यवादिता (Fatalism) भारतीय समाज में एक अंतर्निहित (Implicit) प्रवृत्ति है। ऐसी प्रवृत्ति से बच्चों को ईश्वर का उपहार समझा जाता है। नवजात और बाल मृत्यु की ऊँची दर के कारण भी एक पति-पत्नी इसलिए बहुत सारे बच्चे पैदा कर लेते हैं कि इनमें से कुछ तो जवान होने तक जिन्दा बच ही जाएंगे।

इन सभी कारकों को अलग-अलग करके नहीं देखा जा सकता। वास्तव में यह अनेक कारकों का सम्मिश्रण है जो भारत में उच्च जन्म दर में अपना योगदान देते हैं। उच्च जनन क्षमता के तथ्यों के संबंध में परंपरागत भारतीय मान्यताओं पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए जो दम्पत्ति के प्रजनन व्यवहार को प्रभावित करता है।

उच्च जन्म दर के सामाजिक परिणाम (Social Consequences of High Birth Rate)

देश की जनसंख्या वृद्धि की समस्या को व्यापक रूप से प्रभावित करने के अलावा, उच्च जन्म दर परिवार और समाज को भी कई तरह से प्रभावित करता है।

औरतें अपने उत्पादक जीवन के वर्षों में संतानोत्पत्ति और उनके लालन-पालन से बंध जाती हैं। इस तरह वे अपनी क्षमता के प्रदर्शन और आत्म विकास के अन्य माध्यमों को ढूँढने से वंचित रह जाती हैं। अत्यधिक संतानोत्पत्ति उसके स्वयं के और उसके बच्चों के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है।

बड़े परिवार के भरण-पोषण की जिम्मेदारी कमाने वाले व्यक्ति पर अतिरिक्त भार डालती है जो जीवन में तनाव पैदा करती है। दैनिक जीवन की समस्याओं से बचने के लिए वह शराब आदि व्यसनों का सहारा ले सकता है जो परिवार के आर्थिक और भावनात्मक स्थिति को और बिगाड़ देती है।

अधिक बच्चों के होने से उन पर होने वाला पालन-पोषण व्यय बहुत अधिक बढ़ जाता है, जिससे अधिकांश बच्चे कुपोषित रह जाते हैं। साथ ही इनकी शिक्षा आदि का भी उचित प्रबंध नहीं हो पाता है जिससे इनके स्वास्थ्य के साथ ही विकास भी दुष्प्रभावित होता है।

बच्चे जो बहुधा अनचाहे, बिना प्यार के और तिरस्कृत होते हैं, अपनी मर्जी से अपना जीवन गुजारने के लिए छोड़ दिए जाते हैं। इसके परिणामस्वरूप ऐसे बच्चों में कभी-कभी अपराधी प्रवृत्ति पनपने लगती है। बड़े परिवार के बच्चों को बहुधा बहुत कम उम्र से काम करना पड़ जाता है जिससे वे स्कूल जाने और शिक्षा ग्रहण करने से वंचित रह जाते हैं। इन परिस्थितियों में सर्वाधिक हानि लड़कियों को ही उठानी पड़ती है। वह बहुधा स्कूल ही नहीं भेजी जाती है ताकि घरेलू कामकाज में अपनी माँ की मदद करें और अपने से छोटे बच्चों की देखभाल करें।

सुखी और स्वस्थ परिवार ही वह आधार है जिस पर स्वस्थ समाज का निर्माण होता है। अत्यधिक जनन क्षमता जो पारिवारिक असंतोष और अस्वस्थता के कारणों में से एक है, में स्वस्थ समाज के निर्माण के लिए कमी करने की आवश्यकता है।

मूल्यांकन एवं सुझाव (Evaluation and Suggestions)

स्पष्ट है कि भारत में उच्च जन्म दर की विद्यमानता एक महत्त्वपूर्ण जनांकिकीय घटना है और जनसंख्या वृद्धि के लिए प्रमुख उत्तरदायी कारक रहा है। परंतु वैश्वीकरण के वर्तमान दौर में जन्मदर की अधिकता के संदर्भ में परंपरागत दृष्टिकोण में परिवर्तन हुआ है और अब जनसंख्या को समस्या के बजाय संसाधन के रूप में देखा जाने लगा है। फिर भी यह तथ्य है कि भारत में जन्म दर में वृद्धि कई रूपों में समस्यात्मक रही है।

अत: जन्म दर को कम करने के लिए निम्न सुझावों पर अमल करने की जरूरत है:-

1. सामाजिक-आर्थिक विकास को तीव्र किया जाए। इस विकास के परिणामस्वरूप एक तरफ अवसर उपलब्ध होगें तो दूसरी तरफ लोगों में इन अवसरों का लाभ लेने की महत्त्वकांक्षा, प्रजनन

के दबाव को कम करने में मदद करेंगी जिससे जन्म दर को नियंत्रित करने में सहायता मिल सकेगी।

2. आधुनिक शिक्षा तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण के प्रसार पर बल दिया जाना चाहिए, जिससे लोगों को अधिक प्रजनन के दुष्परिणामों का ज्ञान हो सके और वह प्रजनन निरोधक उपायों को अपनााने में सहज हो सकें। आधुनिक शिक्षा द्वारा उन परम्परागत मान्यताओं (Traditional Beliefs) को भी दूर करने में सहायता मिली है जो अधिक संतानोत्पत्ति को धार्मिक रूप से वैध बनाते हैं और अधिक जन्म को प्रोत्साहित करते हैं।

3. बाल-विवाह प्रतिबंध को प्रोत्साहन प्रदान कर इसे कठोरता से लागू किया जाना चाहिए और एक सक्षम निगरानी तंत्र का विकास करना चाहिए, जो बाल विवाह संबंधी घटनाओं की रोकथाम एवं इनके विरुद्ध उचित कार्यवाही कर सके। बाल विवाह के खतरों के प्रति लोगों में अधिकतम जागरुकता का विकास करना चाहिए और इस प्रकार के विवाहों में सम्मिलित लोगों के लिए कठोर दण्ड का प्रावधान करना चाहिए।

4. स्त्री-पुरुष समानता की स्थापना की दिशा में प्रयास को तीव्र करना चाहिए, जिससे सन्तानोत्पत्ति में दोनों पक्षों की सहमति बन सके और स्त्रियों को प्रजनन के लिए बाध्य न होना पड़े। साथ ही अवसरों की समानता के माध्यम से महिलाओं की आर्थिक सहभागिता (Participation) बढ़ाने का प्रयास किया जाना चाहिए जिससे कि उन पर प्रजनन का दबाव कम हो सके।

5. परिवार कल्याण कार्यक्रम का प्रचार प्रसार और इसके प्रति लोगों के दृष्टिकोण में सकारात्मक परिवर्तन पर बल दिया जाना चाहिए जिससे अधिकतम लोग परिवार नियोजन के उपायों को अपना सके, साथ ही ऐसे लोगों को विभिन्न पुरस्कारों द्वारा प्रोत्साहित करना चाहिए। ऐसे लोगों के लिए नकारात्मक प्रोत्साहन की व्यवस्था करनी चाहिए जो इन कार्यक्रमों को नहीं अपनाते और अधिक बच्चे पैदा करते हैं।

6. गर्भपात के नियमों को उदार बनाना और प्रोत्साहन (Incentive) देना भी जन्म दर को कम करने में सहायक होगा। भारत में अशिक्षा एवं जागरुकता (Awareness) के अभाव के कारण अक्सर अनचाहे गर्भों में वृद्धि होती है और गर्भपात के नियमों की कठोरता के कारण इन बच्चों की जन्म देने की बाध्यता हो जाती है। अतः गर्भपात के कानूनों को सहज बनाकर और सुरक्षित गर्भपात की सुविधा को बढ़ाकर जन्म दर को नियंत्रित किया जा सकता है।

7. स्वस्थ मनोरंजन का साधन उपलब्ध कराने और गरीब लोगों तक इसकी पहुंच बढ़ाने का प्रयास किया जाना चाहिए, जिससे लोगों की मनोरंजन व्यवस्था में वृद्धि हो एवं गरीब लोगों के पास यौन सम्बन्ध के अलावा मनोरंजन के अन्य विकल्प उपलब्ध हो सके। इस प्रयास से भी जन्म दर को नियंत्रित किया जा सकता है।

भारत में जन्म दर कम करने हेतु उपरोक्त सुझावों पर अमल करने के साथ-साथ विद्यमान जनसंख्या को एक संसाधन के रूप में विकसित करने की जरूरत है तभी हम अधिक जन्म दर के दुष्परिणामों से बचते हुए आर्थिक विकास, ज्ञान- अर्थव्यवस्था या ज्ञान समाज के लक्ष्य को प्राप्त कर सकते हैं।

भारत में मृत्यु दर (Mortality Rate in India)

भारत एक विकासशील देश है। यद्यपि स्वास्थ्य एवं चिकित्सा सुविधाओं का विस्तार करके यहाँ मृत्यु दर को काफी नियंत्रित किया गया है (1921 के 36.3 प्रति हजार से घटकर 2011 में 7.4 प्रति हजार) तथापि, अन्य देशों की तुलना में यह अभी भी अधिक है। मृत्यु दर की यह अधिकता जहाँ प्रत्यक्ष रूप से जनसंख्या वृद्धि को हतोत्साहित करती रही है, वहीं परोक्ष रूप से जन्म दर को बढ़ाकर जनसंख्या वृद्धि के लिए भी उत्तरदायी रही है। इस रूप में उच्च मृत्यु दर को अविकास का सूचक माना जाता है और इसे जनांकिकीय या सामाजिक समस्या के रूप में देखा जाता है।

उच्च मृत्यु दर के सामाजिक कारक (Social Factors of High Mortality Rate)

भारत में उच्च मृत्यु दर के लिए अनेक कारक उत्तरदायी रहे हैं, जैसे:-

1. निम्न स्वास्थ्य एवं जीवनस्तर (प्रति व्यक्ति निम्न आय, स्वास्थ्य पर किया जाने वाला कम खर्च) के कारण सहायक बीमारियों के प्रति संवेदनशीलता (Sensitivity) बढ़ जाती है जो मृत्यु दर को बढ़ा देती है। भारत में टी.बी., हैजा, मलेरिया, टिटनेस व रेबीज से मरने वाले व्यक्तियों की संख्या बहुत अधिक है।

2. पौष्टिक आहार की कमी (प्रति व्यक्ति खाद्य उपलब्धता, प्रति व्यक्ति पोषक तत्वों की उपलब्धता) के कारण कुपोषण एवं स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याएँ उत्पन्न होती हैं जो अधिक मृत्यु दर का कारण बन जाती हैं। विभिन्न अंतर्राष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय संगठनों की रिपोर्टों का निष्कर्ष है कि भारत में बच्चों एवं महिलाओं में बहुत बड़ी संख्या में कुपोषण व्याप्त है और अधिक राज्यों में यह समस्या अत्यंत गंभीर है, जिसके कारण मृत्यु दर में वृद्धि हो रही है।

3. चिकित्सा सुविधा की उपलब्धता में कमी और प्रति व्यक्ति डॉक्टर की उपलब्धता में कमी के कारण लोगों को सही समय पर चिकित्सा सुविधा प्राप्त नहीं हो पाती है। ग्रामीण क्षेत्रों में चिकित्सालय अत्यंत दूर-दूर हैं और डॉक्टर भी ग्रामीण क्षेत्रों में आना नहीं चाहते, जिसके कारण लोगों को उचित समय पर चिकित्सा सहायता नहीं मिल पाती, परिणामस्वरूप इन क्षेत्रों में छोटी स्वास्थ्य समस्याएँ भी गंभीर रूप ले लेती है और मृत्यु दर बढ़ जाती है।

4. अत्यधिक गरीब जनसंख्या उपलब्ध स्वास्थ्य सेवाओं का लाभ नहीं ले पाती है। इनका जीवनस्तर निम्न होने के कारण इनमें महामारियों का प्रकोप भी अधिक होता है, जिससे मृत्यु दर अधिक होती है। भारत के गरीब क्षेत्रों में सामान्य संक्रामक बीमारियां जैसे टी.बी., कालरा, हैजा, चेचक आदि महामारियों का रूप ले लेती है क्योंकि गरीब जनता के पास स्वास्थ्य सेवाओं पर खर्च करने के लिए धन नहीं होता, परिणामस्वरूप मृत्यु दर बढ़ जाती है।
5. अशिक्षा और अज्ञानता के कारण परिवार नियोजन अपनाने में अतार्किक निर्णय, बाल-विवाह, भाग्यवादिता तथा स्वास्थ्य सेवाओं के प्रति उदासीनता के कारण भी मृत्यु का दबाव बना रहता है। अशिक्षा और जागरुकता के अभाव में लोगों में अंधविश्वास (Superstition) की प्रवृत्ति बढ़ती है, जिससे वे बीमारियों व अन्य समस्याओं की नैदानिक विधियों के बजाय जादू-टोने आदि अतार्किक विधियों को अपनाते हैं, जिससे मृत्यु दर बढ़ जाती है।
6. रुढ़ियाँ और अवैज्ञानिक मान्यताएं परम्परागत भारतीय समाज की विशेषता रही हैं। इनके कारण लोग नवीन तकनीकों को अपनाने के प्रति उदासीन रहे हैं जिससे मृत्यु दर अधिक बनी रही है। धर्म और परम्पराएं नवीन चिकित्सकीय उपलब्धियों के प्रति उदासीन होती हैं, जिसके कारण रुढ़िवादी (Conservative) जनता इसका लाभ नहीं ले पाती, फलतः मृत्यु दर में वृद्धि होती है।
7. कम उम्र में विवाह ने मातृ-मृत्यु दर और शिशु-मृत्यु दर के रूप में मृत्यु दर को ऊंचा रखा है। कम आयु में विवाह एवं प्रजनन से एक तरफ जहाँ माताओं का स्वास्थ्य दुष्प्रभावित होता है साथ ही कम उम्र में विवाह से महिलाओं पर प्रजनन का दबाव अधिक होता है, जिसके कारण प्रजनन के समय उनकी मृत्यु की संभावनाएं बढ़ जाती है और मृत्यु दर में वृद्धि होती है।

मूल्यांकन एवं सुझाव (Evaluation and Suggestions)

यद्यपि स्वास्थ्य सुविधाओं को बढ़ाकर, विभिन्न तरह के टीकों के प्रयोग एवं दवाई के छिड़काव द्वारा महामारी पर नियंत्रण करके, अकाल आदि में राहत कार्यों द्वारा तथा आर्थिक विकास एवं शिक्षा के द्वारा मृत्यु दर को नियंत्रित किया जा रहा है। परंतु अभी भी मृत्यु दर की अधिकता (7.4 प्रति हजार) इन प्रयासों की अपर्याप्तता को परिलक्षित (Reflected) करती है।

अतः वैश्वीकरण के वर्तमान दौर में आर्थिक विकास के लक्ष्य की प्राप्ति हेतु और एक विकसित आधुनिक समाज की स्थापना हेतु आवश्यक है कि भारत में वर्तमान मृत्यु दर को और अधिक नियंत्रित किया जाए और इसके लिए निम्न सुझावों पर अमल किया जा सकता है-

1. अधिकाधिक चिकित्सा सुविधाएँ प्रदान की जाए और इनका अधिकतम जनसंख्या तक विस्तार किया जाए।
2. मातृत्व एवं शिशु कल्याण संस्थानों की स्थापना की जाए।
3. चिकित्सा सुविधाओं का स्तर बढ़ाकर इसके न्यायपूर्ण वितरण (Equitable Distribution) को सुनिश्चित किया जाए।
4. संक्रामक महामारियों और बीमारियों से निपटने के लिए पर्याप्त आपात व्यवस्था बनायी जाए।
5. आर्थिक विकास द्वारा गरीबी का उन्मूलन किया जाए।
6. आधुनिक शिक्षा का प्रसार करके लोगों में तार्किक एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित किया जाए।
7. स्त्रियों की प्रस्थिति एवं उनके प्रति लोगों के दृष्टिकोण में सकारात्मक बदलाव लाया जाए।

भारत में प्रवास (Migration in India)

जनसंख्या वृद्धि के निर्धारक के रूप में प्रवास एक महत्त्वपूर्ण घटक है जो जनसंख्या वृद्धि के साथ-साथ जनसंख्या संरचना के सभी पक्षों को कमोबेश प्रभावित करता है, जिसके कारण सामाजिक संरचना एवं समाज की संस्थाएं भी प्रभावित होती हैं। आजादी से पूर्व यातायात और संचार में अपर्याप्त विकास के कारण प्रवास की दर सीमित थी, परंतु यातायात और संचार के विकास के साथ इसके दर में तेजी से वृद्धि हुई है, जिसे हम दो रूपों में देख सकते हैं-

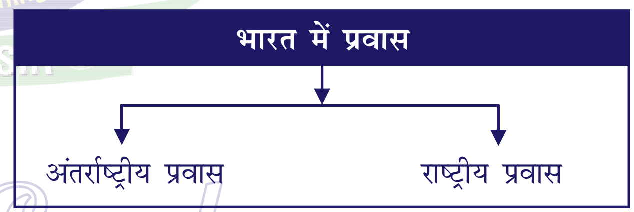

आजादी के बाद अंतर्राष्ट्रीय प्रवास के दौरान भारत से बाहर जाने वाले उत्प्रवासियों में मुख्य रूप से खाड़ी देशों में मजदूर के रूप में तथा इंग्लैण्ड, अमेरिका व कनाडा आदि देशों में प्रतिभा पलायन महत्त्वपूर्ण है। जबकि, भारत आने वाले अप्रवासियों में नेपाल, तिब्बत, भूटान एवं बांग्लादेश से आने वाले लोगों एवं शरणार्थियों को शामिल किया जा सकता है, जिन्होंने भारतीय जनसंख्या संरचना को प्रभावित किया है।

आंतरिक प्रवास के अंतर्गत विवाह के कारण और मजदूरी करने हेतु गाँव से शहरों की ओर प्रवास की दर अधिक है। परंतु औद्योगीकरण के कारण गाँव से नगरों में, नगरों से नगरों में और हाल के वर्षों में अल्प मात्रा में नगर से गांव की ओर प्रवास में वृद्धि हुई है। वर्तमान भारत के लिए ग्रामीण-नगरीय प्रवास सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण घटना है जो कई कारकों का परिणाम है और कई रूपों में भारत की सामाजिक संरचना को प्रभावित किया है। (प्रत्येक वर्ष बीमारू राज्यों से दिल्ली की ओर लगभग 3 लाख तथा महाराष्ट्र एवं गुजरात की ओर लगभग ढ़ाई लाख लोग प्रवासित होते हैं)

भारत में प्रवास की उपरोक्त प्रवृत्ति के सामाजिक कारक
(Social Factors of the above trend of Migration in India)

भारत में प्रवास के कारकों को दो वर्गों में बाँट कर देखा जा सकता है–

भारत प्रवास के कारण
- धकेलने वाले कारक
- खींचने वाले कारक

1. ***धकेलने वाले कारक (Push Factors)-*** निम्नांकित तथ्यों को ऐसे कारकों के रूप में उल्लेख किया जा सकता है जो लोगों को शहरों की ओर प्रव्रजन अथवा प्रवसन (Migration) के लिए मजबूर करते हैं:–

(i) जनसंख्या वृद्धि भारत की एक प्रमुख समस्या रही है और ग्रामीण क्षेत्रों में जनसंख्या वृद्धि और विद्यमान साधनों (कृषि) पर उनके बढ़ते हुए दबाव ने लोगों को अन्य जगहों पर जीविका के साधनों की तलाश के लिए मजबूर किया है।

(ii) गरीबी, बेरोजगारी और निम्न उत्पादकता (बिहार, उत्तर प्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखण्ड, मध्य प्रदेश आदि के ग्रामीण क्षेत्र के संदर्भ में) के कारण भी रोजगार हेतु नगरों एवं सम्पन्न राज्यों की ओर प्रवास में वृद्धि होती है।

(iii) ग्रामीण क्षेत्र में आय के वैकल्पिक साधनों के अभाव के कारण लोगों में नगरों की ओर जाने की प्रवृत्ति पायी जाती है।

(iv) संयुक्त परिवार व्यवस्था और उससे संबंधित कठोर नियमों से मुक्ति के लिए लोग नगरों में जाना पसंद करते हैं।

(v) संपत्ति संबंधी एवं संपत्ति के विभाजन संबंधी कठोर नियम युवकों को शहर की ओर ढकेलते हैं।

(vi) परंपरागत सामंती व्यवस्था (Feudal System) के अवशेष के रूप में शोषण की प्रवृत्ति के कारण गाँवों से गरीबों एवं निम्न जातियों का नगरों की ओर पलायन होता है।

(vii) आंतरिक संघर्ष, अशांति एवं असुरक्षा की स्थिति से बचने के लिए भी लोगों का प्रवास अच्छी कानून व्यवस्था वाली जगहों पर होता है।

(viii) प्राकृतिक आपदाओं (बिहार के बाढ़ग्रस्त क्षेत्र) के कारण भी लोग अपना क्षेत्र छोड़ते हैं और आर्थिक संभावनाओं के क्षेत्र की ओर प्रवास करते हैं।

(ix) बुनियादी सुविधाओं यथा बिजली, पानी, यातायात आदि के अभाव के कारण भी लोग गांव से नगरों की ओर गमन करते हैं।

2. ***खींचने वाले कारक (Pull Factors)-*** ऐसे तथ्य जो लोगों को शहरों की ओर आकर्षित करते हैं, खींचने वाले कारक के रूप में स्पष्ट किये जा सकते हैं। इन कारकों में निम्नांकित का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है–

(i) नगरों में बेहतर रोजगार के अवसर उपलब्ध होते हैं जो लोगों को आकर्षित (Attract) करते हैं। नगरीय क्षेत्रों में हुए औद्योगिक विकास एवं नवीन नगरीय आवश्यकताओं ने नगरीय क्षेत्रों के अनेक रोजगार के अवसरों को उत्पन्न किया है, जिसका लाभ लेने के लिए बहुत बड़ी संख्या में लोग नगरीय क्षेत्रों की तरफ आते हैं।

(ii) नगरों में उच्च मजदूरी की दर एवं विकास की अन्य सम्भावनाएँ भी गरीब मजदूरों को अपनी तरफ आकर्षित करती हैं, जिससे वह अधिक आय अर्जित कर अपना जीवन स्तर (Quality of life) ऊँचा कर सके।

(iii) बेहतर काम की दशाएँ और कार्य सम्बन्धी सुविधाएँ नगरों में गाँवों की अपेक्षा अधिक होती हैं, जिसके कारण श्रमिक वर्ग (Working Class) नगरों की ओर आकर्षित होते हैं, जिससे वह शोषणयुक्त (Exploited) व खराब कार्य व्यवस्थाओं से मुक्ति पा सके।

(iv) आधुनिक मूल्य-व्यवस्था (Value System) के कारण लोगों को अपनी योग्यतानुसार स्वयं को स्थापित करने का अवसर प्राप्त होता है। साथ ही उनकी अर्जित प्रस्थिति (Earned Status) की मान्यता के कारण प्रदत्त या जातीय प्रस्थिति से संबंधित निर्योग्यताओं से छुटकारा मिल जाता है, जिसके कारण ग्रामीण क्षेत्रों से निम्न जातीय प्रस्थिति के लोगों का बहुत बड़ी संख्या में नगरीय क्षेत्रों में प्रवास होता है।

(v) विकसित संचार एवं यातायात व्यवस्था तथा स्वास्थ्य सुविधाओं की उपस्थिति नगरीय जीवन को सहज बनाती है, जिससे लोग नगरों की तरफ आकर्षित होते हैं।

उच्च प्रवास के परिणाम
(Consequences of High Migration)

भारत में प्रवास की उच्च दर ने कई तरह के प्रभावों को उत्पन्न किया है, जिनको निम्न बिन्दुओं के अंतर्गत बांटकर देखा जा सकता है–

जनांकिकीय परिणाम (Demographic Consequences)

1. पुरुषों के अकेले प्रवास के परिणामस्वरूप लिंगानुपात में असमानता हो जाती है।
2. गाँवों से युवकों के प्रवास ने गाँवों में औरतों, बूढ़ों और बच्चों के अनुपात को बढ़ाया है। परिणामस्वरूप भारत के गाँवों में जन्म दर के घटने की प्रवृत्ति दिखाई दे रही है (मुख्यतः उन राज्यों में जहाँ ग्रामीण-नगरीय प्रवास अधिक है)।

आर्थिक परिणाम (Economic Consequences)

1. प्रवासियों के जीवनस्तर में सुधार हुआ है और औसत उत्पादकता बढ़ी है।
2. प्रवासियों के माध्यम से दूसरे क्षेत्रों से उनके स्वयं के क्षेत्रों में धन का आगमन संभव हुआ है, जिसके कारण उनके क्षेत्रों में आर्थिक सुधार एवं जीवनस्तर में सुधार संभव हो पाया है।
3. ग्रामीण क्षेत्रों में मजदूरों की कमी महसूस की जा रही है और उनकी मजदूरी की दर में वृद्धि होने लगी है।
4. प्रवासी जहाँ प्रवासित हुए हैं, उन क्षेत्रों पर जनसंख्या के दबाव में वृद्धि हुई है। फलत: आर्थिक संसाधन एवं बुनियादी सुविधाएं कम पड़ने लगी हैं, जिसे भारत में हम अतिनगरीकरण के रूप में देख सकते हैं और जिसने अन्य कई नगरीय समस्याओं को उत्पन्न किया है। परंतु, दूसरी ओर इन प्रवासियों के श्रम (कुशल या अकुशल) ने इन क्षेत्रों के आर्थिक विकास में सहयोग दिया है।

सामाजिक परिणाम (Social Consequences)

1. ग्रामीण क्षेत्रों में नगरीय संस्कृति का प्रवेश हुआ है।
2. उपभोक्तावादी संस्कृति का विकास हुआ है, जिसका प्रसार अब ग्रामीण क्षेत्रों में भी हो रहा है।
3. प्रवास के परिणामस्वरूप पारिवारिक विघटन की स्थितियों में भी बढ़ोत्तरी हुई है।
4. प्रवास के कारण क्षेत्रवाद और क्षेत्रीय तनाव में वृद्धि देखी गई है।
5. इसने यौन-व्यभिचार को बढ़ावा दिया है।

मूल्यांकन एवं सुझाव (Evaluation and Suggestions)

स्पष्ट है आधुनिक भारत में प्रवास एक महत्त्वपूर्ण घटना है जो न केवल जनसंख्या वृद्धि का, बल्कि कई सामाजिक-आर्थिक कारणों का संयुक्त परिणाम है और इसने न केवल जनांकिकीय प्रभावों को, बल्कि कई सामाजिक-आर्थिक प्रभावों (Social Economic effects) को उत्पन्न किया है। आज नगरीकरण जनित समस्याओं के मूल में इसे प्रमुख कारक के रूप में स्वीकार किया जा रहा है।

परंतु, वैश्वीकरण और आधुनिकीकरण के वर्तमान दौर में इन नकारात्मक परिणामों के बावजूद प्रवास को रोका नहीं जा सकता है, क्योंकि, औद्योगिक समाज की यह माँग होती है कि योग्य व्यक्ति को उसके अपेक्षित स्थान-तक पहुँचाया जाए और इस संदर्भ में हम देखें तो वर्तमान वैश्विक गाँव के निर्माण की प्रक्रिया मे प्रवास (Migration) अपेक्षित है। अत: निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते हैं कि देश के सामाजिक-आर्थिक विकास हेतु प्रवास को रोकने के बजाए इसकी प्रवृत्ति को संतुलित करने की आवश्यकता है और यह तभी संभव है, जब भारत के ग्रामीण क्षेत्रों और अविकसित एवं बीमारू राज्यों को विकास के मार्ग पर लाया जाए।

भारत में विवाह की आयु (Age of Marriage in India)

विवाह की आयु जनसंख्या वृद्धि का प्रमुख निर्धारक कारक है। कम उम्र में विवाह संपूर्ण प्रजनन काल के उपयोग को संभव बनाकर जन्म दर में वृद्धि करता है और इसके विपरीत स्थिति को जन्म दर कम करने वाले कारक के रूप में देखा जाता है।

भारत में बाल विवाह या कम आयु में विवाह एक ऐतिहासिक घटना रही है। यद्यपि अनेक उपायों द्वारा बाल विवाह को नियंत्रित करने का प्रयास किया जाता रहा है तथापि, अभी भी यहाँ कम आयु में विवाह एक सामान्य घटना है और जनसंख्या वृद्धि का एक प्रमुख कारण भी है। यूनिसेफ द्वारा बच्चों की स्थिति पर रिपोर्ट भी इस तथ्य को पुष्ट करता है जिसके अनुसार आज भी भारत में औसतन 46% महिलाओं का विवाह 18 वर्ष से कम आयु में कर दिया जाता है।

भारत में कम आयु में विवाह के कारण (Causes of Early Marriage in India)

भारत में कम आयु में विवाह के लिए कई कारण उत्तरदायी रहे हैं, जैसे –

1. हिन्दू धर्म की प्रमुख धार्मिक मान्यता जैसे-किसी लड़की को माता-पिता के घर में रजस्वला होने पर माता-पिता एवं भाई को नरक (Hell) में जाना पड़ता है, के कारण बाल विवाह की प्रथा प्रचलित हुई।
2. जाति, अंतर्विवाह और सगोत्र, सप्रवर एवं ग्राम बहिर्विवाह जैसे विवाह सम्बन्धी निषेधों ने बाल विवाह को व्यापक बनाया।
3. संयुक्त परिवार व्यवस्था एवं पितृसत्तात्मकता (Patriarchal) के अंतर्गत स्त्रियों की पुरुषों पर आर्थिक निर्भरता के कारण लड़कियों का विवाह जल्दी कर दिया जाता है।
4. स्त्रियों की निम्न प्रस्थिति (Low Status) के चलते लड़कियों एवं स्त्रियों से उनके निर्णय नहीं पूछे जाते, इस कारण भी बाल विवाह को बल मिला है।
5. अशिक्षा एवं जागरूकता के अभाव के कारण बाल विवाह के दुष्परिणामों के बारे में ज्ञान की कमी रही है।
6. दहेज प्रथा के कारण लड़कियों को आर्थिक उत्तरदायित्व समझा जाता है, जिसको जल्दी पूरा करने की भी प्रवृत्ति बाल विवाह को बढ़ावा देती है।

कम आयु में विवाह के परिणाम (Consequences of Early Marriage)

भारत में एक सामाजिक घटना के रूप में कम आयु में विवाह ने कई तरह के परिणामों को उत्पन्न किया है जिनको निम्न वर्गों में बांटकर देखा जा सकता है-

कम आयु में विवाह के परिणाम

- जनांकिकीय परिणाम
- सामाजिक-सांस्कृतिक परिणाम

जनांकिकीय परिणाम (Demographic Consequences)

1. कम आयु में विवाह के कारण महिलाओं के प्रजनन काल का संपूर्ण उपयोग होने के कारण जन्म दर में वृद्धि हुई है, फलत: जनसंख्या में वृद्धि हुई है।
2. कम आयु में ही प्रजनन के कारण उत्पन्न होने वाले बच्चों का सम्पूर्ण विकास नहीं हो पाता परिणामस्वरूप शिशु-मृत्यु दर में वृद्धि हुई है।
3. प्रजनन के कारण महिलाओं के स्वास्थ्य पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है और लगातार प्रजनन दबाव के कारण मातृत्व-मृत्यु दर में वृद्धि (1951 के 437 प्रति लाख से 2016 में 130 प्रति लाख) हुई है।
4. स्त्रियों के कम उम्र में विवाह के कारण मातृत्व मृत्युदर में वृद्धि लिंगानुपात में कमी (1901 के 972 के घटकर 2011 में 943 हो गया है) हुई है।
5. अधिक प्रजनन के कारण 0-15 वर्ष के बच्चों की संख्या में वृद्धि के कारण आश्रित जनसंख्या में वृद्धि हुई है, फलत: सामाजिक आर्थिक विकास और जीवनस्तर दुष्प्रभावित हुआ है।

सामाजिक - सांस्कृतिक परिणाम (Social - Cultural Consequences)

1. विवाहोपरांत नए परिवार के साथ सामंजस्य स्थापित करने और नवीन भूमिकाओं को निर्वहन करने में कम आयु की लड़कियाँ असक्षम रही हैं।
2. अल्पायु में विवाह व गृहस्थी के बोझ के कारण महिलाओं में तनाव व कुंठा में वृद्धि हुई है जो व्यक्तित्व के विकास में बाधक सिद्ध होता है।
3. योग्य जीवनसाथी के चुनाव की समस्या तथा बेमेल विवाह की संभावना बढ़ी है, जिससे दाम्पत्य जीवन दुष्प्रभावित हुआ है और वैवाहिक जोड़ों के बीच तनाव में वृद्धि से विघटन (Dissolution) की समस्या उत्पन्न हुई है।
4. परिपक्वता के संदर्भ में देखा जाए तो कम उम्र में विवाह अपरिपक्व निर्णय की संभावना को जन्म देते हैं। फलत: अन्य दबाव न रहे तो अधिक उम्र में विवाह की अपेक्षा इनमें तलाक की दर अधिक होती है और यही स्थिति भारत में भी दृष्टिगत हुई है।
5. कम आयु में विवाह से स्त्री के स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव पड़ता है, क्योंकि इस समय वह शारीरिक एवं मानसिक रूप से परिपक्व नहीं होती है।

कुछ समाजशास्त्रियों ने कम आयु में विवाह के कुछ सकारात्मक प्रभावों को भी दर्शाया है, जैसे-इस प्रकार के विवाह पारस्परिक अनुकूलन (Adaptation) में सहायक होते हैं। इससे आर्थिक-आत्मनिर्भरता में वृद्धि होती है, इन विवाहों से नैतिक पतन पर रोक लगती है।

हाल के वर्षों में भारत में विवाह की आयु में निरंतर वृद्धि हुई है और कुछ समुदायों में तथा क्षेत्रों में तो इतनी अधिक हो गई है कि इसे समस्या के रूप में देखा जाने लगा है और इस घटना के लिए भी कई कारक उत्तरदायी हैं, जैसे-

1. शिक्षा के प्रसार से लोगों की चेतना में वृद्धि हुई है और लोग बाल विवाह के दुष्परिणामों के प्रति सचेत हुए हैं, जिससे अधिकांश लोग अपने बच्चों का बड़ी उम्र पर विवाह करने लगे हैं।
2. स्त्रियों की प्रस्थिति (Status) में सुधार होने से उनको भी विकास के अवसर प्रदान किए जाने लगे है और उनके निर्णयों को भी मान्यता दी जाने लगी है, जिसके कारण विवाह आयु में वृद्धि हुई है।
3. जीवनसाथी के चुनाव में लड़के-लड़कियों की स्वतंत्रता भी विवाह आयु बढ़ाने में सहायक हुई है।
4. आत्मनिर्भरता और रोजगार का महत्त्व तथा इसके लिए विशिष्ट शिक्षा की आवश्यकता ने भी विवाह की आयु को बढ़ाया है।
5. परिवार के संयुक्त ढाँचे में परिवर्तन (जहाँ आर्थिक सुरक्षा संबंधी प्रकार्य कमजोर हुए हैं) ने बाल विवाह के पारम्परिक दृष्टिकोण में परिवर्तन किया।
6. बढ़ती महत्त्वाकांक्षा के कारण भी लोग विवाह देर से कर रहे हैं।
7. दहेज प्रथा ने भी विवाह आयु पर प्रभाव डाला है।
8. नगरों में विशेष रूप से आया यौनसंबंधों में खुलापन और सहनिवास (co-living) जैसी प्रवृत्तियों ने भी विवाह आयु बढ़ाने में मदद की है।

मूल्यांकन एवं सुझाव (Evaluation and Suggestions)

स्पष्ट है कम उम्र में विवाह ने संप्रति (Present) भारतीय समाज की एक महत्त्वपूर्ण घटना के रूप में सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों तरह के प्रभावों को उत्पन्न किया है। परंतु, आज जब हम आधुनिक समाज के लक्ष्य को प्राप्त करने की दिशा में अग्रसर हैं तब इन सकारात्मक प्रभावों के बावजूद कम उम्र में विवाह को प्रोत्साहित नहीं किया जा सकता, बल्कि इसको शिक्षा के प्रसार, विधानों के क्रियान्वयन (बाल विवाह निषेध अधिनियम, 2006 के द्वारा भारत में होने वाले बाल-विवाह को रोकने के लिए प्रयास किया गया है और इस कानून के क्रियान्वयन की जिम्मेदारी राज्यों को दी गयी है तथा असफल होने पर फंड में कटौती का प्रावधान है), लिंग समानता

KGS IAS
Dr. S.S. Pandey

के लक्ष्य में प्रगति (स्त्रियों की प्रस्थिति में सुधार), दहेज प्रथा का उन्मूलन, अधिक आयु में विवाह का प्रचार-प्रसार आदि के द्वारा कम उम्र में विवाह को हतोत्साहित करना होगा, तभी हम इसके नकारात्मक प्रभावों से बचते हुए एक आदर्श-आधुनिक समाज (Ideal Modern Society) की स्थापना कर सकते हैं, लेकिन इसके लिए अत्यधिक आयु में होने वाले विवाह को भी नियंत्रित करना होगा, ताकि मानव समाज के आदर्श स्वरूप (Ideal Form) और विवाह की आयु के बीच संतुलन बना रहे।

जनसंख्या नीति और परिवार नियोजन (Population Policy and Family Planning)

किसी देश की जनसंख्या को उस देश में उपलब्ध संसाधनों के साथ अनुकूलित करने की नीति 'जनसंख्या नीति' कहलाती है। भारत में 16 अप्रैल, 1976 में राष्ट्रीय जनसंख्या नीति घोषित की गई और यह जून 1977 में लागू की गई। 1976 में राष्ट्रीय जनसंख्या नीति प्रथम बार घोषित किए जाने तक भारत की जनसंख्या नीति सामान्यत: परिवार नियोजन नीति मानी जाती थी। भारतीय जनसंख्या नीति की अंतर्राष्ट्रीय परिधि में आलोचना के आधारों में से यह एक था कि जनसंख्या नीति के अन्य समाधानों को यह अनदेखा कर देता था। जनसंख्या नीति के वक्तव्य ने जनसंख्या की समस्या के कतिपय पहलुओं यथा सामाजिक-आर्थिक और राजनैतिक के मध्य कुछ जटिल संबंधों को ध्यान में रखा। इसने जनसंख्या समस्या के निवारण के लिए समीचीन (Accurate) उपायों को समाहित किया, जिनमें से कई उपाय परिवार नियोजन से आगे बढ़कर जनसंख्या नीति व्यवस्था में परिवार नियोजन कार्यक्रम की बेहतरी के लिए समाहित थे।

29 जून, 1977 को दिया गया परिवार कल्याण कार्यक्रम नीति का वक्तव्य वैसे किसी भी तरीके को समाप्त करता है जिसमें बाध्यता अथवा दबाव की थोड़ी भी संभावनाएं हैं। परिवार नियोजन कार्यक्रम का नाम भी बदलकर परिवार कल्याण कार्यक्रम हो गया जो सरकार की परिवार और समुदाय के कार्यक्रम के द्वारा संपूर्ण कल्याण बढ़ाने की चिंता को दर्शाता है।

1976 में घोषित राष्ट्रीय जनसंख्या नीति द्वारा निर्मित उपायों को बरकरार रखा गया है। ये निम्न हैं:-

1. विवाह के लिए कानूनन निम्नतम निर्धारित उम्र को बढ़ाकर लड़कियों के लिए 18 वर्ष और लड़कों के लिए 21 वर्ष करना।
2. 2001 तक 1971 की जनसंख्या दर रखना, हर परिस्थिति में जहाँ जनसंख्या राज्य के साथ केंद्रीय स्रोतों की साझेदारी में कारक है, यथासम्भव राज्य की योजनाओं के लिए केंद्रीय सहायता का आवंटन, करों और शुल्कों की सहायता राशि का हस्तांतरण करना।
3. राज्य की योजनाओं को दी जाने वाली 8 प्रतिशत केंद्रीय सहायता को सिद्धांत रूप से उनके परिवार कल्याण कार्यक्रम के साथ जोड़ दिया जाना।
4. औपचारिक स्कूली शिक्षा में जनसंख्या शिक्षा को जोड़ दिया जाना।
5. परिवार कल्याण कार्यक्रम (Family Welfare Programme) को हर माध्यम का उपयोग कर लोकप्रिय बनाने की योजना।
6. कार्यक्रम को लागू कराने में स्वयंसेवी संस्थाओं की सहभागिता।
7. औपचारिक और अनौपचारिक माध्यम के द्वारा औरतों का शैक्षणिक स्तर बढ़ाना। नीति वक्तव्य में यह भी घोषित किया गया कि सरकार प्रजनन जैविकीय और गर्भ-निरोधण के क्षेत्र में होने वाले शोध पर विशेष ध्यान देगी।

राष्ट्रीय जनसंख्या नीति, 2000 (National Population Policy, 2000)

भारत में जनसंख्या वृद्धि को नियंत्रित करने और उसे देश के संसाधनों के साथ नियोजित करने के लिए राष्ट्रीय जनसंख्या नीति, 2000 बनाई गई जिसके कुछ अल्पकालिक एवं दीर्घकालिक उद्देश्य रखे गए।

अल्पकालिक उद्देश्यों में गर्भ निरोधक साधनों का तेजी से प्रचार करना, स्वास्थ्य-अधोसंरचना (Sub-structure) का विकास करना, स्वास्थ्य कार्मिक तथा जननी स्वास्थ्य देखभाल के लिए एकीकृत सेवा पर अधिक ध्यान देना आदि प्रमुख थे। इनका लक्ष्य तात्कालिक रूप से जनसंख्या वृद्धि पर नियंत्रण लगाने का प्रयास करना था। इसके साथ ही मध्यकालीन उद्देश्य के रूप में 2010 तक प्रजनन दर को कम करना लक्ष्य बनाया गया।

दीर्घकालीन उद्देश्यों में 2045 तक जनसंख्या को सामाजिक-आर्थिक विकास के लिए स्थिर करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया जिससे जनसंख्या और राष्ट्रीय संसाधनों को सर्वोत्तम रूप से समायोजित (Well Adjust) किया जा सके।

उपरोक्त लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए 14 राष्ट्रीय सामाजिक-जनसांख्यिकीय लक्ष्य निर्धारित किए गए जिन्हें 2010 तक प्राप्त करना था, जैसे-

1. जननी और बाल स्वास्थ्य सेवाएं और अधोसंरचना संबंधी आवश्यकताएं पूरी करना।
2. 14 वर्ष की आयु तक शिक्षा को नि:शुल्क व आवश्यक बनाना।
3. शिशु मृत्यु दर को प्रति एक हजार पर 30 से कम करना।
4. मातृ-मृत्यु दर को एक लाख पर 100 से कम करना।
5. लड़कियों का विवाह 20 वर्ष के बाद करने के लिए प्रोत्साहित करना।
6. 80% प्रसव संस्थात्मक तरीकों से और 100% प्रशिक्षित व्यक्तियों द्वारा करवाने पर बल देना।
7. कुल प्रजनन दर (TFR) के न्यूनतम स्तर के लिये छोटे परिवार के विचार को प्रोत्साहित करना।
8. गर्भपात के विषय में पूरी जानकारी उपलब्ध करवाना।

9. जनसंख्या नियंत्रण के कार्य को मॉनिटर करने के लिए एक 'राष्ट्रीय आयोग' की स्थापना का भी लक्ष्य रखा गया।

छोटे-परिवार के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए निम्न अभिप्रेरणा संबंधी उपाय का सुझाव दिया गया:–

1. अनुकरणीय (Exemplary) कार्यों के लिए जिला परिषदों और ग्राम-पंचायतों को पुरस्कार देना।
2. दो बच्चों तक लड़की के लिए 500 रु. तक नगद पुरस्कार देना।
3. गाँवों में पहली संतान 19 वर्ष की आयु के बाद जन्म देने पर 500 रु. का पुरस्कार देना।
4. 1976 के बाल-विवाह निषेध अधिनियम को सख्ती से लागू करना। (बाल-विवाह निषेध अधिनियम, 2006)
5. 2026 तक लोकसभा के लिए सदस्य संख्या न बढ़ाना।

राष्ट्रीय जनसंख्या आयोग (National Population Commission)

नई जनसंख्या नीति के कार्यान्वयन पर निगरानी रखने व उसकी समीक्षा के लिए 11 मई, 2000 को प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में एक उच्चस्तरी 100 सदस्यीय 'राष्ट्रीय जनसंख्या आयोग' (National Population Commission) का गठन किया गया।

आयोग की पहली बैठक 22 जुलाई, 2000 को नई दिल्ली में सम्पन्न हुई जिसमें जनसंख्या नियंत्रण की परियोजनाओं के वित्तीयन के लिए एक नए जनसंख्या स्थिरीकरण कोष के गठन की घोषणा की गयी।

राष्ट्रीय जनसंख्या नीति के कार्यान्वयन की समीक्षा एवं निगरानी के लिए गठित राष्ट्रीय जनसंख्या आयोग का पुनर्गठन प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह ने 19 मई, 2005 को किया हैं। पुनर्गठित आयोग में भी प्रधानमंत्री स्वयं इस आयोग के अध्यक्ष हैं, जबकि केन्द्रीय स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्री व योजना आयोग के उपाध्यक्ष इसके दो उपाध्यक्ष होंगे। यह आयोग अभी तक योजना आयोग के अधीन था किन्तु आगे से इसे स्वास्थ्य मंत्रालय के अधीन रखा गया है।

आयोग के प्रभावी एवं सुचारू कार्य संचालन की दृष्टि से इसके सदस्यों की संख्या को 131 से घटाकर अब 40 किया गया है। सदस्यों में 8 प्रमुख केन्द्रीय मंत्री व 7 राज्यों के मुख्यमंत्री शामिल हैं। ये मुख्यमंत्री मुख्यत: उन राज्यों के हैं जहाँ जनसंख्या एक बड़ी समस्या है या फिर जहाँ जनसंख्या नियंत्रण में विशेष सफलता प्राप्त की गयी है। आयोग के अन्य सदस्यों में राष्ट्रीय स्तर के सभी छह राजनीतिक दलों के अध्यक्ष, आईएमए के अध्यक्ष एवं गणमान्य हस्तियाँ शामिल हैं।

राष्ट्रीय जनसंख्या कोष

फरवरी, 2000 में घोषित नई राष्ट्रीय जनसंख्या नीति के क्रियान्वयन के लिए फरवरी, 2003 में राष्ट्रीय जनसंख्या कोष की स्थापना की गयी। 100 करोड़ की प्राथमिक पूंजी के साथ इस कोष के लिए विभिन्न निजी संस्थानों, चैरिटेबिल संस्थाओं, उद्योगों, गैर सरकारी संगठनों से सहयोग भी लिया गया है। प्रधानमंत्री इस कोष के पदेन अध्यक्ष तथा केन्द्रीय स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्री इसके उपाध्यक्ष हैं। वर्ष 2025 तक जनसंख्या स्थिरीकरण के लक्ष्य (मध्यावधि समीक्षा के अनुसार लक्ष्य को प्राप्त नहीं किया जा सकेगा) को प्राप्त करने हेतु इस कोष द्वारा विभिन्न प्रकार के जनसंख्या नियंत्रण कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं। इस कोष से पिछड़े राज्यों को विशेष सहायता उपलब्ध कराई जाती है।

राष्ट्रीय जनसंख्या आयोग की रिपोर्ट

केन्द्र सरकार द्वारा जुलाई, 2000 में गठित राष्ट्रीय जनसंख्या आयोग के तकनीकी कार्यदल के वर्ष 2006 के मध्य पेश रिपोर्ट में कहा गया है कि आगामी 20 वर्षों अर्थात् वर्ष 2026 में देश की जनसंख्या 140 करोड़ हो जाएगी। इस प्रकार 2001 में 102.9 करोड़ की तुलना में जनसंख्या में 37.1 करोड़ (36 प्रतिशत) की वृद्धि 2026 तक हो जाएगी।

रिपोर्ट के अनुसार इस 25 वर्षों में (2001-2026 के दौरान) जनसंख्या में सर्वाधिक 102 प्रतिशत की वृद्धि दिल्ली में होगी, जबकि सबसे कम 15 प्रतिशत की वृद्धि तमिलनाडु में व 17 प्रतिशत की वृद्धि केरल में होने की संभावना इसमें व्यक्त की गयी है। रिपोर्ट के अनुसार 2001-26 के दौरान देश में जनसंख्या में जहाँ 36 प्रतिशत वृद्धि होगी, वहीं हरियाणा, राजस्थान, उत्तर प्रदेश व मध्य प्रदेश में यह वृद्धि 40-50 प्रतिशत की होगी, जबकि हिमाचल प्रदेश, पंजाब, पश्चिम बंगाल, उड़ीसा, आंध्र प्रदेश व कर्नाटक में जनसंख्या में 20-30 प्रतिशत वृद्धि अपेक्षित की गयी है।

रिपोर्ट के अनुसार 2001-26 के दौरान 25 वर्षों की अवधि में देश की जनसंख्या में जो 37.1 करोड़ वृद्धि अपेक्षित है, उसकी 50 प्रतिशत वृद्धि (18.7 करोड़ की वृद्धि) अकेले सात राज्यों-बिहार, झारखण्ड, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, राजस्थान, उत्तर प्रदेश एवं उत्तराखण्ड में ही होगी तथा 24.9 करोड़ जनसंख्या के साथ उत्तर प्रदेश देश में सर्वाधिक जनसंख्या वाला राज्य बना रहेगा। रिपोर्ट के अनुसार 2001-26 के दौरान देश की कुल जनसंख्या वृद्धि का लगभग 22 प्रतिशत भाग उत्तर प्रदेश में ही जुड़ेगा। तकनीकी कार्यदल द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट के आंकड़ों का सारांश अधोलिखित है; यथा–

2026 में देश का जनसंख्या परिदृश्य: एक दृष्टि में	
• कुल प्रक्षेपित जनसंख्या	140 करोड़
• अप्रेक्षित जन्म दर	16 प्रति हजार
• शिशु मृत्यु दर	40 प्रति हजार
• स्त्री-पुरुष अनुपात	930:1000
• जनसंख्या घनत्व (जनसंख्या प्रतिवर्ग किमी)	426
• 2001-26 के दौरान देश में जनसंख्या वृद्धि	36 प्रतिशत

परिवार नियोजन (Family Planning)

परिवार नियोजन जिसे आज परिवार कल्याण कार्यक्रम के नाम से जाना जाता है, जनसंख्या नियंत्रण हेतु भारत सरकार की ओर से संचालित किया जा रहा एक कार्यक्रम है जिसका उद्देश्य गर्भ-निरोधक साधनों का प्रचार एवं प्रसार करके जनता को उसका ज्ञान करवाना है जिससे विवाहित दम्पत्ति वांछित संतानों को ही जन्म देकर परिवार को सीमित रख सकें और देश में अनुकूल जनसंख्या (Favourable Population) के स्तर को बनाया रखा जा सके।

परिवार नियोजन के तहत जनसंख्या नियंत्रण हेतु मुख्यत: आठ साधन अपनाए जाते हैं जिनमें दवाओं एवम् कृत्रिम तरीकों के अलावा ऑपरेशन, गर्भपात, यौन शिक्षा तथा परिवार नियोजन संबंधी ज्ञान प्रमुख हैं।

नई जनसंख्या नीति के तहत वर्तमान में इस कार्यक्रम के तहत कई प्रयास किए जा रहे हैं:-

1. प्रजनन योग्य दंपत्तियों तक इस कार्यक्रम को पहुँचाने के लिए जन शिक्षा एवं अभिप्रेरण (Motivation) का कार्य चलाया जा रहा है जिसके लिए रेडियो, टी.वी. समाचार पत्रों आदि द्वारा प्रचार- प्रसार किया जा रहा है।
2. स्कूलों एवं स्कूल के बाहर प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम में जनसंख्या को जोड़ दिया गया है।
3. श्रम समूहों, स्वयं सेवी संगठनों, पंचायतों एवं स्थानीय कार्य-समितियों की भी इस कार्य में मदद ली जा रही है।
4. निम्न स्तर के अधिकारी, चिकित्सा अधिकारी, शिक्षकों तथा अन्य कर्मचारियों को परिवार नियोजन का प्रशिक्षण दिया जा रहा है।
5. 10 लाख से अधिक लोगों को इससे संबंधित पत्र और पत्रिकाएँ भेजी जाती है।
6. लगभग 26 हजार प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र, 1.6 लाख उपकेंद्र और 2600 समुदाय स्वास्थ्य केंद्र तथा 5 लाख चिकित्सक और अर्द्ध-चिकित्सक और 6.5 लाख प्रशिक्षित दाई इसमें लगे हुए हैं।
7. विभिन्न राज्यों में 18 अनुसंधान केन्द्रों की स्थापना की गई है जो परिवार नियोजन एवं परिवार-कल्याण के बारे में नवीन जानकारी एवं साधनों की खोज करते हैं।

मूल्यांकन एवं सुझाव (Evaluation and Suggestions)

परिवार नियोजन के तहत किए गए उपरोक्त प्रयासों का निश्चित तौर पर कुछ सकारात्मक प्रभाव सामने आया है। इस कार्यक्रम के प्रारंभ से लेकर (1952) आज तक इससे लगभग 47 लाख ऑपरेशन और 118 लाख गर्भ समापन आदि के द्वारा लगभग 28 करोड़ जन्म को रोका जा सका है। परन्तु, उपरोक्त उपलब्धियाँ अभी भी पर्याप्त नहीं हैं। भारत इस कार्यक्रम को चलाने वाला विश्व का प्रथम देश था, बावजूद इसके न हम अपेक्षित जन्म दर को प्राप्त कर सके हैं और न ही जनसंख्या नियंत्रण के अपेक्षित लक्ष्य को।

1975-77 के बीच (संजय गाँधी प्रभाव) इस कार्यक्रम के द्वारा अद्भुत सफलता प्राप्त की गई थी परंतु उसके बाद के वर्षों में सफलता की दर अपेक्षित नहीं रही। आज भी वर्ष भर में कुल गर्भाधानों का लगभग 25% अनचाहा होता है; गर्भधारण तथा बच्चों को जन्म देने की अवधि में 1 लाख से अधिक स्त्रियों की प्रति वर्ष मृत्यु हो जाती है, लगभग 58% प्रसव आज भी घरों में होता है और आज भी ग्रामीण क्षेत्रों में शिशु मृत्यु दर लगभग 80 प्रति हजार है।

इस कार्यक्रम की असफलता या अपर्याप्तता हेतु कई सांस्कृतिक पक्ष उत्तरदायी रहे हैं, जैसे:-

1. पुत्र प्राप्ति की प्रबल इच्छा (मोक्ष (Salvation) प्राप्ति का अचेतन एवं बुढ़ापे का सहारा या कमाई का साधन चेतन उदेश्य) के कारण लोग एक पुत्र के लिए लगातार लड़कियां होने पर भी प्रजनन की निरंतरता बनाए रखते हैं।
2. अशिक्षा एवम् जागरूकता का अभाव, के चलते लोग परिवार नियोजन साधनों को नहीं अपनाते और बच्चों को भगवान की देन समझते हुए अधिक बच्चे पैदा करते हैं।
3. स्त्रियों की निम्न प्रस्थिति, के कारण प्रजनन पर उनकी सहमति नहीं ली जाती है और उन्हें पैदा करने व उसका पालन-पोषण (Upbringing) करने वाली मशीन के रूप में समझा जाता है जिससे जनसंख्या वृद्धि होती रहती है।
4. कम आयु में विवाह, के कारण महिलाओं के सम्पूर्ण प्रजनन काल का उपयोग होता है जिससे उनके अधिक बच्चे होते हैं जो जनसंख्या वृद्धि हेतु उत्तरदायी हैं।
5. संरचनात्मक (Structural) सुविधाओं की अपर्याप्तता के कारण बाल मृत्यु दर अधिक होती है जिससे लोग अधिक से अधिक बच्चे पैदा करते हैं साथ ही सुरक्षित गर्भपात की व्यवस्था न होने के कारण अनचाहे गर्भ को भी पैदा करने का बाध्यता हो जाती है।
6. प्रचार-प्रसार के साधनों की अपर्याप्तता, के चलते लोगों में जागरुकता का विकास नहीं हो पाता फलत: वह परिवार नियोजन कार्यक्रम व इसके लाभों से अनभिज्ञ (Unaware) रहते हैं जिससे जनसंख्या निरंतर बढ़ती रहती है।
7. प्रशासनिक एवं राजनीतिक दृढ़ इच्छाशक्ति की कमी के कारण परिवार नियोजन संबंधी कठोर कानून नहीं बन पाते और न ही बने हुए कानूनों का प्रभावी क्रियान्वयन (Implementation) हो पाता है जिससे जनसंख्या वृद्धि पर अंकुश नहीं लगा पाता है।
8. संजय-इफेक्ट का दुष्प्रभाव, भी जनसंख्या वृद्धि का एक कारण रहा है क्योंकि संजय गांधी के लक्ष्य उन्मुखी नसबन्दी कार्यक्रम के कारण लोगों में परिवार नियोजन कार्यक्रमों को प्रति संदेह एवं भय उत्पन्न कर दिया था जिससे लोग इन कार्यक्रमों से कतराने लगे थे।

स्पष्ट है कि उपरोक्त योजनागत कमियों को दूर करने के साथ-साथ हमारे सामाजिक-सांस्कृतिक विश्व दृष्टि में परिवर्तन अपरिहार्य है तभी हम इस कार्यक्रम की सफलता की आशा कर सकते हैं। हाल के समाजशास्त्री भी यह दर्शाते हैं कि यह जागरूकता (Awareness) एवं लघु मानदण्ड की स्वीकृति के बावजूद इस कार्यक्रम से अपेक्षित सफलता तब तक नहीं मिल सकती जब तक कि हमारी विचारधारा एवं दृष्टिकोण (Ideology and Approach) में परिवर्तन नहीं आ जाता है। इसके लिए महिला सशक्तिकरण को आज एक सहायक कारक के रूप में देखा जा रहा है जो महिलाओं की जागरूकता के साथ समाज की पितृसत्तात्मकता की प्रवृति में कमी लाएगा और कार्यक्रम को सफल बनाने में सहायक रहेगा।

इस कार्यक्रम की सफलता के लिए **अमर्त्य सेन** का **'केरल मॉडल'** (महिलाओं की स्वास्थ्य सुविधाओं से संबंधित तथ्य) भी एक सराहनीय प्रयास साबित हो सकता है।

उपरोक्त प्रयासों के अलावा चीनी मॉडल (दबावात्मक प्रयास) को भी संशोधित रूप में अपनाया जाना चाहिए। इस संदर्भ में राष्ट्रीय विकास परिषद् की जनसंख्या संबंधी उपसमिति द्वारा किया गया सुझाव भी एक महत्त्वपूर्ण कदम साबित हो सकता है।

महत्त्वपूर्ण तथ्य (Important Facts)

राष्ट्रीय विकास परिषद का सुझाव (National Development Council's Suggestion)

राष्ट्रीय विकास परिषद् की जनसंख्या संबंधी उपसमिति ने यह सुझाव दिया है कि जन प्रतिनिधि कानून में संशोधन करके जिन व्यक्तियों की दो से अधिक संतान हैं उन्हें संसद और राज्य-विधान सभाओं के लिए चुनाव लड़ने के लिए अयोग्य घोषित कर देना चाहिए।

यद्यपि यह प्रस्ताव अभी तक लागू नहीं किया जा सका परंतु राजस्थान सरकार ने पंचायत चुनाव हेतु यह प्रावधान किया कि जिन व्यक्तियों के दो से अधिक बच्चे हैं वो पंचायत के लिए चुनाव नहीं लड़ सकेंगे। यदि पंचायत सदस्य होने के बाद व्यक्ति को तीसरी संतान होती है तो उसकी सदस्यता स्वतः समाप्त हो जाएगी। छत्तीसगढ़ में भी यह कानून लागू है।

अमर्त्य सेन का केरल मॉडल

अमर्त्य सेन ने **माल्थस** का विरोध और कंडोरसेट का समर्थन करते हुए केरल परिकल्पना का विकास किया। उन्होंने साक्षरता में वृद्धि और अच्छी प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल को जनसंख्या वृद्धि नियंत्रण हेतु उपाय के रूप में प्रस्तुत किया और इसके लिए केरल को उदाहरण के रूप में उद्धृत किया।

चीनी मॉडल

जनसंख्या वृद्धि की समस्या से निजात पाने के उद्देश्य से 1978 में चीन में परिवार नियोजन को मौलिक नागरिक कर्त्तव्यों में जोड़ दिया गया। 1980 में वहां के उप-प्रधानमंत्री 'यावो इलिन' ने 'प्रति व्यक्ति एक संतान' का नारा दिया, जिस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहन के साथ-साथ कई दबाव मूलक कारक भी प्रयोग में लाए गए। जनसंख्या नियंत्रण हेतु प्रयुक्त किए गए इस तरीके (मुख्यतः दबाव मूलक तरीके) को 'चीनी मॉडल' के नाम से जाना जाता है।

भारत में शिशु मृत्यु दर (Infant Mortality Rate in India)

शिशु मृत्यु दर से तात्पर्य आयु के प्रथम वर्ष (0-1) की मृत्यु से है। शिशु मृत्युदर को समाज की सामान्य स्वास्थ्य दशाओं का सर्वश्रेष्ठ सूचक माना जाता है। यह दर जितनी कम होगी जीवन स्वास्थ्य उतना ही अच्छा होगा व प्रजनन दर भी कम होगी। इसके विपरीत, जहाँ शिशु मृत्युदर अधिक होगी वहाँ प्रजनन दर (Fertility Rate) भी ऊँची होगी।

शिशु मृत्युदर को ज्ञात करने हेतु जीवन के प्रथम वर्ष (0-1) में हुई कुल मृत्यु को उसी काल विशेष में सजीव जन्में शिशुओं की कुल संख्या से भाग दिया जाता है व प्रति संख्या को शिशु मृत्युदर कहा जाता है और यह दर यदि प्राप्त हजार जन्मों में निकालना हो तो भागफल को 1000 से गुणा कर दिया जाता है।

$$\text{IMR} = \frac{\text{किसी निश्चित क्षेत्र या वर्ष में 1 वर्ष से कम आयु वाले शिशुओं की मृत्यु की कुल संख्या}}{\text{उसी वर्ष और क्षेत्र में सजीव जन्मे शिशुओं की कुल संख्या}} \times 1000$$

शिशु मृत्यु दर को आयु के आधार पर दो भागों में बाँटा जाता है-

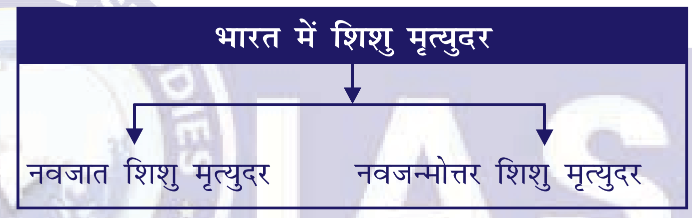

1. ***नवजात शिशु मृत्युदर (Neo Natal Mortality Rate)***- इसके अंतर्गत 4 सप्ताह अथवा 1 माह से कम आयु के शिशुओं की मृत्युदर को ज्ञात किया जाता है।

$$\text{N.N.M.R.} = \frac{\text{एक माह से कम आयु के मृतक बच्चों की संख्या}}{\text{सजीव जन्में कुल बच्चों की संख्या}} \times 1000$$

2. ***नवजन्मोत्तर शिशु मृत्युदर (Neonatal Mortality Rate)***- प्रथम चार सप्ताह के बाद वर्ष के शेष 48 सप्ताहों में हुई मृत्यु को इसके अंतर्गत सम्मिलित किया जाता है व इसकी गणना भी NNMR की तरह ही की जाती है।

शिशु-मृत्युदर जनसंख्या संरचना का प्रमुख पक्ष है और किसी भी देश में इसकी अधिकता अविकास का सूचक मानी जाती है। भारत में 2011 के आंकड़े के अनुसार शिशु मृत्युदर 30.15 प्रति हजार है जो तुलनात्मक (Comparative) रूप से अभी भी अधिक है तथा विकसित देशों (स्वीडन-3 प्रति हजार, ऑस्ट्रेलिया-6, जापान-3, फ्रांस-4, जर्मनी-4 प्रति हजार) से कई गुना अधिक है। भारत में शिशु मृत्युदर में क्षेत्रीय आधारों (Regional Basis) पर भी विभिन्नता दृष्टिगत होती है। यह ग्रामीण क्षेत्रों (लगभग 80 प्रति हजार) और उड़ीसा (96 प्रति हजार) उत्तर प्रदेश (82 प्रति हजार), मध्य प्रदेश (85 प्रति हजार) जैसे राज्यों में अधिक है तो नगरीय क्षेत्रों (47 प्रति हजार) या केरल (14 प्रति हजार), महाराष्ट्र (48 प्रति हजार) जैसे राज्यों में कम है।

उच्च शिशु मृत्युदर के परिणाम (Consequences of High infant Mortality Rate)

भारत में शिशु मृत्युदर की इस अधिकता ने कई परिणामों को उत्पन्न किया है, जैसे:–

1. अधिक शिशु मृत्युदर के परिणामस्वरूप उत्पन्न संतति उत्तर जीविका (Survival) के भय के कारण जन्मदर में वृद्धि होती है जो जनसंख्या वृद्धि के लिए उत्तरदायी है।
2. अधिक शिशु मृत्यु दर से उत्पन्न प्रजनन दबाव के कारण इससे मातृ-मृत्युदर में वृद्धि होती है जिससे बच्चों के पालन पोषण और समाजीकरण (Socialization) जैसी समस्या उत्पन्न हुई है।
3. महिला शिशुओं की उपेक्षा के कारण शिशु मृत्यु दर में महिला शिशुओं की संख्या अधिक होने से लिंगानुपात में कमी आई है जिसके परोक्ष परिणाम के रूप में वेश्यावृत्ति या विवाह-विच्छेद में वृद्धि हुई है।
4. अधिक शिशु मृत्यु से उत्पन्न असुरक्षा के कारण प्रजनन दर में वृद्धि हुई है, 0-15 वर्ष की जनसंख्या अथवा निर्भरशील जनसंख्या (Dependent Population) में वृद्धि हुई है, परिणामस्वरूप आर्थिक विकास दुष्प्रभावित हुआ है।
5. शिशु मृत्युदर की अधिकता से माता-पिता को भावनात्मक चोट पहुँचती है।

उच्च शिशु मृत्युदर के सामाजिक कारक (Social Factors of High infant Mortality Rate)

भारत में उच्च शिशु एवं बाल मृत्युदर अविकास का परिचायक है और इसके लिए मुख्यत: निम्न कारक उत्तरदायी रहे हैं:-

1. गरीबी और कुपोषण (Poverty and Malnutrition) (लगभग 22% लोग गरीबी रेखा से नीचे हैं, निम्न प्रति व्यक्ति खाद्य उपलब्धता, निम्न प्रति व्यक्ति प्रोटीन उपलब्धता) के कारण बच्चों एवं उनको दूध पिलाने वाली माताओं में स्वास्थ्य समस्याएँ उत्पन्न होती हैं जो शिशु मृत्युदर बढ़ा देती है।
2. स्त्रियों की निम्न प्रस्थिति एवं पितृसत्तात्मक संयुक्त परिवार (Patriarchal Joint Family) में स्त्रियों के स्वास्थ्य पर कम ध्यान दिया जाना स्त्रियों में कुपोषण का एक कारण है जिससे शिशु मृत्यु दर में वृद्धि होती है।
3. प्रजनन व्यवहार संबंधी निर्णय पर पुरुषों के नियंत्रण के कारण अधिक प्रजनन होता है फलत: शिशु मृत्युदर में वृद्धि होती है।
4. धर्म प्रधान समाज में परिवार नियोजन एवं चिकित्सा सुविधाओं का लाभ उठाने का विरोध किया जाता है तथा पुत्र प्राप्ति की इच्छा (मोक्ष प्राप्ति एवं बुढ़ापे के सहारे हेतु) के कारण प्रजनन दर अधिक होती है फलत: शिशु मृत्युदर अधिक होती है।
5. भाग्यवादिता 'संतान ईश्वर की देन है तथा जन्म देने वाला अन्न देगा' जैसी भावनाओं को मजबूत करती है फलत: जनसंख्या वृद्धि को बढ़ावा मिलता है।
6. रूढ़ियाँ और अवैज्ञानिक मान्यताएँ (Unscientific Belief) भी जनसंख्या वृद्धि में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं क्योंकि इनसे 'लड़कियों को अपने माता-पिता के घर रजस्वला नहीं होना चाहिए' जैसी मान्यताओं को बढ़ावा मिलता है जो अन्तिम रूप से जनसंख्या वृद्धि की प्रेरक होती हैं।
7. अशिक्षा और अज्ञानता के कारण अति जनसंख्या वृद्धि से उत्पन्न होने वाली समस्याओं के निवारण हेतु किए गए उपाय असफल हो जाते हैं।
8. कम उम्र में विवाह (यूनीसेफ 46%- 2007) अधिकाधिक संतानोत्पत्ति का अवसर प्रदान करता है जिसका परिणाम जनसंख्या वृद्धि है।
9. चिकित्सा सुविधाओं के निम्नस्तर और अपर्याप्तता के कारण जहाँ एक ओर उच्च प्रसूति तथा नवजात शिशु मृत्युदर का कारण बनता है वहीं अवांछनीय गर्भ भी संतान के रूप में सामने आता है।

नवजात शिशु मृत्युदर में जैविकीय तथ्य (Biological Facts) निर्णायक भूमिका अदा करते हैं। ये तथ्य भी अल्पविकास के तथ्य के रूप में जाने जाते हैं। इसके प्रमुख कारण निम्न हैं:–

1. उच्च नवजात मृत्युदर तब होती है जबकि माँ अठारह वर्ष से कम अथवा 35 वर्ष से अधिक उम्र की हो एवं दो बच्चों के जन्मों के मध्य का अंतर एक वर्ष से कम हो। ये परिस्थितियाँ हमारे देश में सामान्य हैं जो उच्च नवजात मृत्यु का कारण बनती हैं।
2. विश्व स्वास्थ्य संगठन के द्वारा निर्दिष्ट मानक (Specified Standard) यह स्पष्ट करता है कि 2500 ग्राम से कम वजन के बच्चों की मृत्यु की संभावना अधिक होती है और उन पर विशेष ध्यान देने की जरूरत होती है। 24 से 37 प्रतिशत तक भारतीय बच्चे 2500 ग्राम से कम वजन के होते हैं जिनकी कोई खास देख-रेख की व्यवस्था नहीं होती है।
3. सामान्यतया गर्भवती महिलाओं की भलाई के लिए किए जाने वाले नव प्रसूति उपचार सम्बन्धी सावधानियों की हमारे देश में कमी है।
4. भारत में स्वच्छता की व्यवस्था और जन्म के समय चिकित्सा संबंधी सावधानी सुनिश्चित नहीं हैं, खासकर ग्रामीण क्षेत्रों में। प्रसव सामान्यतया दाई (अप्रशिक्षित पारंपरिक प्रसव कराने वाली) के द्वारा कराया जाता है।
5. बच्चों को कतिपय बीमारियों से प्रतिरक्षित करने के अवसर से वंचित रखा जाता है जिससे उनमें नव प्रसूति-मृत्युदर की संभावना बढ़ जाती है।

बाल मृत्युदर को प्रभावित करने वाले कारण सामान्यत: जैविकीय ही नहीं होते अपितु पर्यावरण से भी सम्बन्धित होते हैं। ये कारक बहिर्जात तथ्य (Exogenous Facts) के रूप में जाने जाते हैं जिनको निम्न रूप में देखा जा सकता है:–

1. बचपन की सामान्य बीमारी, जैसे-डिप्थीरिया, कुकुर-खांसी, चेचक, पोलियो और क्षय रोग आदि बाल मृत्युदर को प्रभावित करने में महत्वपूर्ण हैं। ग्रामीण जनता में अज्ञानता और अंधविश्वास तथा प्रतिरक्षण सेवा में कमी के कारण बाल मृत्युदर को नियंत्रित नहीं किया जा सका है।
2. डायरिया और इसके परिणामत: निर्जलीकरण दूसरा तथ्य है जो बाल मृत्यु की दर को बढ़ाने में अत्यधिक योगदान देता है। प्रतिवर्ष लगभग 15 लाख 5 वर्ष से कम उम्र के बच्चे डायरिया के कारण मर जाते हैं जिसमें से 60 से 70 प्रतिशत निर्जलीकरण के कारण मरते हैं।
3. पोषण की कमी एक अन्य तथ्य है जो बाल मृत्युदर को प्रभावित करता है। 1981 में किए गए एक अध्ययन में राष्ट्रीय पोषण संस्थान ने यह पाया कि लगभग 85 प्रतिशत चार वर्ष से कम आयु के बच्चे कुपोषण का शिकार थे जिनमें से लगभग 6 प्रतिशत गंभीर रूप से कुपोषित थे। इन कुपोषित बच्चों में डायरिया तथा अन्य दुर्बलताजन्य रोगों के होने की संभावना अधिक होती है।

मूल्यांकन एवं सुझाव (Evaluation and Suggestions)

स्पष्ट है कि अधिक शिशु मृत्युदर वर्तमान भारत की प्रमुख जनांकिकीय घटना है जो कई सामाजिक-सांस्कृतिक कारकों का परिणाम है और इन कारकों को दूर करके ही इस प्रवृत्ति पर नियंत्रण स्थापित किया जा सकता है। वैश्वीकरण के वर्तमान दौर में सामाजिक-आर्थिक विकास का लक्ष्य हमारे लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं। ऐसे में शिशु मृत्युदर की अधिकता जहाँ जनसंख्या वृद्धि को प्रोत्साहित करने वाली है वहीं यह कई रूपों में हमारे आर्थिक विकास या आधुनिक समाज के लक्ष्य को भी बाधित करती है। अत: यह आवश्यक है कि स्वास्थ्य एवं चिकित्सा सुविधाओं में वृद्धि, आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास, शिक्षा एवं जागरुकता का प्रसार, गरीबी का उन्मूलन, जीवनस्तर में सुधार, महिला सशक्तिकरण आदि को संभव बनाया जाए तभी शिशु मृत्युदर को नियंत्रित करके देश का सामाजिक-आर्थिक विकास (Social-Economic Development) और आधुनिक समाज के आदर्श लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है।

भारत में लिंगानुपात (Sex Ratio in India)

प्रति हजार पुरुषों पर स्त्रियों की संख्या को लिंगानुपात कहते हैं जो जनसंख्या संरचना का प्रमुख पक्ष है और इसका सामाजिक-सांस्कृतिक आयाम विस्तृत है। भारत में लिंगानुपात के परिदृश्य पर गौर करें तो यहाँ लिंगानुपात में निरंतर कमी आई है जो समाजशास्त्रीय चिंता का विषय रहा हैं 1901 में लिंगानुपात 972 था, 1991 में घटकर 927 हो गया। यद्यपि 2011 में इसमें कुछ बढ़ोत्तरी (943) अवश्य हुई है परंतु यह अभी भी विकसित देशों की तुलना में काफी कम है।

भारत में लिंगानुपात की प्रवृत्ति विभिन्न क्षेत्रों एवं समुदायों में अलग-अलग रही है। नगरों में यह गांवों की अपेक्षा कम है तो राज्य स्तर पर केरल (1084) में सर्वाधिक, हरियाणा (877), पंजाब (873) और सिक्किम (875) में सबसे कम है। समुदाय के स्तर पर देखा जाए तो ईसाइयों में सर्वाधिक-986 हिंदुओं में 930, मुस्लिमों में 922, अनुसूचित जनजातियों में 982 और अनुसूचित जातियों में 932 है।

घटते लिंगानुपात के सामाजिक परिणाम (Social Consequences of Declining Sex Ratio)

निश्चित ही लिंगानुपात की भिन्नता या इसमें आई कमी किसी भी देश के लिए समस्यात्मक है और यह प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से कई सामाजिक परिणामों को उत्पन्न कर रही है, जैसे:-

1. घटते हुए लिंगानुपात के कारण लोगों को अपने अधिमान्य विवाह समूहों (Preferential Marriage Groups) में विवाह साथी के रूप में महिलाओं की कमी होती जा रही है जिसके चलते विवाह संबंधी निषेधों के उल्लंघन (उपजाति निषेध, गोत्र संबंधी निषेध, सप्रवर निषेध टूट रहे हैं) हो रहे हैं।
2. लिंगानुपात की क्षेत्रीय विषमता के करण कुछ राज्यों में महिलाओं की संख्या इतनी कम है कि उन्हें अपने विवाह साथी की तलाश अन्य राज्यों से करनी पड़ रही है जिससे अंतर्राज्यीय विवाहों (Interstate Marriage) में वृद्धि (हरियाणा, पंजाब) हो रही है।
3. लिंगानुपात के लगातार घटने के कारण बहुत से पुरुषों के लिए विवाह हेतु महिलाएँ उपलब्ध नहीं हो पा रही हैं जिससे अनेक युवक बिना शादी के ही रह जी रहे हैं जिससे वेश्यावृत्ति जैसी कुप्रथाओं में वृद्धि (हरियाणा और पंजाब) हुई है।
4. विभिन्न जातीय समूहों में लिंगानुपात के असंतुलन के चलते उनमें अन्तर्जातीय विवाह प्रोत्साहित हुए हैं जिससे कई स्तरों पर वधू मूल्य का प्रचलन और दहेज प्रथा हतोत्साहित (यद्यपि यह प्रभाव भी सामान्य रूप से दृष्टिगत नहीं हो रहा है, परंतु ये आशा की जा रही है कि आने वाले समय में यही स्थिति रही तो इसकी संभावना बढ़ सकती है- पश्चिमी उत्तर प्रदेश, हरियाणा और पंजाब के कुछ समुदायों के संदर्भ में) हो रही है।
5. जातिवाद में कमी (यद्यपि यह प्रभाव बहुत ही कम है) आई है।

घटते लिंगानुपात के सामाजिक कारक (Social Factors of Declining Sex Ratio)

भारत में घटते लिंगानुपात के लिए निम्न कारकों को उत्तरदायी ठहराया जा सकता है:-

1. स्त्रियों की निम्न प्रस्थिति के कारण स्त्रियों पर कम ध्यान और प्रजनन व्यवहार के निर्णय पर पुरुषों के प्रभुत्व के परिणामस्वरूप कुपोषण और अधिक प्रजनन होता है जिससे स्त्री मृत्युदर, मातृ मृत्युदर, बालिका शिशु मृत्युदर अधिक होती है।
2. पुत्र को अधिक महत्व (मोक्ष प्राप्ति के साधन के रूप में और वृद्धावस्था में सहारे के रूप में) देने के कारण मादा भ्रूण हत्या और बालिका शिशु मृत्युदर की अधिकता पाई जाती है।
3. दहेज प्रथा के कारण स्त्रियों को बोझ माना जाता है परिणामस्वरूप उन पर कम ध्यान दिया जाता है जो अन्तत: स्त्री मृत्युदर, मातृ मृत्युदर, बालिका-शिशु मृत्युदर तथा मादा भ्रूण हत्या के रूप में सामने आता है।
4. अशिक्षा एवं अज्ञानता के कारण विवाह की आयु, प्रजनन व्यवहार, चिकित्सा सुविधाओं एवं परिवार नियोजन आदि के प्रति अतार्किक और रूढ़िगत निर्णय (Conservative Decision) लिए जाते हैं फलस्वरूप स्त्री-मृत्युदर, मातृ मृत्युदर, बालिका-शिशु-मृत्युदर और मादा-भ्रूण-हत्या में वृद्धि होती है।
5. पुरुषों के प्रवास के कारण क्षेत्रीय लिंगानुपात में असंतुलन (मुख्यत: दिल्ली आदि) उत्पन्न हो जाता है। ग्रामीण एवं अविकसित क्षेत्रों से युवकों का नये अवसरों की तलाश में नगरीय क्षेत्रों में प्रवासन होता है जिससे एक तरफ तो गांवों में महिलाओं का अनुपात बढ़ जाता है तो दूसरी तरफ नगरीय क्षेत्रों में महिला अनुपात कम हो जाता है।
6. छोटे परिवार की धारणा को तार्किक रूप से स्वीकृति और साथ ही पुत्र प्राप्ति की इच्छा की विद्यमानता भी लिंगानुपात पर असर डालती है। क्योंकि अधिकांश परिवार एक या दो पुत्र पैदा होने पर ही परिवार नियोजन अपना लेते हैं और महिला बच्चों को नहीं पैदा करना चाहती है।
7. उच्च तकनीकी का विकास (अल्ट्रासाउण्ड जो कन्या भ्रूण हत्या में सहायक) के चलते आज गर्भपात के समय ही बच्चे के लिंग का पता लगा लिया जाता है और महिला भ्रूणों का गर्भपात कर दिया जाता है जिसके कारण भी लिंगानुपात असंतुलित हुआ है।

मूल्यांकन एवं सुझाव (Evaluation and Suggestions)

स्पष्ट है लिंगानुपात में कमी भारत के लिए समस्यात्मक है और अविकास का सूचक है तथा इसके लिए जिम्मेदार कारकों में सर्वाधिक जिम्मेदार कारक भारत में स्त्रियों की निम्न प्रस्थिति (Low Status) रही है जिसकी पुष्टि केरल में या ईसाई समुदाय में लिंगानुपात की अधिकता (क्रमश: 1050 व 986) या मुस्लिम समुदाय में लिंगानुपात में कमी (922) से भी होती है।

वैश्वीकरण के वर्तमान दौर में प्रवास में होने वाली वृद्धि में भी लिंगानुपात को असंतुलित किया है परंतु आर्थिक विकास और शिक्षा के प्रसार द्वारा स्त्रियों की प्रस्थिति में सुधार करके और उनके दृष्टिकोण में सकारात्मक सुधार लाकर आने वाले समय में लिंगानुपात को संतुलित किया जा सकता है और इसके दुष्परिणामों (Bad effects) से बचा जा सकता है। इस दिशा में किए जा रहे विभिन्न प्रयास यथा हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, 2004 और बाल-विवाह निषेध अधिनियम, 2006 महत्वपूर्ण कदम साबित हो सकते हैं।

भारत में शिशु लिंगानुपात (Child Sex Ratio in India)

भारत में शिशु लिंगानुपात सम्बन्धी आँकड़े (Child Sex Ratio Statistics in India)

2001 (933) की तुलना में जनगणना 2011 में (943) लिंगानुपात में 10 अंक वृद्धि से जहाँ आशा की किरण दिखाई पड़ती है वहीं शिशु लिंगानुपात (0-6) में 2001 (927) की तुलना में 2011 (919) में 8 अंकों की कमी गहन चिंता का विषय है।

15वीं जनगणना (2011) के अंतिम (Final) आंकड़ों के अनुसार 0-6 आयु वर्ग की ग्रामीण एवं शहरी शिशु जनसंख्या क्रमश: 121.28 एवं 43.19 मिलियन रही अर्थात् उक्त आयु वर्ग की कुल शिशु जनसंख्या 73.27% एवं शहरी शिशु जनसंख्या 26.27% की सहभागिता रही।

1. वर्ष 2001 की तुलना में 2011 में जहाँ ग्रामीण शिशु जनसंख्या में 5.21 मिलियन की कमी आयी वहीं उक्त समयावधि में शहरी शिशु जनसंख्या में 5.83 मिलियन की वृद्धि दर्ज की गयी।
2. सर्वाधिक ग्रामीण एवं शहरी शिशु जनसंख्या वाला राज्य व केन्द्र शासित क्षेत्र क्रमश: उत्तर प्रदेश, दिल्ली (24.25 मिलियन एवं 2.0 मिलियन) में है।
3. न्यूनतम ग्रामीण एवं शहरी शिशु जनसंख्या वाला राज्य व केन्द्रशासित क्षेत्र क्रमश: सिक्किम (क्रमश: 47,038 एवं 14,039) व लक्षद्वीप हैं।
4. शिशु लिंगानुपात (0-6) में वर्ष 2001 की तुलना में 2011 में (-) 8 अंकों की कमी आयी है। जबकि ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों के लिंगानुपात में क्रमश: 11 एवं 1 की कमी आयी है।
5. सर्वाधिक शहरी शिशु लिंगानुपात वाला राज्य व केन्द्रशासित क्षेत्र नागालैण्ड (979) पुदुचेरी (969) हैं।
6. न्यूनतम शिशु लिंगानुपात वाला शहरी राज्य व केन्द्रशासित क्षेत्र क्रमश: हरियाणा (829) व चण्डीगढ़ (867) हैं।

0-6 आयु वर्ष का लिंगानुपात

	2001	2011	अन्तर
भारत	927	919	(-)8
ग्रामीण	934	913	(-)11
शहरी	906	905	(-)1

शिशु (0-6) लिंगानुपात (1000 लड़कों पर लड़कियों की संख्या)				
	सर्वाधिक		न्यूनतम	
क्षेत्र	ग्रामीण	शहरी	ग्रामीण	शहरी
राज्य	मेघालय / छत्तीसगढ़	नागालैण्ड	हरियाणा	हरियाणा
	(972)	(979)	(831)	(829)
केन्द्रशासित	अण्डमान एवं निकोबार	पुदुचेरी	दिल्ली	चण्डीगढ
क्षेत्र	(975)	(969)	(809)	(867)

भारत में आयु संरचना (Age Structure in India)

किसी देश की जनसंख्या में विभिन्न आयु वर्गों (Age Groups) के अनुपात को आयु संरचना के रूप में जाना जाता है जिसके अंतर्गत मुख्यत: तीन आयु वर्ग के लोगों को शामिल किया जाता है:-

भारत में आयु संरचना

- 0-14 वर्ष
- 15-59 वर्ष
- 60 से अधिक वर्ष

किसी जनसंख्या के आयु संरचना से कार्यशील जनसंख्या, (Working Papulation) निर्भरशील जनसंख्या, संतान उत्पादक जनसंख्या आदि का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। इसके लिए जिम्मेदार सामाजिक-सांस्कृतिक कारकों (Social-Cultural Factor) और इसके द्वारा समाज पर पड़ने वाले प्रभावों का विश्लेषण किया जा सकता है। वर्तमान भारत की आयु संरचना के संदर्भ में हम देखते हैं कि यहाँ-

1. प्रजनन दर के नियंत्रित होने के कारण 0-14 वर्ष के आयु वर्ग वाली जनसंख्या में कमी आई है। (1980 में 48% से घटकर वर्तमान में 29.7%)
2. स्वास्थ्य सेवाओं में विकास एवं शिशु-मृत्यु दर में कमी के कारण कार्यशील जनसंख्या में वृद्धि हुई है (1980 के 54.7% से बढ़कर वर्तमान में 64.9%)
3. विज्ञान का विकास एवं स्वास्थ्य एवं सामान्य सेवाओं के प्रसार के साथ हुई जीवन प्रत्याशा में वृद्धि के कारण 65 वर्ष से ऊपर के लोगों का अनुपात भी बढ़ा है। (1980 के 6.2 % से बढ़कर वर्तमान 8.9%)। आने वाले समय में आयु वर्ग में और वृद्धि होने की संभावना है।

भारत में वर्तमान आयु संरचना में होने वाले उपरोक्त परिवर्तन निश्चित रूप से सकारात्मक हैं और आर्थिक विकास की संभाव्यता को पुष्ट करते हैं। परंतु, विकसित देशों की तुलना में अभी भी यह अपर्याप्त है (जापान में कार्यशील जनसंख्या लगभग 70%, अमेरिका की कार्यशील जनसंख्या लगभग 70% एवं मध्य एवं पूर्वी यूरोप की कार्यशील जनसंख्या लगभग 70%) क्योंकि आज भी हमारी जनसंख्या में निर्भरशील जनसंख्या (Dependent Population) लगभग 35% है जो कई दृष्टिकोण से समस्यात्मक कही जा सकती है, जैसे:-

1. निर्भरशील जनसंख्या उपार्जक नहीं होती और इसके बढ़ने से सामाजिक-आर्थिक विकास नकारात्मक रूप से प्रभावित हो रहा है क्योंकि राष्ट्रीय आय (National Income) का एक बड़ा भाग इनकी सुरक्षा एवं विकास में नियोजित हो जाता है।
2. मुख्यत: 0-14 वर्ष की जनसँख्या, जनसँख्या नियंत्रण कि दिशा में मुख्य समस्या है क्योंकि इस आयु वर्ग की जनसँख्या जो कालांतर में प्रजननशील आयु वर्ग के अनुपात में वृद्धि करेंगी। इससे तुलनात्मक रूप से जन्मदर को नियंत्रित करना अधिक मुश्किल होगा। फलत: यह जनसंख्या वृद्धि में अभी भी सहयोगी हैं जो अनेक सामाजिक दुष्परिणामों (Social bad effects) को उत्पन्न कर रही है।

वर्तमान आयु संरचना के इस समस्यात्मक पक्ष के लिए प्रमुख निर्धारक कारक जन्मदर की अधिकता है जो कई सामाजिक सांस्कृतिक कारकों का परिणाम है। परंतु, हाल के वर्षों में भारत की आयु संरचना (Age Structure) में परिवर्तन की प्रवृत्ति निश्चित रूप से सकारात्मक रही है। पिछले 60 वर्षों में:–

1. स्त्रियों की प्रस्थिति में सुधार से प्रजनन पर उनका समर्थन भी लिया जाने लगा है जिससे जन्म दर नियंत्रित हुई है।
2. शिक्षा के प्रसार एवं जागरूकता में वृद्धि के कारण लोगों को छोटे परिवार के लाभ समझ में आने लगे हैं जिससे लोग कम बच्चे पैदा कर रहे हैं।
3. आधुनिक मूल्यों के प्रसार से व्यक्तिवाद, स्वतंत्रता व महत्वाकांक्षा में वृद्धि ने लोगों को छोटे परिवार की धारणा अपनाने के लिए बाध्य किया है।
4. लघु परिवार की महत्ता तेजी से स्थापित हो रही है।
5. जनसंख्या समस्या के बारे में जागरूकता बढ़ रही है। जिसके चलते अधिकांश शिक्षित एवं जागरूक लोग कम से कम बच्चे उत्पन्न करना चाहते हैं।
6. स्वास्थ्य सुविधाओं का विस्तार भी तेजी से हो रहा है, जिससे शिशु मृत्यु दर से उत्पन्न असुरक्षा की भावना कम हुई और लोग अधिक बच्चे पैदा नहीं कर रहे हैं।
7. परिवार नियोजन का विस्तार होने के कारण आज गर्भ निरोधक तकनीकों तक लगभग सभी की पहुंच हो गयी है जिसको अपना कर लोग प्रजनन को नियंत्रित कर रहे हैं।

उपरोक्त परिस्थितियों के विकास के कारण जन्मदर को बहुत हद तक नियंत्रित कर लिया गया है। आज अधिकांश भारतीय लघु परिवार के मानदंडों को स्वीकार कर रहे हैं। इसीलिए जनसंख्या के वर्तमान परिदृश्य को अमर्त्य सेन सामाजिक- आर्थिक विकास हेतु

सकारात्मक प्रवृत्ति (Positive Trend) के रूप में इंगित करते हैं। यद्यपि निश्चित ही वर्तमान प्रवृत्ति विकसित देशों की तुलना में अच्छी नहीं है परंतु हम निरंतर सकारात्मक दिशा की ओर अग्रसर हैं।

संभावित प्रश्न

1. भारत के आर्थिक विकास में भारत की वृहद जनसंख्या कहाँ तक सहायक है? स्पष्ट करें।
2. जनसंख्या वृद्धि को नियंत्रण करने संबंधी उपायों के बावजूद अपेक्षित सफलता न मिलने के क्या कारण हैं? स्पष्ट करें।
3. उत्तर तथा दक्षिण के राज्यों के मध्य साक्षरता तथा लिंगानुपात में आए अंतर के सामाजिक कारणों को स्पष्ट करें।
4. 2011 के जनगणना आंकड़ों में शिशु लिंगानुपात में उत्तरोत्तर कमी ने कन्या भ्रूण हत्या में वृद्धि को स्पष्ट रूप से इंगित किया है। कन्या भ्रूण हत्या के कारणों व इसे रोकने के उपायों की चर्चा कीजिए।
5. नगरों में अपेक्षाकृत बेहतर साक्षरता दर के बावजूद कन्या भ्रूण हत्या संबंधित मामलों में हाल के कुछ वर्षों में वृद्धि हुई है। एक शिक्षित समाज के द्वारा किए गए इस कृत्य का क्या कारण हैं?
6. जनांकिकीय लाभांश से क्या समझते हैं? भारत जैसे विकासशील देश के सामाजिक-आर्थिक विकास में इसकी भूमिका को रेखांकित करें।
7. भारत में परिवार नियोजन कार्यक्रम की सफलता का मूल्यांकन करें।
8. ग्रामीण क्षेत्र में जनसंख्या नियंत्रण के संबंध में सामाजिक सांस्कृतिक बाध्यताओं को स्पष्ट करें।
9. भारत की सामाजिक संरचना इसके जनसंख्या गतिकी का प्रमुख निर्धारक है। चर्चा कीजिए।
10. भारत की विशाल जनसंख्या आर्थिक विकास हेतु बाधक है, अथवा साधक? अपना मत प्रस्तुत करें।
11. 2011 के जनगणना आंकड़ों में लिंगानुपात में वृद्धि दर्ज की गयी जबकि शिशु लिंगानुपात में कमी दर्ज की गयी है। इस विरोधाभास के कारणों को स्पष्ट करें।
12. भारत में ग्रामीण-नगरीय प्रवास में वृद्धि के कारण उत्पन्न समस्याओं को स्पष्ट करें तथा इसे दूर करने हेतु उपाय सुझाएँ।
13. गिरते स्त्री-पुरुष अनुपात के सामाजिक कारणों की चर्चा करें।
14. आधुनिक समाज में कन्या भ्रूण हत्या के सामाजिक दुष्प्रभावों की चर्चा करें।
15. निम्न लिंगानुपात के सामाजिक दुष्परिणामों की चर्चा कीजिए।
16. भारत में वृद्धजनों की समस्या आधुनिकता का दुष्परिणाम है। स्पष्ट कीजिए।
17. जनसंख्यिकी संक्रमण के सिद्धांत के बुनियादी तर्क को स्पष्ट कीजिए। संक्रमण अवधि 'जनसंख्या विस्फोट' के साथ क्यों जुड़ी है? उत्तर दीजिए।
18. मृत्यु दर और जन्म दर का क्या अर्थ है? कारण स्पष्ट कीजिए कि जन्म दर में गिरावट अपेक्षाकृत धीमी गति से क्यों आती है जबकि मृत्यु दर बहुत तेजी से गिरती है।
19. भारत में कौन-कौन से राज्य जनसंख्या संवृद्धि के 'प्रतिस्थापन स्तरों' को प्राप्त कर चुके हैं अथवा प्राप्ति के बहुत नजदीक हैं? कौन-से राज्यों में अब भी जनसंख्या संवृद्धि की दरें बहुत ऊँची हैं? आपकी राय में इन क्षेत्रीय अंतरों के क्या कारण हो सकते हैं?
20. जनसंख्या की 'आयु संरचना' का क्या अर्थ है? आर्थिक विकास और संवृद्धि के लिए उसकी क्या प्रासंगिकता है?
21. 'स्त्री-पुरुष अनुपात' का क्या अर्थ है? गिरते हुए स्त्री-पुरुष अनुपात के क्या निहितार्थ हैं? क्या आप यह महसूस करते हैं कि माता-पिता आज भी बेटियों की बजाय बेटों को अधिक पसंद करते हैं? आपकी राय में इस पसंद के क्या-क्या कारण हो सकते हैं?

✪✪✪✪✪